मरुपथ

डॉ० सत्यनारायण शर्मा

मरुपथ

●

डा० सत्यनारायण शर्मा

●

परमार्थ ट्रस्ट
कलकत्ता :: राँची

प्रकाशक :
परमार्थ ट्रस्ट
मुड़हू, राँची

प्रथम संस्करण, १९६४
मूल्य ६.००

मुद्रक:
बेनी माधव प्रेस,
राँची

मरुपथ

सत्यनारायण शर्मा

●

अर्पण

जिसकी इच्छा से इस दिगन्तस्पर्शी मरुपथ
का यात्री बनना पड़ा, मरीचिकाओं
के उद्भावक उसी अप्रतिम
कलाकार को

" इस दिगंतविस्तृत मरुपथ के
इंद्रजालमय तम में
कंटक चुन-चुन हार गया मैं
सुमन-राशि के भ्रम में
अब तो विकल, निराश्रित यह मन
देखे बाट तुम्हारी
हे मेरी निर्वासन-निशि की
सुरभित उषाकुमारी "

प्रवेश-पंक्तियाँ

अगणित अभिलाषाएँ, अगणित स्वप्न और उनसे समालिंगित यातना-जाल। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीनों। यही है संक्षिप्त गाथा मरुपथ की इस मरीचिका-प्रेरित यात्रा की। कुछ अश्रु-विन्दु, कुछ स्वेद-विन्दु और कुछ रक्त-विन्दु।

पिपासा का जिससे शमन हो, वह जलाशय ज्ञानेन्द्रियों और मन के सन्निकर्ष से उत्पन्न इस मरणधर्मा लोक में नहीं है, इसका अनुभव जीवन-यात्री को निरन्तर होता रहता है। किन्तु इस अनुभव से वह लाभ कहाँ उठा पाता है!

'मरुपथ' में संकलित मेरी ये कहानियाँ विभिन्न समयों में विभिन्न मनःस्थितियों में लिखी गई हैं, किन्तु सबों की आधारभूमि प्रायः एक ही है। मोह के आवर्त्त में संत्रासित मर्त्यलोकवासी की विविध विवशताएँ।

श्रृंगार, हास्य और करुण इन तीन रसों के साहाय्य से अभिलषित विषय को प्रतिपादित करने का इनमें जो प्रयास है, आशा है, उससे सहृदय पाठकों की मनस्तृप्ति होगी।

राँची }

सत्यनारायण शर्मा

कहानियाँ

—::००::—

सत्य की खोज

मेघों के अनवरत नीर-सिंचन से वृक्ष-श्रणी हरिताभ हो उठी थी। ग्रीष्म के उत्ताप से संज्ञाहीन एवं मूक हो जानेवाली सरिता ने फिर से बोली प्राप्त कर ली थी।

विहंगम-कुमार अपने दो-चार सहचरों के साथ व्योम-क्रीड़ा करने के लिए उड़ चला। मार्ग में उसके एक सहचर ने कहा—'यह वर्षा-श्री कितनी मनोहारिणी है—कितनी प्रिय ! ग्रीष्म के उत्ताप से मैं तो अतीव संत्रस्त हो उठा था।'

विहंगम-कुमार मुस्कराया। बोला—'यह वर्षा-श्री नयी है, इसीसे अभिराम और प्रिय भी। कुछ ही दिनों के बाद यह कष्टकर हो उठेगी। जिन आमन्द्र मेघों को देख-देखकर अभी तुम अपने सुमधुर रव से वनान्त को मुखरित किया करते हो, उन्हीं से तुम्हें वितृष्णा हो जायगी।'

दूसरा विहंगम बोला—'ठीक है, संसार सुन्दर स्थान नहीं। यहाँ कोई भी वस्तु सन्तोषजनक नहीं प्रतीत होती। पता नहीं, क्या सोचकर विधाता ने इसका निर्माण किया है। यदि यह अत्यधिक सुन्दर न होता तब भी कोई बात थी, लेकिन यहाँ तो सर्वत्र असौन्दर्य दृष्टिगत होता है। सुख का भी

यहाँ अभाव ही समझो! कभी थोड़ा-बहुत मिल गया तो वह दुख की वृद्धि का ही हेतु सिद्ध होता है।'

तीसरा बोला—'चलो, विधाता से चलकर पूछा जाय कि यह संसार आखिर क्या है! भोगभूमि तो यह हो ही नहीं सकता। कर्मभूमि भी इसे कैसे कहा जाय! जब हमलोगों को इसकी वास्तविकता का कुछ ज्ञान ही नहीं है और कर्माकर्म के प्रभेद से हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं तब यहाँ कर्म किया जाय तो किस आधार पर?'

'कहीं यह पागलखाना तो नहीं है!'

इस पर सब हँस पड़े!

विहंगम-कुमार बोला—'चलो, विधाता से चलकर पूछा जाय, उन्होंने इस संसार को किस उद्देश्य से बनाया है और यह आखिर है क्या?'

'लेकिन विधाता तक हमलोग पहुँचेंगे कैसे? उसका पता-ठिकाना भी तो मालूम हो!'

सचमुच उनके सामने यह एक समस्या थी, जिसका समाधान करना आवश्यक था। कुछ क्षणों के ऊहापोह के उपरान्त विहंगम-कुमार ने ही नीरवता भंग की और बोला—'मेरी धारणा है, प्रातःकाल विधाता प्राची दिशा में अवश्य आते होंगे और वहाँ से सूर्य का निर्माण करके उसे व्योम-पथ में संचालित करते होंगे!'

'बात तो ठीक है, लेकिन वे सदैव सूर्य के साथ रहते हों, यह भी तो हो सकता है। हमलोग प्राची दिशा में पहुँचें तब तक वे सूर्य के साथ मध्याकाश में चले आ सकते हैं!'

'लेकिन सूर्य के साथ वे सदैव रहेंगे क्यों?'

'इस भय से कि कहीं मार्ग में ही सूर्य रुक न जाय!'

'कोई चिन्ता नहीं। हमलोग वहाँ दूसरे दिन तक उनकी प्रतीक्षा करेंगे।'

बात सबों को जँच गयी और वे उड़ चले।

२

उड़ते-उड़ते उनके पंख सर्वथा अशक्त हो गये थे, किन्तु प्राची दिशा की दूरी ज्यों-की-त्यों बनी थी !

"मुझ से तो अब उड़ा नहीं जाता ! सारा शरीर टूट रहा है !" एक बोला।

'मेरे पंख अत्यधिक श्रमशिथिल हो गये हैं। यदि अधिक परिश्रम करूँगा तो बेहोश होकर गिर पड़ूँगा।'

'मैं तो अचेतन हुआ जा रहा हूँ।'

विहंगम-कुमार की अवस्था भी शोचनीय थी। साथियों को अत्यधिक परिश्रान्त देख कर बोला—'अब कुछ समय तक कहीं विश्राम करके ही आगे बढ़ना उचित होगा।'

एक वृक्ष की शाखा पर चारों बैठ गये और विश्रान्ति-सुख का अनुभव करने लगे। अचानक विहंगम-कुमार की दृष्टि एक रमणी पर पड़ी जो संगमर्मर के सुन्दर चबूतरे पर बैठी हुई कोई पुस्तक पढ़ रही थी। पास में ही एक चाँदी का पात्र रखा था जिसमें कुछ खाद्य-सामग्री थी, जिसे वह रह-रहकर मुंह में डाल लेती थी।

क्षुधा से विहंगम-वृन्द विकल था। विहंगम-कुमार ने अपने साथियों से कहा—'तुमलोग आराम करो। मैं उसके पात्र से कुछ भोजन ले आता हूँ।'

भोजन का नाम सुनकर सब प्रहर्षित हो उठे।

विहंगम-कुमार ने पीछे से आकर चाँदी का पात्र उठा लिया और उड़ चला। रमणी आश्चर्यित, विस्मित उठ खड़ी हुई और पीछे-पीछे दौड़ने लगी। लेकिन दौड़ने से क्या होता था ! पात्र वृक्ष की उच्चतम शाखा पर पहुँच गया और चारों मिलकर उदर-पूर्त्ति करने लगे।

उदर-पूर्त्ति करने के बाद सबों ने सोने का इरादा किया। आँखें विहंगम-कुमार ने भी बन्द कीं, किन्तु कुछ ही क्षणों के उपरान्त उसे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे सोना उसके लिये असंभव है। उस रमणी को एक बार फिर समीप से देखने की इच्छा बलवती हो उठी थी! उसने धीरे से चाँदी का पात्र उठाया और रमणी के पीछे जोरों से पटक दिया। रमणी चौंकी। देखा, वही विहंगम पात्र रखकर व्योम में उड़ रहा है!

रमणी आश्चर्यित हो रही थी।....ऐसा विहंगम उसने आजतक नहीं देखा, जो इतना सभ्य चोर हो! वह मुग्ध हो उसकी ओर देखने लगी। तब तक विहंगम उससे तीन-चार हाथ की दूरी पर घास पर आ बैठा था!

वह ज्यों-ज्यों उसे पकड़ने के लिए कदम बढ़ाती त्यों-त्यों वह दूर हटता जाता था! लेकिन उस स्थान को छोड़ नहीं रहा था! रमणी को यह सब देखकर और भी आश्चर्य हो रहा था।

करीब पन्द्रह मिनट इस प्रकार बीते। विहंगम रमणी की पहुँच में आकर फिर उसे धोखा देता हुआ उड़ जाता और सतृष्ण नेत्रों से उसे देखने लगता!

परिश्रान्त होकर रमणी बँगले में चली गयी।

३

विहंगम-कुमार ने लौटकर देखा, साथी सो रहे हैं। उसने भी सोने का प्रयास किया, लेकिन सो न सका। रमणी की रूप-श्री की स्मृति उसे सोने नहीं दे रही थी।

....अब वह कहाँ जाये अपने साथियों के साथ! उस रमणी को छोड़कर अब कहीं भी जाना उसके लिये असंभव-सा प्रतीत हो रहा है! न अब संसार की वास्तविकता के परिज्ञान की आवश्यकता उसे प्रतीत हो रही है, न संगी-साथियों का ही कोई मोह अब वह अपने प्राणों में स्पंदित होता पा रहा है।

उस रूपसी की रूप-श्री ने उसे अपना बन्दी बना डाला था। उसकी मुस्कान से उसके हृदय-व्योम में जो चंद्रिका बरस पड़ी थी, वह उसके लिए सर्वथा नयी थी। उसे प्रतिक्षण ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उस रूपसी के अभाव में वह अपने जीवन से बहुत दूर जा पहुँचेगा। अब तो उस अपरिचिता के पास ही रहकर उसकी प्राण-रक्षा संभव है।

...लेकिन कैसा उन्माद है यह! वह मानवी क्या बदले में उस व्योमचारी को अपने हृदय से स्नेह की एक नन्हीं-सी बूंद भी दे सकेगी? वह इतनी सदय उस अभागे विहंगम की किस विशेषता पर हो सकेगी?

...और केवल प्यार करते रहना! प्रतिदान की आकांक्षा खोकर केवल अपना प्यार लुटाते फिरना उसके लिए क्या संभव हो सकेगा?...तो अब वह क्या करे? एक बार उसे देख लेने के बाद अब भूल सकना तो असंभव-सा प्रतीत हो रहा है।

उसकी मुस्कान, उसका वह कोमल पद-निक्षेप, चपल समीरण के द्वारा अस्त-व्यस्त की गयी उसकी वह केशराशि....किन-किन की याद करे वह! रूप-सरोवर की वह शतदलकुमारी न जाने उस विहग के जीवन के किस सौभाग्य और दुर्भाग्य को एक साथ सजग और सार्थक कर रही थी।

कहाँ वह नीड़-निवासी और कहाँ वह धनैश्वर्य की अधिष्ठात्री! फिर भी अभागे के हृदय में उसे प्रेम कर पाने का साहस हो रहा है!

पास ही एक आवारा लड़का सिनेमा का गीत गा रहा था—'चाँद से प्रीत लगाये रे पंछो बावरिया !'

× × ×

उसके साथियों की नींद टूटी और वे आगे बढ़ने को उत्सुक हुए। लेकिन विहंगम-कुमार में आगे बढ़ने की उत्सुकता का अभाव देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

'क्या तुम्हारी पथ-श्रान्ति अभी तक दूर नहीं हो पायी ?'

विहंगम-कुमार क्या उत्तर दे इस प्रश्न का ! ..कैसे उन्हें अपने हृदय की दुर्बलता से परिचित कराये ! ..कैसे कह दे कि वह किसीकी रूप-श्री से प्रमत्त हो उठा है और अब उसका विधाता वहीं है जहाँ वह अपनी रूप-ज्योत्स्ना से पारिपार्श्विक वातावरण में स्वर्गिक सुषमा का प्रसार किया करती है !

'तुमलोग व्यर्थ ही कष्ट कर रहे हो ! जरा से परिश्रम से इतने परिश्रांत हो गये ! प्राची दिशा तक पहुँचने में तुमलोग समर्थ नहीं हो सकोगे । और जब कष्ट सहना ही है, तो सब क्यों कष्ट सहें ! एक व्यक्ति विधाता के पास पहुँचे तब भी वही बात है और चार पहुँचें तब भी वही बात।' विहंगम-कुमार बोला।

'तुम्हारे कहने का तात्पर्य क्या है ? अर्थ अधिक स्पष्ट करो।'

'मैं कहना यह चाहता हूँ कि तुमलोग लौट जाओ। मैं अकेला ही विधाता के पास जाऊँगा। उनसे जो उत्तर मिलेगा, वह तुमलोगों को भी बतला दूँगा। तुमलोग व्यर्थ क्यों कष्ट झेल रहे हो ? विधाता भी इस गोपनीय रहस्य को एक व्यक्ति को बतलाने में तो उतनी आनाकानी नहीं

करेंगे लेकिन यदि चार-पाँच व्यक्ति एक साथ हो उनके पास पहुँचें, तो वे शायद ही भेद वतलावें।'

'फिर हमलोगों का सारा परिश्रम निरर्थक हो जायगा।' एक साथी ने कहा।

'यह तो बहुत ही बुरा होगा। हमलोग तो इतने कष्ट सहते हुए विधाता के पास पहुँचें और फिर वहाँ कोरा जवाब मिले!' दूसरा बोला।

'लेकिन तुम क्यों कष्ट सहन करोगे? कष्ट-सहन मुझे करने दो। मैं उड़ने की कला में तुमसे अधिक दक्ष हूँ। तुमसे अधिक शीघ्र मैं विधाता तक पहुँच सकूंगा।' तीसरा बोला।

'सो तो ठीक है। लेकिन बुरा न मानना, तुम उड़ने में तो मुझ से अधिक निपुण हो, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु बातचीत करने की कला में कोरे हो। विधाता से उसके भेद का पता लेना कोई साधारण धूर्तता का काम नहीं है। तुम सरलमति ठहरे। यह काम तुम से नहीं हो सकेगा।' विहंगम-कुमार बोला।

'तो तुम्हारे कहने का तात्पर्य यह है कि मैं मूर्ख हूँ—मुझ में बुद्धि का अभाव है।'

'नहीं, ऐसा मैं नहीं कहता। मैं तो केवल इतना ही कहता हूँ कि तुम विधाता से उसका भेद नहीं ले सकोगे।'

'तो विधाता ही कहाँ का ऐसा बुद्धिमान होगा कि उसका भेद नहीं लिया जा सकता।'

विहंगम-कुमार हँसा। बोला—'यही तो तुम्हारी सरलता है। भला, इतनी बड़ी दुनिया को बनाकर फिर उसे भूल-भुलैया में रखनेवाला ही यदि बुद्धिमान नहीं होगा तो फिर होगा कौन?'

आखिर यही निश्चय हुआ कि विहंगम-कुमार अकेला ही प्राची दिशा की ओर जाय।

'लेकिन तुम्हें एकाकी भेजते हुए मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। पता नहीं, तुम कब लौटोगे?'

'शीघ्रातिशीघ्र लौटने की चेष्टा करूँगा। घबड़ा क्यों रहे हो? तुमलोगों को वापस अवश्य लौट जाना चाहिए। अन्य संगी-साथियों को कहकर भी तो हमलोग नहीं चले थे। वे चिन्तित हो रहे होंगे; तुमलोग उन्हें जाकर आश्वस्त करो।'

अपने साथी से बिछुड़ते हुए अन्य विहंगों के नेत्रों में नीर भर आया। बोले—'लेकिन सत्य को जानने के बाद सबसे पहले हमें ही बतलाना।'

४

कैसा सत्य और किसका सत्य!..कैसा विधाता और किसका विधाता! कौन जाय प्राची की ओर!

विहंगम-कुमार को सारा सत्य उस रमणी की सौंदर्य-श्री में दिखलायी दे रहा था! उसकी मुसकान में उसे विधाता की मुसकान नजर आ रही थी। उसका बँगला उसे प्राची दिशा के रूप में प्रतिभात हो रहा था!

.....'लेकिन यह तो साथियों के प्रति विश्वासघात होगा! कितनी-कितनी उम्मीदें बाँधकर वे लोग लौटे होंगे! उनकी उम्मीदों पर पानी फेर देना क्या अच्छा होगा?' कोई पूछ रहा था उसके अन्ततंम में।

'और यदि इस रसमयी से अपने को दूर करते हो तो क्या यह अपने प्रति विश्वासघात नहीं होगा? कितनी-कितनी उम्मीदें बाँधकर प्रेम का मधुप तुम्हारी हृदय-सरसी में गुंजार कर उठा है! क्या उसकी समस्त सुकुमार आशाओं को असमय में ही नष्ट कर देना तुम्हें शोभा देता है?' कोई दूसरी शक्ति उससे पूछ रही थी।

नहीं जा सकेगा अब वह विधाता के पास! अब तो रूपसी का निवास-स्थान ही उसके लिए सबसे सुन्दर, सबसे पावन स्थान है! उसकी मोहमयी मुखाकृति से बड़ा सत्य और क्या होगा? उसकी मनमोहक मुस्कुराहट से जो ज्ञान बिखरता है, वह अन्यत्र कहाँ मिल सकेगा?

रूप की मदिरा से प्रमत्त होकर वह रूपसी के बँगले में विचरण करने लगा। कभी किसी विटपी की निम्नतम शाखा पर जा बैठता, कभी किसी सोपान पर, कभी संगमर्मर के चबूतरे पर।

रूपसी उसकी बुद्धिमत्ता देखकर चकित थी! अपने नौकरों से उसने कहा—'जैसे भी हो, इसे बंदी बना लो और पिंजड़े में डालकर मेरे शयन-कक्ष में रख दो। बड़ा सुन्दर पंछी है!'

सुनकर विहंगम-कुमार हर्ष के अतिरेक से विह्वल हो उठा। रूपसी उसे सुन्दर समझ रही है, इससे बढ़कर प्रशंसा उसके लिए इस दुनिया में और हो ही क्या सकती है? उसका शयन-कक्ष उसका निवास-स्थान होगा, यह भी क्या कम गौरव की बात है!.....कितना बड़ा सौभाग्य आज उसके जीवन से आलिङ्गित होने के लिए मचल उठा है!

.....लेकिन ये नौकर उसे पकड़ने के लिए चले हैं! बेवकूफ! वह इनकी पकड़ में कभी नहीं आने का! देखें, ये कैसे पकड़ते हैं! नौकर कोशिश करके थक गये, लेकिन पंछी पकड़ में नहीं ही आया!

रूपसी नौकरों को आज्ञा देकर अपने कक्ष में चली गयी थी। नौकर

निराश हो चुके थे। रूपसी के पास अपनी असफलता बतलाते हुए उन्हें लज्जा का अनुभव हो रहा था।

'अच्छा, मैं इसे पकड़ने की चेष्टा करती हूँ।' कहकर रूपसी चेष्टा करने लगी।

विहंगम-कुमार कुछ क्षणों में ही उसके हाथों में आ गया! जो स्वयं बंदी बनना चाहता हो, उसे बंदी बनाना कौन-सी बड़ी बात है!

रूपसी ने प्रसन्न होकर उसे अपने वक्षःस्थल से लगा लिया और पंखों पर कोमल हाथ फेरने लगी। विहंगम-कुमार का अस्तित्व उस अननुभूत-पूर्व सुख की अनुभूति से मदिरामय हुआ चला जा रहा था! प्रेम-देव के श्री-चरणों पर जीवन-कुसुम वृन्तच्युत होकर स्वतः ही गिर पड़ा।

५

दिवस और रात्रि के श्वेत-श्यामल मार्ग से गुजरती हुई वर्षा व्यतीत हो गयी और शरद काश-वन को प्रहसित करता हुआ आ पहुँचा।

रूपसी के शयन-कक्ष में विहंगम-कुमार ने ये दिन जिस अपरिसीम सुख के साथ व्यतीत किये, इसकी कल्पना भी उसने नहीं की थी। रूपसी के सो जाने पर वह मौन-मुग्ध उसकी मुख-श्रीं देखता रहता।..काश! वह पक्षी न होकर पुरुष हुआ होता!

रूपसी उसे अपने हाथों से खाना खिलाती और पढ़ाती—'पढ़ो पंछी! ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय!'

विहंगम-कुमार को पढ़ाने में अधिक परिश्रम रूपसी को नहीं करना पड़ता! जब पढ़ानेवाले में और पढ़नेवाले में प्रेम का आधिक्य हो जाता है तब अध्यापन और अध्ययन दोनों कार्य सर्वथा सहज हो जाते हैं। विहंगम-कुमार को बहुत-से दोहे याद हो गये। लेकिन पाठ के आरम्भ में और अंत में यह दोहा नित्य पढ़ाया जाता।

..तो क्या रूपसी भी मुझे प्यार करने लगी है! तभी तो यह बार-बार प्रेम का दोहा पढ़ाती है!..और ऐसा सोचता हुआ विहंगम-कुमार फूला नहीं समाता। जीवन-विटपी के पत्ते भी फूलों के रूप में उसे नजर आ रहे थे!

लेकिन एक दिन अभागे का सुख-स्वप्न टूट गया! रूपसी एक दूरागत युवक के आलिंगन-पाश में बद्ध होकर जब उसके समीप खड़ी थी, तो उसे मालूम हो रहा था, जैसे वह मूच्छित होकर गिर पड़ेगा।

'बहुत दिन लगा दिये आपने इस बार ?' मनुहारभरी वाणी में वह बोली।

'विवशता थी। राजाज्ञा के विरुद्ध आचरण करना भी तो अपने पतन का पथ प्रशस्त करना है!' युवक बोला।

'आपके अभाव में मैंने इस पक्षी को अपना साथी बनाया है!'

युवक ने पक्षी की ओर दृष्टिपात किया और बोला—'क्या इसने मेरे अभाव की पूर्ति कर दी?'

पक्षी उत्सुकतापूर्वक उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था; हृदय धड़क रहा था।

'किसी की प्रतीक्षा में आकाश के तारे गिने जाते हैं, तो क्या वे तारे अभाव की भी पूर्ति कर देते हैं?' रूपसी ने उससे पुनः आलिंगित होते हुए कहा।

विहंगम-कुमार को ऐसा लगा, जसे वह अब शायद ही जीवित रह सके ! भर्त्सना स्वयं अप्रिय होती है, लेकिन प्रेमपात्र के मुँह से तो वह प्राणां-तक ही हो जाती है ! ....हाय रे, अभागा इस रूपसी के लिए समय व्यतीत करने का एक साधनमात्र बनकर रह रहा था। इससे अधिक उसका और कोई महत्व नहीं ! ....इस वाक्य को सुनने के पहल मौत क्यों नहीं आ गयी उसे ! कम-से-कम किसी के प्यार के संबल को लिए हुए तो जीवन के उस पार जाता। अब तो वह संवल उसी के द्वारा बिखेर दिया गया था जिसने उसे जीवन के अंचल में बाँधने की कृपा की थी।

'तुम्हारी रूप-श्री की याद मैं विदेश में एक क्षण के लिए भी नहीं विस्मृत कर पाया !' युवक ने उसके मसृण कपोलों पर चुंबन-चिह्न अंकित करते हुए कहा।

'मैं इसे नहीं मान सकती। काम करते समय तो मुझे भूलना ही पड़ता होगा। अन्यथा काम कैसे कर पाते ?' मुस्कराकर रमणी ने उत्तर दिया।

दोनों पलंग पर बैठ गये। इधर-उधर की बहुत-सी बातें होने के बाद युवक बोला--'इस बार कई बार मरते-मरते बचा हूँ। यह तुम्हारे भाग्य की दीप्ति थी, जो बच गया अन्यथा मेरे स्थान पर तुम्हें मेरी मृत देह मिली होती।'

सुनकर रूपसी ने दाँतों-तले उँगली दबा ली। भयातुर होकर बोली--'यह क्या कहते हैं आप ?'

'सच कहता हूँ, ऐसा ही हुआ होता। एक बार तो गाड़ी सड़क से उतरकर खेतों में चली गई थी। भगवान की कृपा हुई जो बच गया, अन्यथा मृत्यु न होती तो कम-से-कम अंग-भंग तो अवश्य ही हो जाता। एक बार एक आदमी की हत्या का दोषारोपण मेरे ऊपर किया गया !

अधिकारिवर्ग प्रमाण के अभाव में कुछ नहीं कर सका, अन्यथा मुझे फँसाने में कोई कसर उठा नहीं रखी गयी थी।'

रूपसी भय से काँप रही थी। बोली—'अवश्य यह सब किसी बुरे ग्रह का उत्पात है! उसकी शांति के लिए मैं पंडितजी को बुलवाती हूँ।'

नौकर शीघ्र ही पंडितजी को लेकर आया। पंडितजी ने काफी देर तक जन्मपत्री प्रभृति देखने के बाद कहा—'ग्रह तो सब ठीक हैं। समझ में नहीं आता, क्या कारण है!'

'पंडितजी, इस प्रकार विपत्तियाँ एक ही साथ क्यों आने लगीं?' रूपसी ने घबड़ाये-से स्वर में कहा।

पंडितजी कुछ देर सोचते रहे। फिर बोले—'आपलोग कुछ ब्राह्मणों को भोजन करा दीजिये और कुछ दान-पुण्य भी कीजिये। किसी पूर्व-कृत दुष्कर्म का यह फल हो सकता है!'

पंडितजी उठकर ज्यों ही जाने को हुए, उनकी दृष्टि उस पक्षी पर पड़ी, जिसका सारा उल्लास विषाद के श्यामांचल से आवृत हो गया था। बोले—'यह वनवासी यहाँ कितने दिनों से है?'

'यही कोई चार महीने हो रहे हैं।' —रमणी बोली। स्वर में उसके बड़ी उदासी थी।

'हो सकता है, इस पक्षी का ही शाप लग रहा हो! इसे मुक्त कर दीजिये।' ब्राह्मण देवता बोले।

रमणी ने उस विहंगम-कुमार को और देखा, लेकिन बोली कुछ भी नहीं।

बेचारा कितना उदास और विषण्ण है! जिसकी स्वतंत्रता अपहृत हो गयी हो, वह विषादग्रस्त तो होगा ही। हम मानव वास्तव में बड़े क्रूर होते हैं। किसी की स्वाधीनता छीनते हुए हमें तनिक भी संकोच नहीं होता।' विहंगम-कुमार की ओर देखते हुए ब्राह्मण ने कहा।

'लेकिन जब मैंने इसे बंदी बनाया था, यह बड़ा ही प्रसन्न था। आप सुनकर हँसेंगे, मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे यह अपनी इच्छा से बंदी हुआ है!' रूपसी ने विहंगम-कुमार की ओर देखते हुए कहा।

ब्राह्मण हँसा। बोला—'क्या कहना है! अपनी इच्छा से मनुष्य बंदी हो सकते हैं, वन के विहंगम नहीं। स्वतंत्रता का अभाव जितना कष्ट-कर इन्हें होता है उतना हमें नहीं!'

रूपसी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

'तुमने किस दिन इसे बंदी बनाया था? हो सकता है, वह कोई अत्यधिक अशुभ मुहूर्त्त रहा हो। अन्यथा विहंगम तो और लोग भी पालते हैं!' ब्राह्मण ने सोच-विचारकर कहा।

'दिवस तो मुझे स्मरण नहीं।' रमणी बोली।

'जब इसको लेकर इतनी शंकाएँ हो रही हैं तो इसे रखने से लाभ? इसे मुक्त ही कर दो।' पंडितजी ने फिर कहा।

विहंगम-कुमार पर यह दूसरा आघात था। प्रेम की जिस रेशमी डोर में वह अपने और उस सुकुमारी के अस्तित्व को बँधा पा रहा था, वह तो टूट ही गयी थी, अब उस रसवती की सौंदर्य-कौमुदी से भी उसे वंचित होना पड़ेगा!....कैसे बतलाये वह उस पंडित को कि बंदी बनकर उसने जीवन का सबसे बड़ा वरदान पाया है—मुक्त होने की उसे कोई आकांक्षा नहीं है! उस बंधन को वह जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य समझता आया है और जीवन के अंतिम क्षणों तक उससे मुक्त होना नहीं चाहेगा!

जिस वातावरण में रूप और रस की वह देवी निवास करती हो—जहाँ उसकी सुषमा की चंद्र-किरणें निशि-वासर प्रसारित होती रहती हों, उसमें रहकर भी यदि वह अपने को मुक्त नहीं समझ सका तो फिर सम-

झेगा कहाँ ? रूपसी का एक कोमल पद-निक्षेप उसके लिए सौ-सौ मुक्तियों के सदृश था।

अभागा अब क्या करे !....कैसे उसको बताये कि मुक्त होकर वह सब कुछ खो बैठेगा !—उसके जीवन की सारी श्री लुट जायगी। वह बरबाद हो जायेगा।

'तुम्हीं ने इसे बंदी बनाया था, तुम्हीं इसे छोड़कर भी आओ। तभी तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त हो सकेगा।' पंडितजी ने रूपसी से कहा।

रूपसी ने पिंजड़ा उठा लिया और बँगले से बाहर निकलकर पंछी को बाहर कर दिया।

पंछी ने पढ़ा—ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय !..और उड़ा नहीं। वहीं खड़ा रहा, जैसे उड़ने की शक्ति ही उसमें न रह गयी हो !

'कितना स्नेही है यह ! अभागे की जाने की इच्छा नहीं हो रही है।' रूपसी ने पंडितजी से कहा।

'इतने दिनों तक पिंजरबद्ध रहने के कारण इसके पंख शिथिल हो गये हैं। साथ ही अपने को मुक्त पाकर वह कुछ अविश्वास-सा भी कर रहा होगा कि कहीं उसे मुक्ति का प्रलोभन मात्र तो नहीं दिया जा रहा है। जो व्यक्ति अपना कोई अधिकार सदा के लिए या सुदीर्घ काल के लिए खो बैठता है, वह उसे प्राप्त होता देख अपने सौभाग्य की उज्ज्वलता पर प्रारंभ में अविश्वास कर ही बैठता है। चलो, हमलोग अंदर चले चलें। यह स्वयं कुछ क्षणों के बाद उड़ जायगा।'

तीनों लौटने लगे।

विहंगम-कुमार कराह उठा।—हाय रे निष्ठुर संसार ! उसकी अंतर्वेदना को समझनेवाला कोई नहीं ! किस मिथ्या स्वतंत्रता के सुख की महिमा का कीर्त्तन वह पंडित कर रहा है !

पीड़ाकुल स्वर में वह फिर बोल उठा––'ढाई अक्षर प्रम का पढ़े सो पंडित होय।'

लेकिन रूपसी ने झाँककर उसकी ओर देखा तक नहीं।

६

'विहंगम-कुमार को छोड़कर तुमलोगों को नहीं आना चाहिए था। पता नहीं, वह इस समय किस हालत में होगा। पूरे पाँच महीने हो गये उसे गये हुए। कोई समाचार नहीं मिला अभी तक।'

'हमलोग लौटकर नहीं आते तो आपको यह भी नहीं मालूम होता कि विहंगम-कुमार किस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए गये हुए हैं। अभी आप एक की चिंता से व्यथित हैं तब हम सबों की चिंता करते रहते।'

'बड़े अविवेकी हो तुमलोग! क्या एक विहंगम सूचना देने के लिए नहीं आ सकता था? इसी कारण तो हमारा विहंगम-समाज उन्नति नहीं कर पा रहा। तुमलोग मनीषा से काम लेना जानते ही नहीं। द्विपादों को देखो, बुद्धि का उपयोग करके उनलोगों ने अपने को कितना समुन्नत बना लिया है। सुन्दर महल बना लिये हैं। जिन बातों का स्वप्न भी इनके पूर्वजों ने नहीं देखा था, उनसे शरीर को श्रृंगारित करके जब वे अपने-अपने वेश्म से बाहर निकलते हैं तो मैं तो सचमुच लज्जित हो उठता हूँ कि एक ये लोग हैं और एक हमलोग हैं! जैसे हमलोगों के पूर्वज थे वैसे ही हमलोग भी

रह गय । कोई उन्नति नहीं की । हमलोगों की नीड़-निर्माण-कला तक उन्नत नहीं हुई ।' वृद्ध विहंगम बोला ।

'वाह, उन्नति कैसे नहीं हुई ? हमलोगों की भाषा में बहुत से नये शब्दों का समावेश हुआ है। हमलोगों के अनेक संगी-साथी मानवों के सुंदर दोहे सीख सके हैं जिनका तनिक-सा भी ज्ञान हमारे पूर्वजों को नहीं था ।' एक युवक विहंगम बोला ।

'यह तुमलोगों का मिथ्याभिमान है। तुमलोग पहले ऐक्य-सूत्र में आबद्ध हो जाओ और फिर अपनी उन्नति का सामूहिक प्रयास करो । अपने नीड़ों को सशक्त और सुन्दर बनाओ । अपनी भाषा को समुन्नत करो । मनुष्यों की जो साम्यतिक उन्नति हुई है, उसका सर्वप्रधान कारण उनकी भाषागत उन्नति है। यदि उन्होंने अपनी भाषा की उन्नति नहीं की होती, तो उनका सांस्कृतिक विकास असंभव हो गया होता ।' वृद्ध विहंगम बोला ।

कुछ देर सन्नाटा छाया रहा । अचानक एक विहंगम ने नीरवता भंग की । बोला—'लेकिन एक बात में हमलोग मनुष्यों से आगे बढ़ जाएँगे ।'

सब उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखने लगे ।

'वह कौन-सी बात है ?' वृद्ध विहंगम बोला । उसे कोई उत्सुकता नहीं हुई। वह युवकों के स्वभाव से परिचित था। जानता था, कोई अविवेकपूर्ण बात बोलेगा ।

'विहंगम-कुमार विधाता के पास ज्ञान लेने गये हैं । यदि वे सफलता प्राप्त करके लौट आये तो हमलोग दार्शनिक क्षेत्र में मनुष्यों से काफी आगे बढ़ जाएँगे ।'

यह सुनकर सब विहंगम प्रहर्षित हो उठे ।

'यह बात तो ठीक है । मनुष्य अभी सत्य की खोज में ही लगे हुए हैं । उन्हें सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकी है। यदि विहंगम-कुमार ने अपने

कार्य में सफलता प्राप्त कर ली तो हमलोग सिर उठाने लायक हो जाएँगे', वृद्ध बोला।

'लेकिन वह आखिर लौट क्यों नहीं रहा है? प्राची दिशा तो यहाँ से कोई खास दूरी पर भी नहीं है! उन पहाड़ों के उस पार ही तो सूर्योदय होता है।' एक दूसरा विहंगम बोला।

इस पर वे विहंगम हँस पड़े, जो विहंगम-कुमार के साथ सत्य की खोज के लिए निकले थे। बोले—'बस सिर्फ मालूम ही होता है। एक बार उस तक पहुँचने की चेष्टा करके देखो तब मालूम होगा कि कितना समीप है!'

इतने में विहंगम-कुमार आता दिखायी दिया। सब प्रहर्षित होकर उसकी ओर देखने लगे। वृद्ध ने मुस्कराकर स्वागत किया।

'बहुत दिन लगा दिये तुमने?'

विहंगम-कुमार के मुँह से बोली नहीं निकल रही थी। वह अत्यधिक परिश्रांत था। मार्ग में उसने न कुछ खाया था, न पिया था।

'यह अत्यधिक श्रमित प्रतीत हो रहा है। पहले इसमें शक्ति का संचार होने दो। मैं कुछ फल लाता हूँ।' कहता हुआ एक विहंगम उड़ चला।

'अजी, फलों से क्या होगा! मैं इसके लिए पुष्टिकर खाना लाता हूँ। आज ही एक मानव के पात्र से दो बार उठा लाया हूँ। हमलोगों की अवनति का एक प्रधान कारण यह भी है कि हमलोग भोजन पुष्टिकर नहीं करते। फलों में पानी के अतिरिक्त और होता ही क्या है!' एक विहंगम बोला।

सब मिलकर तरह-तरह से विहंगम-कुमार की परिचर्या करने लगे। कुछ समय बीतने के बाद वृद्ध ने पूछा—'तुम्हें अपने कार्य में सफलता मिली?'

'जी हाँ, मिल ग ी ।'

'संसार की वास्तावकता मालूम हो गयी तुम्हें ?' उल्लसित होकर वृद्ध बोला। अन्य विहंग उत्सुकतापूर्वक उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इस पर विहंगम-कुमार ने एक उच्छ्वास छोड़ते हुए कहा—

'जी हाँ, हो गयी।'

'हमें भी बतलाओ। सारे विहंगम-समाज को बतलाओ। उच्च स्वर में इस सत्य की घोषणा करो ताकि विहग-समाज का बच्चा-बच्चा ज्ञानी हो जाय और मनुष्यों से अधिक महान् हो सके।'

क्या उत्तर दे विहंगम-कुमार! धीमे स्वर में बोला—'सत्य इतनी जल्दी नहीं समझा जा सकता। उसके लिए कष्ट सहना पड़ता है। जब हृदय टूटता है तब सत्य की अग्नि-शिखा प्राणों में प्रज्ज्वलित होती है!'

सब विहंगम आश्चर्यित उसकी ओर देख रहे थे। एक बोला—'तुम्हारी बातें समझ में नहीं आ रहीं। पहेलियाँ न बुझाओ।'

'जब तक तुम स्वयं अपने लिए एक पहेली नहीं बन जाते तब तक संसार को समझना कठिन है। मैं संसार की वास्तविकता को क्षणभर में नहीं समझ सका हूँ।' विहंगम-कुमार बोला।

वृद्ध की समझ में भी बातें नहीं आ रही थीं। बोला—'यह तो बताओ, तुम प्राची दिशा तक पहुँचे या नहीं?'

'प्राची दिशा तक पहुँचने की आवश्यकता सत्य को जानने के लिए नहीं होती। विधाता तक पहुँचने की भी नहीं!'

'तब किस चीज की आवश्यकता होती है?'

'सत्य को जानने के लिए किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी ऐसा विशिष्ट स्थान नहीं जहाँ पहुँचकर ही सत्य की उपलब्धि हो सके। हृदय में सत्य के परिज्ञान की सच्ची लगन होनी चाहिए। फिर सत्य स्वयं सौन्दर्य बनकर अपना परिचय दे देता है!'

विहंगम-कुमार की बात किसी की समझ में नहीं आ रही थी।

'तुम लोग संसार की वास्तविकता न समझो तभी अच्छा है! इसे समझाने के लिए सत्य सौंदर्य बनकर शरीर और हृदय दोनों को बंधन-ग्रस्त करता है और फिर शरीर को तो मुक्त कर देता है, किन्तु हृदय मुक्त होते समय दो टुकड़े हो जाता है! तुम लोग मुझ से अधिक सुखी हो।'

सब विहंगम आश्चर्यित उसकी ओर देख रहे थे। उसकी बातें किसी की भी समझ में नहीं आ रही थीं।

दो दृश्य

पावस की सलज्ज संध्या बादलों का घूँघट डाले खड़ी थी ।

'यामिनी आ रही है रूपसि !' समीरण ने अपनी गति विवर्धित करते हुए कहा ।

'आने दो । आज कोई नई बात हो रही है क्या ?'

'लेकिन तुम्हारे जाने का समय हो गया है ।'

'जा रही हूँ, लेकिन यामिनी को कह देना कि बादलों का घूंघट आते ही डाल ले !'

'क्यों ?'

'इस क्यों का उत्तर न पूछो ।'

'मैं किसी से न कहूँगा ।'

'तुम और किसी से न कहो ! ....असंभव ! सबों के कानों में जा-जाकर न जाने कितनी-कितनी भूली हुई बातें कह दिया करते हो ! तुम्हें कुछ भी बतलाना अपने को अपयश का भागी बनाना है ।'

'तो न बताओगी ?' समीरण का तेज इस बार अधिक तीव्र था।

'नहीं। तुम तो इस तरह बातें कर रहे हो जैसे मेरा कुछ अनिष्ट कर डालोगे! यह भय मर्त्यलोक-निवासियों को दिखलाओ, जिनका कोई भी काम तुम्हारे विना नहीं चल सकता! मैं उस लोक की निवासिनी हूँ जहाँ तुम्हारा प्रवेश भी नहीं हो सकता!'

समीरण विक्षुब्ध हो उठा। विटपी जोरों से हिलने लगे।

'न बताओ। मैं बादलों को छिन्न-भिन्न कर दूंगा! देखूं, यामिनी कैसे उनसे अपने को छिपाये रहती है!'

इस बार संध्या सहमी। देखा, चपल समीरण का कोई ठिकाना नहीं! उत्पात कर सकता है। बोली—'एक शर्त्त पर तुम्हें बतला सकती हूँ। यामिनी से कहना मत।'

'स्वीकार है। बोलो।'

'यह तो तुम जानते हो कि मैं कतिपय क्षणों के लिये इस लोक में आती हूँ और कभी भी यहाँ के रहने वालों के क्रिया–कलाप पर दृष्टि नहीं डालती। लेकिन आज अचानक एक दृश्य मैंने देखा। घृणा और विक्षोभ से मैं सिहर उठी!'

'कौन-सा दृश्य था वह, जिसने संध्या सुकुमारी के हृदय को कँपा दिया!' व्यंग्यात्मक स्वर में समीरण ने कहा।

'मेरा उपहास करते हो?'

'उपहास नहीं, प्रश्न कर रहा हूँ। प्रश्न को ही यदि उपहास समझ लो, तो तुम्हारी भूल है यह!'

संध्या को क्रोध हो आया, नादान समीरण उससे बढ़-बढ़कर बातें कर रहा है, लेकिन विवशता थी। कुपित होकर चल देने से उत्पात की आशंका थी।

'एक सुकुमारी को तरह-तरह से पीड़ित, लांछित करके एक पूंजीपति ने उसे धक्के देकर घर से बाहर कर दिया।'

'ऐसा क्यों ?'

'पूरा हाल तो मैं भी नहीं जानती। लेकिन केवल इतना ही मालूम कर पायी हूँ कि वह उस धनपति की लड़की को पढ़ाती थी।'

'बात विचित्र-सी प्रतीत होती है! उस धनपति की लड़की को पढ़ाती थी, इसी अपराध पर उसे पीड़ित, लांछित, अपमानित करके घर से सेठ ने बाहर निकाल दिया! बात विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती। मेरे सामने कह दिया, सो कह दिया। औरों के सामने मत कहना, अन्यथा हँसी जाओगी!'

'समीरण, इन लोगों के क्रिया-कलाप को देखते हुए तुम्हें इतना समय हो गया लेकिन अभी तक तुम कुछ भी नहीं समझ पाये! बड़े बुद्धि-हीन हो तुम!'

समीरण फिर विक्षुब्ध हुआ। विटपी-दल जोरों से हिलने लगे। यामिनी के आने का समय निकटतर होता चला जा रहा था। संध्या डरी। बोली—'उन लोगों ने उस पर इस बात का लांछन लगाया कि वह सेठ के जवान लड़के को अपने प्रेम-पाश में फँसाने का प्रयास कर रही थी!'

'तो यह अपराध हो गया? नारी और नर का तो यह सनातन कर्त्तव्य है कि वे एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करें!' समीरण उद्विग्न होकर बोला।

'लेकिन दुनिया में नारी और नर की दो श्रेणियाँ हो गयी हैं। एक श्रमजीवियों की और दूसरी पूंजीपतियों की। श्रमजीवी नारियों या नरों को कोई अधिकार नहीं कि वे पूंजीपति नारी या नरों को अपने हृदय में स्थान'। ?

'मुझे तुम्हारी बातों में कोई रस नहीं आया। जाओ तुम। यामिनी आ रही है। लेकिन तुमने यह तो बताया ही नहीं कि वह बादलों से अपने को आवरित क्यों रखे!'

'वह सुकुमारी है। तुम्हें तो वज्र का हृदय मिला है, इसलिए ऐसे-ऐसे दृश्यों को देखकर भी मस्त झूमते फिरते हो, किन्तु यदि कहीं उसकी दृष्टि उस संतप्ता नारी पर पड़ गयी तो वह चीख उठेगी और फिर [illegible] स लोक में आने का नाम ले!' कहकर संध्या चलने को हुइ।

समीरण हँसा। बोला--'पगली, मुझे ही मूर्ख कहती है! यामिनी ऐसे-ऐसे क्या जाने कितने दृश्य देख चुकी है! तुमने आज एक साधारण-सा दृश्य देखा और छटपटा उठीं! यहाँ नित्य इससे भी अधिक हृदय-विदारक सहस्रों दृश्य यामिनी देखती है! तुमने तो केवल लांछित होते हुए ही एक श्रमजीवी नारी को देखा है। उसने पूँजीपति दानवों की बलिवेदी पर निरपराधों को चढ़ते हुए देखा है और मौन रही है! लाखों की चोरी करके महलों का निर्माण करनेवाले पूँजीपति के द्वारा ईमानदारी और परिश्रम के साथ दो रोटी कमानेवालों को जूते खाते देखकर भी वह सिहरी नहीं है! जिनका जीवन बेईमानी, मक्कारी, निर्लज्जता और बदमाशी से भरा पड़ा है, उन लखपतियों को मानव-समाज के द्वारा सत्कृत होते और सच्चाई, सादगी और सरलतापूर्वक जीवन यापित करनेवालों को अपमानित होते देखकर भी उसकी आँखों में जब आँसू नहीं आ पाये तो आज वह इस साधारण-सी बात से प्रभावित हो चुकी! विचित्र हो तुम भी! धूप में ही तुमने भी बाल सफेद किये हैं!'

संध्या अन्तिम वाक्य सुनकर चिढ़ी। अपनी रूप-श्री पर उसे अभिमान था।

'बाल तुम्हारे सफेद हो गये हैं। मेरे तो अभी भी स्वर्णाभ हैं।' कुपित होकर बोली।

समीरण हँसा। बोला---'अच्छा बाबा, चिर युवती हो तुम! जाओ। यामिनी आ रही है। लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि तुमने इस लोक के दर्शनीय काण्ड अभी नहीं देखे, अन्यथा इस साधारण-सी घटना से तुम प्रभावित नहीं होतीं!'

'मैं तुम्हारी तरह नारकीय प्रवृत्तिवाली नहीं। भगवान बचाये ऐसे दृश्यों से!' कहकर संध्या चली गयी।

समीरण उसे कुछ खरी-खोटी सुनाना चाहता था, किन्तु उसका वाक्य उसके मुँह में ही रह गया। संध्या अन्तर्हित हो गयी। क्रोध के मारे बुरा हाल था उसका! वृक्ष अधिक जोरों से हिलने लगे।

× × ×

'आँधी चल रही है बाहर! उठकर खिड़कियाँ बंद कर लेने दीजिये।' पति के आलिंगन-पाश में बद्ध रमणी ने महल के एक सुसज्जित कमरे के मखमली गद्दे पर लेटे-लेटे कहा।

'रहने दो उन्हें खुली ही! आँधी मुझे उस समय बहुत ही प्रिय लगती है जब तुम मेरे कलेजे से लगी रहती हो।' लक्षाधीश ने वासना-प्रेरित स्वर में कहा।

युवती उससे और अधिक चिपट गयी।

कतिपय चुम्बनों का मधुपान कराने के उपरान्त रमणी ने कहा, 'लेकिन आज आपने अच्छा नहीं किया। उस गरीब मास्टरिन को इस तरह सबों के सामने अपमानित नहीं करना चाहिए था!'

'चुपचाप लेटी रहो। मैंने जो किया, अच्छा किया। गरीबों से जहाँ ज्यादा अच्छा बर्त्ताव किया कि ये सिरपर चढ़ जाते हैं। इन्हें हमेशा दबा कर रखना चाहिए।'

समीरण के विक्षोभ के कारण खिड़कियाँ खटाखट हिल रही थीं।

× × ×

अपमानित, लांछित नारी अब कहाँ जाये! कौन ठिकाना है उसका इस परदेश में! सोचा था, आज सेठ के छोटे भाई से कुछ रुपये लेकर अपने रुग्ण पति के लिये दवा और कुछ फल लेती जायगी, सो यह परि-णाम हुआ! नौकरी से भी हाथ धो बैठी!

बीमार पति को लेकर वह इस शहर में उसकी चिकित्सा कराने के लिये आयी थी। यहाँ की स्वास्थ्यप्रद जलवायु में उसे रख कर पुनः उसके कृशकाय शरीर को नूतन शक्ति प्रदान करना चहती थी। उसका पति एक क्लर्क था। लेकिन क्लर्कों के पास आखिर पैसे एकत्र कहाँ हो पाते हैं! बीमार पड़ने के बाद नित्य नई विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। यह तो संयोग अच्छा हुआ कि पत्नी पढ़ी-लिखी मिली अन्यथा अभागा तड़प-तड़पकर मर जाता! जब पास के सब रुपये चिकित्सकों के पीछे

और औषधियों के पीछे फूंके जा चुके तब उसकी पत्नी ने सेठ की लड़की को पढ़ाना शुरू किया । उससे उसे काफी पैसे तो कहाँ से मिलते ! लेकिन किसी तरह काम तो चल ही जाता था ।

आकाश में बादल, चारों ओर भीषण अंधकार, जोरों की हवा। दुखिया नारी चुपचाप चली जा रही थी, प्राण-प्रदेश में रह-रहकर आस्फालन करनेवाले उग्र हुताशन को शीतल करने का प्रयास करती हुई ।

'कौन है ?' एकाएक किसीका कठोर स्वर उसे सुनायी दिया।

अबला डरी । रोंगटे खड़े हो गये उसके ! उत्तर कुछ भी नहीं दे सकी । टार्च का प्रकाश पड़ा उसके चेहरे पर और फिर दानवी हँसी ।..... अवश्य ये सैनिक हैं ! काँप उठी वह ! जानती थी, सैनिक कितने क्रूर होते हैं !

अब वह भागे भी तो किधर, किस तरफ! कौन रक्षा करेगा उसकी ? इस विस्तृत संसार में जहाँ लाखों नारियाँ अपने पतियों की गोद में छिप कर अपने को सुरक्षित पा रही हैं और स्वर्ग के सुख का इस मरणधर्मा नरकलोक में ही आस्वादन कर रही हैं, किसको पुकारे वह अपनी रक्षा के लिये ! !

सैनिक ने निकट आकर हाथ पकड़ लिया । बोला—'पाँच रुपये ! सिर्फ तीन आदमी हैं !'

नारी चीख उठी। बोली—'मुझे जाने दो। मैं वह नहीं हूँ जो आप लोग समझते हैं !'

अकेली भयकातरा हरिणी और सामने तीन भूखे बाघ !

देखा उसने, निस्तार नहीं है ! भागना असंभव है। भागकर वह कभी भी उनसे परित्राण नहीं पा सकेगी। फिर यदि कुछ रुपये अपने पति को

चिकित्सा और भोजन के लिये ले ही लेती है तो क्या बुरा करती है ! और यदि वह बुरा ही कर रही है तो क्या इतनी बड़ी दुनिया में क्या एक उसीके द्वारा बुरा कर्म हो रहा है ! लाखों पुरुष और लाखों भले घर की नारियाँ केवल अपनी कामुकता से प्रेरित होकर जब व्यभिचार करती हैं तो वह तो अपनी दरिद्रता से विवश हो कर ऐसा करने को तैयार हो रही है ! ....

× × ×

प्राभातिक किरणों ने विहगों के पंखों का स्पर्श करके चारों ओर कलरोर बिखेर दिया।

सेठ अपनी कार पर अपनी पत्नी के साथ घूमने जा रहा था। मार्ग में भीड़ देखी। सहज उत्सुकतावश कार रोकी और देखा, अर्धचेतनावस्था में एक नारी पड़ी है और दस-पाँच आदमी उसे घेरे खड़े हैं ।

सेठ को देखकर एक ने कहा—'हुजूर ! कोई बदमाश औरत मालूम होती है । रात को शराब पीकर आमदनी करने निकल गयी होगी ! लालच बुरी बला है। आखिर शरीर ही तो ठहरा ! नहीं सह सकी और बेहोश, होकर गिर पड़ी !'

सेठ ने विस्फारित नेत्रों से देखा, वह स्त्री और कोई नहीं, उसकी लड़की की मास्टरिन थी, जिसे उसने लांछित करके निकाल दिया था !

सेठ ने सोचा, उसे इस हालत में सड़क के किनारे पड़े रहने देना ठीक नहीं। इससे उसकी भी बदनामी होती है। लोग कहेंगे, सेठ की लड़की को पढ़ाती थी। उसके घर का पता उसे मालूम था। एक आदमी को उसे कार पर बिठा देने को कहा और फिर तीन-चार मिनटों में उस खँडहर के सामने जाकर कार रोक दी, जहाँ वह अवला अपने बीमार पति के साथ जीवन का भार ढोया करती थी।

'दरवाजा खोलो।' कठोरतापूर्वक उसने आवाज दी।

कोई उत्तर नहीं।

'दरवाजा खोलो और अपनी बीवी की काली करतूत अपनी आँखों से देखो! बेवकूफ कहीं के!'

इस बार भी कोई उत्तर नहीं। उसकी इच्छा तो हुई कि उस अर्धचेतन नारी को वहीं पटक कर चल दे, लेकिन उसने ऐसा किया नहीं। इसका कारण दया या परोपकार नहीं था। वह उसके पति की उस समय की मुखमुद्रा देखना चाहता था जब उसे अपनी पत्नी के चरित्र की वास्तविकता का ज्ञान हो सकेगा!

झुँझलाकर उसने दरवाजे के एक लात मारी! अमीरों के घर के दरवाजों को तोड़ने के लिये डाकुओं को भी घंटों परिश्रम करना पड़ता है किन्तु गरीबों के घर के दरवाजों को तोड़ने के लिये एक सेठ की लात काफी है! दरवाजा उस श्रमजीवी-रक्त-शोषक का आघात पाकर न जाने कैसी तो क्रंदनमयी आवाज कर उठा!

कमरे में एक साधारण-सी चारपाई पर चादर ओढ़े उसकी मास्टरिन का पति लेटा था। क्रूरतापूर्वक सेठ हँसा। बोला—'बेवकूफ! इसीलिए तो तू दरिद्र है कि सूर्योदय के बाद भी सोया रहता है! अपनी निर्धनता

को और अपने भाग्य को न कोसकर अपनी बुरी आदतों को कोसना तुम-लोग सीख जाते तो अवस्था सुधरने में अधिक देर न लगती।'

और यह कहते हुए उसने अपनी बेंत से उसके मुँहपर से चादर का आवरण हटा दिया । ....आँखें खुली हुई थीं। वह मरा पड़ा था !

सेठ भी तो आखिर मनुष्य ही था। सिहर उठा एक बार ! चुपचाप बाहर चला आया। पत्नी के प्रश्न का कोई उत्तर न देते हुए उस अर्ध-चेतन नारी को कार से उतार कर कार स्टार्ट कर दी।

घर पहुँचते ही सेठ को खबर मिली, सवेरे-सवेरे एक ऐसी चीज बिकी है, जिसके बिकने की कोई आशा नहीं थी और पूरे चार सौ का नफा हुआ है। सेठ की बाँछें खिल गयीं। अपने कमरे में पहुँचकर पत्नी के अधर पर चुम्बन-चिह्न अंकित करता हुआ बोला—'मुझे रास्ते में बड़ा अफसोस हो रहा था कि सबेरे-सबेरे तीन सौ का घाटा हो गया। लेकिन भगवान ने सुन ली। घाटा पूरा कर दिया।'

पत्नी समझ नहीं सकी। पूछा—'कैसे ?'

'जिस बेंत से उसके पति की चादर हटायी थी, वह पूरे साढ़े तीन सौ में खरीदी थी। साल भर में पचास तो वसूल हो ही गये। मुर्दे से छुआयी हुई बेंत घर में रखता कैसे ! किसी न किसी को दान में देनी ही पड़ेगी !'

फिर कुछ ठहर कर सेठानी के हाथ में पंद्रह रुपये थमाते हुए बोला—'मैं तो आज शामको रहूँगा नहीं। सत्यनारायण भगवान् की कथा में पंडितजी को यह दक्षिणा दे देना।'

× × ×

संसार को जीवन और जागृति का सन्देश देनेवाले ज्योतिर्दूत की किरणें चारों ओर प्रसारित हो रही थीं।

उस खँडहर की टूटी-फूटी सीढ़ियों पर वह अवला पड़ी थी। प्राभातिक किरणों के स्पर्श से उसकी चेतना लौटी। रात उसे पंद्रह रुपये मिले थे। दवाई लानी थी। कुछ संतरे भी। साड़ी के छोर में बाँध रखे थे। पता नहीं, किसने खोल कर निकाल लिये !....

सूने नेत्रों से उसने एक बार चारों ओर देखा। आकाश को देखा, वृक्षों को देखा, पास के मकानों को देखा, फिर अधिक न देख सकी। चक्कर आने लगा उसे।

समीरण सिहर उठा ! प्रतीची-क्षितिज की ओर दृष्टि डाली, लेकिन संध्या के आने में काफी देर थी, अन्यथा उसे वह दृश्य अवश्य दिखलाता।

सभ्य और असभ्य

उसका नाम मैं नहीं जानता, अतः कोई न कोई काल्पनिक नाम तो उसका रखना ही पड़ेगा। अच्छा हो यदि उसे 'सभ्य' ही कहा जाय, क्योंकि उसे अपने 'सभ्य' होने का बड़ा अभिमान था।

जहाज चला जा रहा था और वह डेक पर अपने दो चार साथियों के साथ इधर-उधर की बातें कर रहा था।

'हमलोगों ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है!' गर्वान्वित होकर वह बोला।

'विजय प्राप्त करने के मार्ग में हमलोग हैं। अभी विजय प्राप्त कहाँ हो पायी है?' दूसरे साथी ने कहा।

'हमलोगों की सभ्यता मानवजाति के इतिहास का सर्वाधिक गौरवपूर्ण अध्याय है।' वह बोला।

'निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। एक से एक आगे बढ़ी हुई सभ्यताओं के प्रदीप जल-जलकर बुझ चुके हैं। लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि हमलोगों की सभ्यता अपने स्थान पर बहुत ही महान् है।'

भोजन करने का समय हो गया था। अतः व्यर्थ का वाद-विवाद छोड़ कर सबके सब अपने कमरे में घुसकर एक मेज के चारों तरफ बैठ गये। तरह-तरह की खाद्य-सामग्रियाँ रखी हुई थीं।

'वह युग कितना कुत्सित रहा होगा जब इस पृथ्वी के आदि निवासी पशुओं के कच्चे मांस को दानवों की तरह खाते होंगे? शुक्र है खुदा का जो मैं उस युग में पैदा नहीं हुआ!'

'वह भी कोई जिन्दगी थी! हमेशा जंगली जानवरों का खतरा बना रहता था! गुफाओं में रहना पड़ता था!' दूसरा साथी बोला।

'तुम लोग गलती कर रहे हो। हमलोगों से वे अच्छे नहीं थे, तो बुरे भी नहीं थे। क्या मस्ती थी उनके जीवन में! चिन्ताओं का तो वे नाम भी नहीं जानते थे। आज हमलोगों के जीवन में जो नीचता, जो पाखण्ड और जो भीषण असौन्दर्य है, उसकी छाया भी उन आदिकालीन मानवों को नहीं छू सकी थी!' एक साथी बोला।

'तुम्हारी आदत अच्छी नहीं। तुम हमेशा बातें काटते रहते हो। यदि तुम्हें जंगली अच्छे लगते हों तो फिर अफ्रीका या आस्ट्रेलिया के जंगलियों में जाकर क्यों नहीं रहते?'

'तुमलोगों से थोड़ा प्रेम हो गया है, अन्यथा अवश्य चला जाता! जिन्हें तुम जंगली समझते हो वे मोटर, मकान, ट्रेन प्रभृति से बहुत दूर हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु उनका हृदय इन तथाकथित सभ्य व्यक्तियों से कहीं विशाल है!'

उसकी बात सुनकर सब हँसने लगे । सभ्य ने कहा—'तुम जरूर किसी जंगली के लड़के हो, तभी तुम्हारे दिल में उनके लिये इतनी जगह है !'

इतने में खबर मिली, जहाज का एक हिस्सा खराब हो गया है और कई कारणों से चालक यंत्र भी बिल्कुल काम नहीं कर रहा है। चेष्टा तो अधिकारियों के द्वारा प्राणपण से की जा रही है कि प्रत्येक यात्री की प्राण-रक्षा हो, किन्तु सफलता संभव नहीं दीखती। नौकाओं की संख्या बहुत कम है और स्त्रियाँ ही उन पर जा सकेंगी ।

सुनकर उनके रोंगटे खड़े हो गये। भय के मारे काँपनें लगे।

जहाज डगमगा रहा था । समुद्र की लहरें उस पर दुर्धर्ष वेग से आघात कर रही थीं, जैसे उसे क्षणों में लील जायेंगी।

२

पत्तों के द्वारा अपने गुप्तांगों को ढँके हुए वनचर नृत्य कर रहे थे। बीच में आग जल रही थी।

समवेत स्वर में वे गीत भी गाते जाते थे । गीत का अर्थ था—'तुम जबतक साथ हो तबतक न तो मुझे आँधी का डर है, न तूफान का और न भयावने जन्तुओं का ! तुम्हारी उँगलियाँ पकड़कर मैं निर्भय हो जाती हूँ। फिर न तो मुझे चीते से डर लगता है, न साँप से और न समुद्र के उस पार से आनेवाले आदमियों से जो बन्दूक लिये रहते हैं।'

गीत गाते-गाते सब के सब मस्त हो गये थे । करीब तीन घण्टे तक वे लोग नाचते-गाते रहे।

'वस अब वन्द करो। चाँद उग आया है।" उनमें से एक ने कहा। नृत्यकला में वही सबसे पटु समझा जाता था।

सब रुक गये और अपने-अपने स्थानों पर जा-जाकर बैठ गये। एक जंगली खाद्य के साथ विचित्र-सा जंगली आसव सब लोग मस्ती के साथ पीने लगे।

'अरे, चिलमी अकेली कैसे है ? उसका साथी आज उसके साथ नहीं दीखता।' एकने कहा।

चिलमी एक कोने में उदास बैठी थी। उन्मादक आसव का पात्र उसके सामने रखा तो था, लेकिन वह उन्हें छू नहीं रही थी। आज उसका साथी अनुपस्थित था।

चिलमी अपने साथी को बहुत प्यार करती थी। वैसे साथी को प्यार तो सभी करते थे, लेकिन चिलमी अपने साथी पर जान देती थी। उसके साथ चाँदनी रातों में जंगलों में इधर से उधर घूमती फिरती।

चिलमी कुछ बोली नहीं। न भोजन की सामग्री का उसने स्पर्श ही किया।

काफी समय हो गया। एक-एक कर सब चले गये। चिलमी भी उठी और जाने को हुई कि एकाएक उसके साथी की आवाज सुनायी दी। चिलमी के चेहरे पर प्रसन्नता द्योतित हो उठी, लेकिन झट उसने रूठी मुखमुद्रा बना ली।

लेकिन अपने साथी के कंधों पर एक गौर रंग के विदेशी को मूर्छितावस्था में देखकर वह कुतूहलपूर्वक पूछने लगी—'यह तुम्हें कहाँ मिल गया?'

'प्रश्न का उत्तर पीछे दूँगा। पहले गरम-गरम खाना लाओ। इसे खिलाया जाय। बेचारे की जान निकली जा रही है।'

पास ही आग जल रही थी। उस अर्धमूर्छित विदेशी को पास ही लिटाकर दोनों उसे होश में लाने का प्रयास करने लगे।

कोई घंटे भर के बाद वह होश में आया।

'मैं कहाँ हूँ?' होश में आते ही उसने पूछा।

चिलमी उसकी बोली सुनकर हँसी। उसके साथी ने आँखें तरेर कर उसकी ओर देखा।····लेकिन अब 'चिलमी का साथी' कहने से काम नहीं चलता दीखता। उसका नाम मुझे याद नहीं, और नाम कोई न कोई रखना ही पड़ेगा। जब नाम के अभाव में उस गोरे रंग के आदमी का नाम 'सभ्य' रख दिया गया तो फिर इस काले रंग के आदमी का नाम भी 'असभ्य' रखकर काम चलाया जा सकता है।

तो वह असभ्य उसकी भाषा न जानते हुए भी उसका प्रश्न समझ गया। बोला—'आप चिन्ता न करें। निरापद हैं।'

लेकिन सभ्य न तो उसकी भाषा समझ सका, न उसके भाव। घबड़ाया-सा उसकी ओर देखने लगा।

'डरो मत। हमलोग तुम्हारे मित्र हैं।' असभ्य बोला।

सभ्य उठकर बैठ गया। उन लोगों को विचित्र दृष्टि से देखने लगा। उनकी भाषा का एक भी शब्द वह नहीं जानता था। बोल उठा—'हे भगवन्! कहाँ पहुँच गया मैं? क्या हुआ मेरे साथियों का?'

भगवान् को उसने जानबूझ कर याद नहीं किया था। आत्मा की न जाने किस गहराई से वह शब्द अचानक ही दुःख का आघात पाकर बहिर्गत हो गया था अन्यथा जैसे नेपोलियन ने 'असंभव' शब्द को अपने शब्दकोष से निकाल बाहर किया था, वैसे ही इस सभ्य ने भी अपने शब्द-कोष से 'भगवान्' और उसके पर्यायवाची शब्दों को निकाल बाहर किया था।

जंगली शराब का पात्र उसके होठों से सटाते हुए असभ्य व्यक्ति ने कहा—'इसे पी लो। शरीर में और गर्मी आ जायगी।'

कुछ ही देर के वार्त्तालाप के उपरान्त दोनों समझ गये, भाषा से काम चलना कठिन है और इशारों के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं।

असभ्य व्यक्ति की झोपड़ी वहाँ से दूर थी। चिलमी पास ही रहती थी। तय हुआ, उसे रातभर चिलमी के ही साथ रहने दिया जाय। सबेरे वह उसे अपनी झोपड़ी में ले जायगा। और चिलमी को सावधान भी कर दिया गया कि यदि किसी ने उस परदेशी के हाथ लगाया तो खैर नहीं है।

चिलमी की बड़ी इच्छा हो रही थी कि उस गोरे रंग वाले आदमी से वह छेड़खानी करे,—उसे परेशान करे, लेकिन अपने साथी के क्रोध से भी वह अच्छी तरह परिचित थी।

सोना तो दूर रहा, उस सभ्य व्यक्ति ने कभी वैसी सेज पर सोने का स्वप्न भी नहीं देखा था। यदि उसका अपना सभ्य देश रहा होता तो काफी रुपये मिलने पर भी वह वैसी सेज पर सोने को तैयार नहीं होता। लेकिन थकावट के मारे वह चूर हो रहा था। फलतः लेटते ही नींद आ गयी।

असभ्य व्यक्ति और दिन सूर्योदय के काफी पहले ही उठ जाया करता था, लेकिन उस दिन उसे भी काफी थकावट रही। फलतः नींद टूटी नहीं।

इसी बीच चिलमी और उसके पड़ोसी जाग गये और उस परदेशी को घेर कर खड़े हो गये।

'यह कौन है और यहाँ कैसे आया ?' उनमें से एक ने उसे लात मारते हुए कहा।

चिलमी ने उसे ऐसा करने से मना किया। बोली—'इसका उत्तर मेरा साथी देगा। तुमलोग इसे तंग न करो। वह कल इसे समुद्र से ले आया है। बेचारा किस्मत का मारा हुआ है!'

उनमें से एक ने उसकी ओर क्रोधयुक्त मुद्रा से देखा और बोला—'किस्मत का मारा हुआ है! तुम औरतें ही तो हमलोगों को परेशान करती हो।

उस बार भी इसी रंग के कुछ परदेसी आये थे और तुम लोगों के कहने से हम लोगों ने उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ा। परिणाम यह हुआ कि एक दिन गिरोह लेकर वे आये और हमीं पर आक्रमण कर दिया! हमारे सैकड़ों आदमियों को मार डाला। ये गोरे रंग के आदमी बड़े क्रूर होते हैं!'

दूसरा बोला—'समुद्र के उस पार एक देश है जहाँ ये लोग रहते हैं। इनके अपने यहाँ तो कुछ होता नहीं। लूटमार करके जीवन व्यतीत करते हैं। यह उन्हीं का भेजा हुआ दूत मालूम होता है। यहाँ की सारी बातें वहाँ वालों को जाकर बतला देगा। फिर हमलोगों पर ये लोग किसी न किसी दिन अवश्य धावा बोल देंगे।'

'इसे तो मार डालना ही ठीक है' तीसरा बोला।

चिलमी बोली—'तुमलोगों की जो इच्छा होगी, करोगे, लेकिन जब तक मेरा साथी नहीं आ जाता तब तक इसके हाथ मत लगाओ। वह मना कर गया है।'

'वह हमलोगों का राजा है क्या, जो हमलोग उसकी बात मानेंगे? मार डालो बदमाश को। हमारा देश तबाह करने आया है।'

इतने में वह असभ्य व्यक्ति आता दिखलायी दिया। उसकी शारीरिक शक्ति के कारण सब उसका दबदबा मानते थे। उसे आता देख सब मौन हो गये।

'क्यों, कैसा है वह अब?' उसने आते ही चिलमी से पूछा।

'अभी तक तो सोया हुआ था, लेकिन इन लोगों के आने से और शोर करने से नींद टूट गयी है।' चिलमी बोली।

सभ्य व्यक्ति की नींद सचमुच टूट गयी थी और वह भयभीत-सा उन श्यामलतन व्यक्तियों को देख रहा था। रात भर के विश्राम के बाद उसका मस्तिष्क वस्तु-स्थिति को समझने योग्य हो गया था।

'और तुमलोग यहाँ क्या करने आये हो? क्या यहाँ कोई तमाशा हो रहा है? आदमी ही तो है वह भी ! रंग उसका हमलोगों के समान सुन्दर और काला नहीं है तो क्या हुआ? हमलोगों के समान बहादुर और निर्भीक जाति में वह उत्पन्न नहीं हुआ तो क्या हुआ? आखिर वह भी दो पैर और दो हाथ वाला आदमी ही है। तुमलोग उसे घूर-घूरकर क्यों परेशान कर रहे हो?'

सब मौन थे। किसीके मुँह से एक शब्द नहीं निकला।

कुछ देर के बाद डरता-डरता एक व्यक्ति बोला—'लेकिन ये लोग बड़े खतरनाक होते हैं। जहाँ इनके पैर पड़ते हैं वहाँ की जमीन इनके लिये तो उर्वर हो जाती है और वहाँ के रहनेवालों के लिये वंध्या। मैं तो इसे यहाँ अधिक देर रहने देने के पक्ष में नहीं।'

असभ्य हँसा। बड़ी मस्ती-भरी हँसी थी उसकी। बोला—'तुमलोगों को यह कायरता शोभा नहीं देती। माना, इसी के समान रंगवाले और आदमियों ने एक बार हमलोगों पर आक्रमण किया था और धोखा देकर सैकड़ों साथियों को मार डाला था। लेकिन सब तो एक-से नहीं होते!'

'हो सकता है, यह उन्हीं लोगों का भेजा हुआ आदमी हो!'

असभ्य व्यक्ति फिर जोरों से हँसा। बोला—'हो सकता है, यह उन लोगों का भेजा हुआ आदमी नहीं हो!'

बातें करने में वह समस्त वनचरों से आगे था।

'तुमलोग डरो मत। यह बेचारा समुद्र में डूब रहा था। इनका जहाज डूब गया है। मैंने बड़ी कठिनाई से इसके प्राण बचाये हैं। कल मछलियाँ मारने के लिये मैं नाव लेकर गया था। और दिनों की अपेक्षा कल कुछ आगे निकल गया था। अचानक इस पर दृष्टि पड़ी। अभागे की बड़ी करुणाजनक हालत थी। तुमलोग इस गरीब पर संदेह मत करो।'

३

सभ्य व्यक्ति ने धीरे-धीरे उन लोगों की भाषा के कुछ शब्द सीख लिये और इशारों के द्वारा और उन शब्दों के द्वारा किसी तरह अपना काम चलाने लगा।

असभ्य उससे बहुत हिल-मिल गया। उसे अपने कंधों पर बैठाकर निर्झर की उच्चतम शिला पर ले जाता और किलकारी मारता हुआ, उछलता-कूदता हुआ नीचे को आ जाता। कभी पेड़ की किसी शाखा से लटककर झूलने लगता और झूलते-झूलते ही नीचे आते समय सभ्य को दोनों पैरों के बीच ले लेता और ऊपर चला आता। आरम्भ में सभ्य डर के मारे काँपने लगता था, किन्तु धीरे-धीरे अभ्यस्त हो गया।

'तुम मेरे मित्र हो न?' असभ्य ने सभ्य की पीठ थपथपाते हुए कहा।

उनलोगों की इतनी भाषा वह समझने लगा था। बोला---'अवश्य।'

असभ्य ने उसे गले से लगा लिया। बोला---'तुम मस्त रहो। तुम्हारा यहाँ कोई कुछ नहीं विगाड़ सकता।'

असभ्य के दूसरे साथी यह सब देखकर चिढ़ते। स्वयं चिलमी भी सभ्य से नाराज थी। उन्हें पूरा सन्देह था कि शीघ्र ही वह गोरा आदमी कोई न कोई गजब ढायेगा।

'तुमलोग उस बेचारे पर व्यर्थ ही क्यों सन्देह करते हो! देखते नहीं, कितना कायर और शक्तिहीन है वह!' असभ्य एक दिन अपने साथियों से बोला।

'दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है!' चिलमी बोल उठी।

गोरे रंग के उस परदेशी के प्रति जो विरक्ति आरम्भ में उन जंगलियों में थी, वह क्रमशः क्षीण हो चली। और वे लोग अपने उत्सवों में भी उसे सम्मिलित करने लगे। नृत्य में भी एक दिन उसने भाग लिया और उसके नाचने का बेहूदा ढंग देखकर सब घण्टों हँसते रहे।

'तुम किस देश के रहने वाले हो? वहाँवालों को नाचना तक नहीं आता!' चिलमी बोली।

'नाचना तो दूर रहा, इसे तो बोलना भी नहीं आता। बच्चों की तरह इशारों से बातें करता है!' किसी ने कहा।

सब हँसने लगे। समुद्र के उस पार रहनेवाला वह बेचारा सभ्य नागरिक उन विपिनवासियों के बीच बेवकूफ बन रहा था।

४

वह रोज समुद्र के तट पर जाता और पागल की तरह घण्टों बैठा रहता!

शिकार करने के बाद असभ्य व्यक्ति चिलमी के साथ उसके पास आकर उसके सामने कुछ जंगली फल रख देता और कहता—'खा लो इन्हें। बड़े मीठे हैं ये।'

समुद्र के उस पार यदि उसे ऐसे फल मिलते तो वह छूता भी नहीं, लेकिन समुद्र के इस पार वह ऐसे फलों को पाकर फूला नहीं समाता!

'तुम बड़े उदास रहते हो साथी !' एक दिन असभ्य व्यक्ति ने सभ्य से कहा।

कुछ बोला नहीं वह।

'डरने की कोई बात नहीं। साफ-साफ कहो न। देश जाने की इच्छा होती है क्या ?'

सतृष्ण नेत्रों से उसने उसकी ओर देखा और बोला––'तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा यदि यहाँ से मेरा निस्तार करा दो।'

चिलमी चिढ़ी। बोली––'तुम तो ऐसी बातें करते हो जैसे यह कोई नरक हो !'

असभ्य व्यक्ति ने इशारे से चिलमी को मना किया और बोला–– 'लेकिन आखिर तुम्हें यहाँ कमी किस बात की है ?'

'तुम्हारे साथी बहुत बुरे हैं। इनका रहन-सहन मुझे बिलकुल पसंद नहीं। ये लोग हैं भी बड़े क्रूर। मुझे डर लगता है, कहीं किसी दिन मुझे मार न डालें।'

सुनकर असभ्य व्यक्ति हँसा। बोला––'पागल हुए हो ! तुम्हें मार डालने का दुस्साहस मेरे रहते कोई भी नहीं कर सकता।'

फिर कुछ देर सोचने के बाद बोला––'मेरे मित्र, हो सकता है, समुद्र के उस पार के रहनेवालों का रहन-सहन बहुत अच्छा हो और वे बड़े ही दयालु होते हों !'

चिलमी तमकी। बोली––'तुम भी कैसी बातें करते हो ! समुद्र के उस पार रहनेवाले तो अव्वल दर्जे के डाकू और क्रूर होते हैं ! हम लोगों पर उन्होंने कम अत्याचार नहीं किये थे !'

सभ्य व्यक्ति उस असभ्य व्यक्ति के सामने उतना नहीं डरता था जितना औरों के सामने। उसकी उपस्थिति में उसका भय बहुत कुछ अंशों

में दूर हो जाता था। चिलमी की बात उसे बुरी लगी। बोला—'हमलोग जैसा जीवन बिताते हैं, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते! मैं अपने देश की सुन्दरताओं और विशेषताओं का क्या वर्णन करूँ! तुम इसे समझ ही नहीं सकते! तुम लोगों का स्वर्ग उसके सामने तुच्छ है!'

अपने स्वर्ग का अपमान असभ्य को भी सुनने में कटु मालूम हुआ। बोला—'अच्छा, कोशिश करूँगा कि तुम्हें जैसे भी हो, तुम्हारे देश पहुँचा दूँ!'

५

चन्द्र-द्योतित राका। सरिता का सुन्दर प्रतीर। वृक्षों की ज्योत्स्ना-स्नात पंक्तियाँ।

'चिलमी!'

'मेरे साथी!'

'तुम्हें यदि जंगल के जानवर किसी दिन उठाकर ले गये तो मैं चाँदनी रातें किसकी गोद में सिर रखकर बिताऊँगा?'

'और तुम्हें यदि कहीं समुद्र के उसपार रहनेवाला वह डाकू अपने साथ ले गया तो मैं क्या करूँगी? किसकी छाती का सहारा लेकर समुद्र की लहरों से संघर्ष करूँगी?'

'समुद्र के उस पार मुझे कौन ले जा सकता है?'

'ले कोई नहीं जा सकता। तुम स्वयं जा सकते हो।'

'कैसे ?'

'कहीं अपने देश को स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर बतलानेवाला वह गोरा तुमसे यह देश सदा के लिये छुड़वा न दे !'

सुनकर वह हँसा। चिलमी को कलेजे से लगाता हुआ बोला—'देश से जब आदमी दूर होता है, तो उसका मोह बहुत बढ़ जाता है चिलमी ! उसके देश में तुम रही होतीं तो तुम भी ऐसी ही बातें करतीं !'

'तो तुम उसके साथ नहीं जाओगे न ?'

'पागल हुई हो ! मेरा देश संसार का सबसे अच्छा देश है ! ऐसे पेड़, ऐसी नदियाँ, ऐसे पहाड़ और ऐसे जानवर कहीं भी नहीं होते ! मैं इस देश को छोड़कर उन कमजोर और आलसी आदमियों के देश में जाऊँगा, जो....'

'जो नाचना और बातें करना भी नहीं जानते ! बच्चों-की-सी जिनकी खुराक है और जानवरों को देखकर जो ऐसे डरते हैं जैसे मौत आ गयी हो !' चिलमी जोरों से हँस रही थी।

असभ्य व्यक्ति भी उसकी हँसी में हँसी मिला रहा था।

'तुम्हारा यह गोरा दोस्त बड़ा कायर है ! उस दिन बाघ को देखकर ऐसा भागा कि छोटे-छोटे बच्चे भी हँसने लगे !' चिलमी हँसती हुई बोली।

उसका साथी भी हँसा। बोला—'अपने-अपने अभ्यास की बात है चिलमी ! जैसा कि वह बतलाता है, उसके देश में बाघ शायद ही कभी दिखलायी देते हैं। खास करके जहाँ लोग रहते हैं, वहाँ तो बाघ कभी भी नहीं आते।'

'छिः, वह भी कोई देश है तब ? कैसे इनका जी लगता होगा ! बाघों से लड़ने में जो मजा आता है, उसे ये कभी भी नहीं जान पाते होंगे !'

रात बढ़ती चली जा रही थी। चिलमी अपने साथी के शरीर से इस तरह चिपक गयी थी जैसे वृक्ष से कोई लता!

६

'सुना है, तुम उस गोरे परदेसी को उसके देश पहुँचाने की कोशिश में लगे हुए हो!' पिता ने कहा।

'हाँ, उसकी यहाँ तबियत नहीं लगती। अपने देश जाने के लिये बहुत छटपटाता है वह!'

'उसकी छटपटाहट दूर करने के लिये तुम हम लोगों की जान आफत में डाल दोगे!' क्रोधित स्वर में चिलमी के पिता ने कहा।

'यह आप क्या कह रहे हैं?' आश्चर्यित--सा वह बोला।

'तो और क्या? तुम क्या समझते हो कि अपने देश जाकर वह अपने साथियों को लेकर हम लोगों पर आक्रमण करने के लिये फिर नहीं आयेगा?'

'यह आपलोगों का भ्रम है। वह बेचारा क्या खाकर हम लोगों पर आक्रमण करेगा!'

'उनके पास बन्दूकें होती हैं। शारीरिक शक्ति से तो वे हमलोगों की स्त्रियों से भी नहीं लड़ सकते।'

'तो अपकी क्या सलाह है, क्या किया जाय उस परदेशी का?'

'असभ्य' चिलमी के पिता का आदर करता था, क्योंकि यदि ऐसा नहीं करता तो चिलमी से हाथ धो बैठने की सम्भावना थी। दूसरा कोई व्यक्ति यदि उससे ऐसी बातें करता तो वह उसको पेड़ से बाँध देता।

'उसे मार डालो।'

'ऐसा तो नहीं हो सकता। मैंने उसकी जान बचायी है। एकबार किसीकी प्राण-रक्षा करने के बाद फिर उसके प्राण लेना मुझे अमानुषिक मालूम देता है।'

चिलमी का पिता लाल-पीला होता हुआ वहाँ से चल पड़ा। असभ्य उदास और चिन्तित अपने परदेशी बन्धु के पास आया। बोला—'यदि तुम्हारी यहाँ से जाने की ही इच्छा है तो चलो, मैं अपनी नौका पर बैठा कर तुम्हें यहाँ से १००–१५० मील की दूरी तक ले जाता हूँ। वहाँ एक बहुत बड़ी चट्टान है; वहीं बैठकर हमलोग जहाज के आने की प्रतीक्षा करेंगे। तुम अपने देश चले जाओगे। मैं वापस चला आऊँगा।'

सभ्य की प्रसन्नता सीमाहीन हो उठी। असभ्य के गले से लग गया। बोला—'जल्दी करो।'

'तुम्हें मुझ से बिछुड़ते हुए तनिक भी दुःख नहीं होता साथी!' असभ्य बोला। वह उदास था।

सभ्य ने कोई उत्तर नहीं दिया। नौका चल पड़ी।

मार्ग में दोनों में बातें बहुत कम हुईं। असभ्य भूल जाना चाहता था कि वह किसी दोस्त को पहुँचाने जा रहा है और उसका दोस्त सदा के लिये उससे बिछुड़ रहा है।

संयोग की बात। एक जहाज जाता हुआ दिखलायी दिया। असभ्य ने जल्दी-जल्दी नाव को उसके पास कर दिया। सभ्य सहायता के लिये

चिल्लाया। उसके कई बार चिल्लाने पर जहाज के डेक से रस्सियाँ फेंकी गयीं और उनकी सहायता से वह जहाजपर पहुँच गया।

उसे लेकर जहाज आगे को बढ़ गया——लहरों को चीरता हुआ।

असभ्य को लौटते समय बड़ी थकावट मालूम हो रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वह कुछ ही दूर और नौका खे सकेगा!....

७

'कौन है यह?'

'यह तो शत्रु-दल का आदमी मालूम होता है।'

'फेंको इसे। इस अंग्रेज के बच्चे को समुद्र की लहरों में ही व्यापार करने दो। इटालियनों के जहाज में इसके लिए जगह नहीं हो सकती।'

और यह कहकर उन इटालियन सैनिकों ने उसे उठाकर समुद्र में फेंक दिया।

अभागा क्या करे अब?····जल्दी-जल्दी तैरता हुआ उधर बढ़ने की कोशिश करने लगा जिधर उसके उस जंगली साथी की नौका चली जा रही थी।

नौका की गति धीमी थी, फिर भी उसके लिये उसे पकड़ पाना कठिन था।

आँखों के आँसुओं को पोंछ कर असभ्य ने एक बार नजर घुमाकर फिर उधर देखा, जिधर सदा के लिये उसका एक सीधा-सादा गोरे रंग

का दोस्त चला जा रहा था !····लेकिन, यह क्या ? एक मानव लहरों से संघर्ष कर रहा है !····

उसने नाव की गति मोड़ी । शीघ्र ही उसके पास पहुँचा । देखा, उसका साथी है ! आश्चर्य और विक्षोभ से उसने उसे नाव पर लिटा दिया । उसकी हालत खराब हो रही थी । दम फूल रहा था ।

जल्दी-जल्दी वह नाव चलाने लगा । पसीने से सारा शरीर भींग गया था । किसी तरह से नाव किनारे लगायी और अपने दोस्त को उतारकर जमीन पर लिटाया ।

'यह कैसी विचित्र बात है साथी ! तुम मेरे देशवासियों को क्रूर बतलाया करते थे और कहते थे कि तुम्हारे देश के रहनेवाले बड़े सदय होते हैं । हमें जंगली कहकर तुम हमसे घृणा करते थे लेकिन जिनकी सभ्यता पर तुम्हें इतना नाज था और जो तुम्हारे ही रंग के भी थे, उन्होंने तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ?'

उसका वह सभ्य साथी जीवित रहता, तो शायद इस प्रश्न का उत्तर देता, लेकिन वहाँ तो लाश पड़ी थी । वह क्या उत्तर देती !
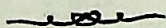
जड़वादी

सन्ध्या की धूमिल घड़ियाँ।

अस्त होते हुए अंशुमाली की ओर शोभा अपलक दृष्टि से देख रही थी। उद्यान के सुकुमार पुष्पों के स्पर्श से सौरभित हो-होकर सान्ध्य समीरण उसके केशों को हिला-हिला जाता था।

उसे इस अवस्था में काफी देर हो गई। सूर्य अच्छी तरह से अस्तमित हो गया और अन्तरिक्ष–पथ में तारकों के स्वर्ण-प्रदीप जलाकर यामिनी भी अपना श्यामल रेशमी अंचल फहराने लगी।

'क्या देख रही हो शोभा?'—उसके एक सहपाठी ने पीछे से आकर स्नेहसिक्त स्वर में पूछा।

शोभा चौंकी। देखा, उसका सहपाठी शिरीष गुरुदेव की लिखी काव्य-पुस्तिका लिये मुस्करा रहा है।

'यही सोच रही हूँ शिरीष, कि जब एक दिन जीवन-दिनमणि को प्रतीची के क्रोड़ में अपनी आभा का विसर्जन करना ही है तब व्यर्थ क्यों हमलोग इस नश्वर प्राभातिक सुषमा का तरह-तरह से शृङ्गार करें !'

शिरीष चुपचाप शोभा की ओर देखता रहा। उत्तर कुछ भी नहीं निकल सका उसके मुख से।

संसार के समस्त सुख, समस्त शोभाएँ, समस्त क्रीड़ा-उल्लास नश्वर हैं; मैं अनश्वर की ओर जाना चाहती हूँ। मुझे सांसारिक सुखों से घोर वितृष्णा हो रही है।'

'किन्तु शोभा, तुम यह क्यों भूल जाती हो कि यह संसार पूर्णतया निरानन्द नहीं है। दुःखों की अधिकता यहाँ है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु सुखों का भी ऐकान्तिक अभाव नहीं है।'

'मुझे तो यहाँ कहीं भी सुख दिखलाई नहीं देता। जिसे तुम सुख कहते हो, वह मरु-पथ के जलाभास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सुखों का रेशमी आवरण अपने ऊपर डाले हुए इस मायालोक में दुखों की पिशाचिनियाँ जीवन-यात्रियों को सदैव पथ-भ्रष्ट करने में लगी रहती हैं।"

शिरीष कुछ देर मौंन रहा। शोभा की रूप-श्री उसके अन्तर्देश में स्वप्नों के स्वर्णिम नगर का निर्माण कर रही थी और उसके विचार उसका विध्वंस करने में लगे हुए थे।

'किन्तु एक ऐसी वस्तु है, जो इस दुःखालय में भी हृदय के तिमिराकीर्ण गगन को चन्द्रिका-स्नात करने की क्षमता रखती है!' शिरीष उत्साहित होकर बोला।

'वह कौन-सी वस्तु है?'

शिरीष स्पष्टतापूर्वक इसका उत्तर नहीं देना चाहता था, किन्तु घुमा-फिरा कर उत्तर वह दे नहीं पाया। निकल ही पड़ा उसके मुख से—'वह वस्तु प्रेम है शोभा ! जब सरिता के किसी सुन्दर प्रतीर पर प्रेमी अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य की वारुणी से अपने हृदय को प्रमत्त करता हुआ उसकी गोद में सिर रखकर सो जाता है और उसके केशों को सहलाती हुई प्रेमिका आकाश के अनन्त नक्षत्रों की ओर देखकर अपने प्रेम के अमरत्व की नीरव भाषा में घोषणा करती है, उस समय देवता भी इस दुःखालय मायालोक के निवासियों से ईर्ष्या करने लगते हैं शोभा ! जीवन का यह यात्रा-पथ कण्टक-संकुल है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु किसी के कमल-कोमल करों को पकड़े हुए जब जीवन-यात्री चरण आगे बढ़ाता है, उस समय उसका सुख सीमाहीन हो जाता है। अर्धरात्रि की नीरवता में किसी की आँखों से आँखें मिलाकर मुस्करा देने में जो सुख छिपा है, क्या तुम्हारी दृष्टि में उसका कोई भी महत्व नहीं शोभा !'

शोभा मुस्कराई। बोली—'मुझे तुम्हारे ऊपर दया आती है शिरीष ! इस मायालोक में प्रेम एक नशे के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और नशा आखिर कबतक भुलावे में रख सकता है ! टूटना तो उसे है ही। और इस नशे के उतरने के बाद प्रेमियों की जो अवस्था होती है, कभी उस पर भी तुम्हारा ध्यान गया है ? प्रेम वासना का ही एक परिमार्जित रूप है शिरीष ! और वासना सदैव दुःखयोनि होती है।'

'सच्चा प्रेम शारीरिक वासना के बन्धनों से विनिर्मुक्त रहता है शोभा !'

शोभा हँसी। बोली—'मुझे विश्वास नहीं। तुम यदि समझते हो कि प्रेम के द्वारा तुम अपना कल्याण कर सकोगे और सुख पा सकोगे तो अपनी राह पर चले चलो। देखो, क्या परिणाम होता है ! कुछ ही दूर जाने के बाद मार्ग के रज-कणआँसुओं से भिगोने पड़ेंगे।'

'लेकिन वे आँसू भी वैराग्य की हँसी से अधिक अच्छे होंगे शोभा !'

'तो जाओ, प्रेम-पथ के पथिक बनो और परिणाम की प्रतीक्षा करो।'

शिरीष लेकिन जाये कहाँ ? जिसके प्रेम-पथ का पथिक वह बनना चाहता है, वह तो प्रेम से घृणा करती है--उसे सर्वथा निस्सार समझती है ! फिर वह किसके द्वार-देशपर जाकर धूनी रमाये ? जिस शोभा की शोभा ने उस आश्रम-निवासी के हृदय में अनुराग जागृत किया, वही जब उसका साथ नहीं देगी तो वह अभागा स्वप्नों के मधुवन में प्रवेश फिर किसके साथ करेगा ?

कोई उत्तर नहीं दिया उसने। उत्तर देता भी तो क्या देता ! चुपचाप अपने कुटीर की ओर चला आया।

२

'शोभा, मुझे तुम्हारे समान छात्री पर गर्व है।' गुरुदेव ने कहा।

'सब आपकी कृपा है गुरुदेव ! अन्यथा मैं किस योग्य हूँ !' शोभा नम्रतापूर्वक बोली।

आश्रम में आज उत्सव था। चारों ओर वेदमन्त्रों का पाठ हो रहा था। हर्षातिरेक से समस्त आश्रमनिवासियों की मुखश्री प्रफुल्लित हो रही थी।

शोभा ने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए संसार में सद्धर्म के प्रचार का बीड़ा उठाया था। उसके पहले इस पद को किसी भी नारी ने सुशोभित नहीं किया था। आश्रम के गुरुदेव एक वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध तपस्वी थे। संसार में सद्धर्म का प्रचार करने के लिये उन्होंने एक मण्डल

खोल रखा था, जिसके प्रधान का चुनाव पाँच वर्षों में एक बार होता था। शोभा पहली नारी थी, जिसने अपनी प्रतिभा, सच्चरित्रता एवं कर्त्तव्य-परायणता के द्वारा इस गौरवपूर्ण पद को प्राप्त किया था।

सूर्यास्त के कुछ पहले विशाल वट-विटपी के नीचे समस्त आश्रम-निवासी एकत्रित हुए। उन्हें सम्वोधित करते हुए गुरुदेव ने कहा—'शोभा अवतक केवल इस आश्रम की शोभा थी। अब आज से वह सारे भूमण्डल की शोभा वढ़ायेगी। मुझे विश्वास है, संसार के कोने-कोने में उसके द्वारा सद्धर्म का प्रचार होगा। अज्ञानान्धकार से आक्रान्त इस मायालोक में स्वर्गिक आलोक-किरणों का आनयन करने में शोभा समर्थ हो, यह मेरी हार्दिक कामना है। संसार में चार्वाक का जड़वाद प्रसारित हो रहा है और लोग धर्म के नाम पर अधर्म को प्रश्रय दे रहे हैं। मेरा आशीर्वाद है, शोभा आत्मवाद की ज्योति का प्रसार करने में समर्थ हो !'

आश्रम-निवासियों की तुमुल हर्षध्वनि के बीच गुरुदेव ने शोभा के ललाट पर तिलक लगाया। शोभा ने चरण छूकर गुरुदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

शोभा ने एक छोटी-सी वक्तृता दी, जिसमें उसने अपने भावी कार्य-क्रम पर प्रकाश डाला और सद्धर्म-प्रचार-मण्डल के कार्यकर्त्ताओं को पहले से अधिक तत्परता एवं तन्मयता के साथ कार्य करने का आदेश दिया।

'हमलोगों को अब अधिक उत्साह के साथ कार्य करना पड़ेगा। आँधियों और ववण्डरों को अपना सहचर समझते हुए मरुस्थलों, पर्वत-पथों में विचरण करना पड़ेगा !'—शोभा के इस प्रकार के वाक्यों ने अन्य सहकर्मियों के प्राणों में अभिनव उत्साह एवं कर्मोन्मादना संचारित कर दी।

गुरुदेव आज अत्यन्त प्रसन्न थे। सभा-विसर्जन के बाद मुस्कराते हुए शोभा से वोले—'शोभा, मुझे विश्वास है, संसार के इस भीषण असौन्दर्य

एवं हाहाकार के बीच तुम स्वर्ग की शोभा बनकर अपना कार्य सम्पादित करोगी।'

३

अभागा शिरीष !

क्या करे वह ! किससे अनुरोध करे अपने अन्धकारित जीवन-मार्ग के बुझे हुए दीपकों को पुनर्वार प्रज्वलित करने का ! उसके व्योम में सुधांशु का ज्योत्स्ना-वितरण तो कभी भी नहीं हो पाया था,—कभी भी उसके अन्तर्विटपी की शाखाओं पर बैठकर तड़पने, तरसनेवाले भावुक चकोर के नयन परितृप्त नहीं हो सके थे, किन्तु अब तो तारकों के अस्तित्व को भी लुप्त करती हुई भीषण मेघमालाएँ गर्जन कर रही थीं ! सुमनोहर कल्पनाओं के सरस, सुकुमार, पाटल पुष्प को एक नई और निर्मोह आँधी के झोंके ने वृन्तच्युत करके मार्ग-रज में फेंक दिया था और उसकी पँखड़ियाँ छिन्न-भिन्न होकर शिरीष के जीवन-विटपी का उपहास कर रही थीं।

शिरीष के जीवन में अब कौन-सा रस बाकी रह गया था ! शोभा के साथ वह रह सकता था, किन्तु उसके साथ रह कर अपने पिपासाकुल हृदय की क्रन्दन-ध्वनियाँ रोक रखने की क्षमता वह अपने में नहीं पा रहा था। शोभा का सारा जीवन त्याग और तपस्या का जीवन हो चुका था। प्रेम की लतिका का आलिंगन उसके जीवन-विटपी से होना तो असम्भव नहीं था, लेकिन उसका अस्तित्व वहाँ सर्वथा अरक्षित था। जिस विटपी

का अस्तित्व ही आँधियों और तूफानों के बीच में हो, वहाँ कोमल कलेवरा लतिका कबतक अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सकती है!

शिरीष ने सोचा—'शोभा की गोद में सिर रखकर चन्द्रिका-स्नात यामिनी में प्रेम के मदभरे सपने देखने की आकांक्षाएँ कभी की चिता की लपटों में आत्म-समर्पण कर चुकीं, लेकिन इसीलिए अब अपने पार्थिव अ-स्तित्व को भी मृत्यु के अन्धकारित गर्त में विलुप्त कर देना उचित नहीं। शोभा के अभाव में मृत्यु के उस पार क्या मुझे सुख की अनुभूति हो सकेगी? लोक-लोक उसके विरह में भटकता फिरूँगा। जबतक शोभा इस मर्त्यलोक में है तब तक मैं भी यहीं रहूँगा और उससे दूर रहते हुए भी उसके सबसे अधिक निकट रहूँगा।'

शिरीष ने अपनी सारी शक्तियाँ उसके बाद ज्ञानार्जन में लगा दीं। निशिवासर अध्ययन में लगा रहता। शोभा अध्यात्मवाद का प्रसार चतुर्दिक कर रही थी, उसने अनात्मवाद के प्रचार का बीड़ा उठाया! शोभा के साथ अनेक थे, उसका साथ देनेवाला कोई भी नहीं था!

शिरीष उन्हीं सिद्धान्तों को मानता था, जिनका प्रचार शोभा चारों ओर अपनी ओजस्विनी वक्तृताओं से कर रही थी, किन्तु फिर भी उसने चार्वाक के सिद्धान्तों का उग्र समर्थन करना आरंभ किया। विराट अध्ययन के द्वारा उसमें इतनी शक्ति आ गयी थी कि वह बड़े से बड़े विपक्षी को भी परास्त कर सके।

कोई न कोई सम्बन्ध तो अभागे को शोभा के साथ रखना ही था! जीवन-साथी का सम्बन्ध नहीं रख सका तो क्या विपक्षी का भी सम्बन्ध नहीं रख सकता!

शोभा ने अध्यात्मवाद पर एक पुस्तक लिखी थी और उसका प्रचार भी उसके मण्डल ने चारों ओर काफी कर रखा था । शिरीष उस पुस्तक में प्रतिपादित सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ाता फिरता !

जिस स्थान पर शोभा अपने प्रवचनों के द्वारा लोगों को आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाकर जाती, वहीं कुछ दिनों के उपरान्त शिरीष पहुँचता और पुनः जनता में जड़वाद के प्रति आस्था उत्पन्न कर देता !

४

शोभा परेशान थी !

"शिरीष ऐसा क्यों कर रहा है ?" उसके सहचरों में एक ने पूछा ।

"समझ में नहीं आता । वह तो कभी भी जड़वादी नहीं रहा । मैंने उसके साथ काफी समय आश्रम में अतियापित किया है । सदैव उसने उन्हीं सिद्धान्तों का पक्ष–समर्थन किया है, जिनका मैं प्रचार कर रही हूँ ।" शोभा बोली ।

"मनुष्य की मति का कोई ठिकाना नहीं !' उसके सहचर ने कहा ।

काश ! ये दोनों शिरीष की अन्तर्ज्वाला की एक भी लपट से परिचित हो पाते ! अध्यात्मवाद पर पूर्ण विश्वास रखने वाला शिरीष जड़वाद के प्रचार के लिये और शोभा के सिद्धान्तों के खण्डन के लिये क्यों कटि–बद्ध हो उठा है, यह वे तभी समझ पाते।

'जब तक शिरीष को शास्त्रार्थ के द्वारा विशाल जनसमूह के समक्ष परास्त नहीं किया जायगा, तबतक हमारा कार्य अब असंभव-सा ही है। हमारे सारे किये पर वह अपनी खंडनात्मक वक्तृताओं द्वारा पानी फेर देता है।' शोभा कुछ सोचकर बोली।

शोभा को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास था।

५

चारों ओर हलचल मची थी। प्रत्येक नगर-निवासी उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था, जब शोभा और शिरीष का शास्त्रार्थ होगा। उस नगर से ही नहीं अपितु दूरवर्ती नगरों से भी श्रोतागण आ रहे थे।

शोभा गुरुदेव के आश्रम में पहुँची हुई थी और उनके विजयाशीर्वाद की प्रतीक्षा कर रही थी।

'शोभे! बड़ी विचित्र समस्या आ पहुँची है! तुम दोनों ही मेरे शिष्य हो! शिरीष की शक्तियों से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। कहीं ऐसा न हो फिर वह चार्वाक के जड़वाद की विजय पताका फहराने में समर्थ हो जाय!' वृद्ध तपस्वी ने कहा।

शोभा कुछ देर मौन रही। फिर बोली—'गुरुदेव, यदि आपका आशीर्वाद मेरे साथ रहा तो दुनिया का कोई भी मानव मुझे परास्त करके अध्यात्मवाद की विजय-पताका को छिन्न-भिन्न करने में समर्थ नहीं हो सकेगा!'

शोभा ने गुरुदेव की चरण-रज मस्तक से लगायी।

आश्रम में जड़वाद के पक्ष-समर्थन में जितने भी ग्रन्थ थे, सबों को देख डाला और उनके खण्डनात्मक उत्तर भी उसने तैयार कर लिये, जो उसकी दृष्टि में अकाट्य थे।

उधर शिरीष एकाकी अपने वेश्म में बैठा हुआ न जाने क्या-क्या सोचता जाता था।

सभा-मंडप दूर-दूरसे आये हुए स्त्री-पुरुषों से ठसाठस भरा था। तिल रखने का स्थान न था। स्वयं समस्त सामंतों के साथ राजा भी उपस्थित थे।

६

सभापति ने उठकर कहा--'आज का शास्त्रार्थ अन्य शास्त्रार्थों की तरह केवल व्यक्ति विशेष की विजय पराजय तक ही सीमित नहीं। इसका भाव सारी जनता पर पड़ेगा। आज शोभा देवी या शिरीष कुमार बीच शस्त्रार्थ नहीं हो रहा, बल्कि जड़वाद और अध्यात्मवाद के बीच शास्त्रार्थ हो रहा है! आज ही जनता की भावी धार्मिक गतिविधि के निर्णय का दिवस है।'

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जड़वाद के पक्षपाती शिरीष की ओर और अध्यात्मवाद के पक्षपाती शोभा की ओर उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। कभी शोभा प्रश्न पूछती और शिरीष उसका सफलतापूर्वक उत्तर देता। कभी शिरीष प्रश्न पूछता और शोभा सफलतापूर्वक उसका उत्तर देती।

जनता उत्सुकतापूर्वक दोनों को देख रही थी। शोभा का मुख आध्यात्मिक ज्ञान की दीप्ति से आलोकित हो रहा था। शिरीष का रोम-रोम कभी-कभी उसके चरणों पर आत्मार्पण करने को विकल हो उठता।

मन के ज्वारभाटे को नियंत्रित करके शास्त्रार्थ कर रहा था वह ! उसकी प्रकाण्ड विद्वत्ता से जन-समाज भयातुर था, कहीं नास्तिकता की विजय न हो जाय !

शोभा अपने तर्कों के द्वारा उसका खंडन करने का प्रयास करती थी, किंतु शिरीष की प्रखर बुद्धि के आगे उसकी वाणी शिथिल होने लगी और अन्त में उसे पराजित होना पड़ा।

नास्तिकता के पक्षपातियों की हर्षध्वनि से मंडप गूँज उठा। आस्तिक नागरिक आशंकाओं से उद्विग्न होने लगे।

शिरीष के अकाट्य तर्कों से राजा अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने घोषणा कर दी—'शिरीषकुमार को राजगुरु का पद मिलेगा, अतः उसके अभिषेक के उत्सव में समग्र नगर–निवासियों को एकत्रित होकर सम्मान प्रकट करना होगा।

जोरों से तैयारियाँ होने लगीं। शोभा और उसके अनुयायी व्यथित थे।

भवन काफी सुसज्जित किया गया था। जिस उच्चासन पर शिरीष को बैठना था, वह नानाविध रत्नों से देदीप्यमान हो रहा था।

नगर के एवं दूरागत व्यक्ति अपने-अपने स्थानों पर शांतिपूर्वक बैठे शिरीष के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

निर्धारित मुहूर्त्त के कुछ समय पहले चार प्रतिष्ठित राजकर्मचारियों को लेकर प्रधान मंत्री शिरीष को लाने के लिये उसके वेश्म पर पहुँचे।

द्वार खुला था।

अन्दर प्रवेश करके देखा, कहीं कोई भी नहीं है। आवाज दी, लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला।

बगल में ही एक कमरा और था। हलके से आघात से ही दरवाजा खुल गया। अन्दर प्रवेश करके आगन्तुकों ने जो देखा, उससे उनके रोंगटे खड़े हो गये।

एक कुशासन पर शिरीष की मृत देह पड़ी थी और पास ही एक बड़ा-सा भर्जपत्र।

प्रधान ने कम्पित करों से भूर्जपत्र उठाया। लिखा था--'मैंने अपना कार्य सम्पन्न कर दिया! देश में जड़वाद का प्रसार करने की तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं स्वयं अध्यात्मवादी हूँ और आत्मा के अमरत्व पर ही नहीं अपितु उसके प्रणय के अमरत्वपर भी मेरा पूर्ण विश्वास है। जिस आसन पर आप लोग मुझे बैठाना चाहते हैं, उस पर शोभा को बैठाइये। शोभा को अपनी जीवन-संगिनी बनाने का स्वप्न मैं तरुणावस्था से ही देख रहा था, किंतु दुर्भाग्यवश वह इच्छा अपूर्ण रह गई और शोभा ने मेरे स्वप्नों को धूलि-सात् करते हुए सद्धर्म के प्रचार को अपनाया। मैंने लाख चेष्टा की कि मैं भी शोभा के साथ-साथ अध्यात्मवाद का प्रचार करूँ, लेकिन ऐसा कर नहीं पाया। इसी अध्यात्मवाद ने मेरी हृदयाधीश्वरी को मुझ से अपहृत किया था। अतः भीषण प्रतिशोध की भावना से आक्रान्त होकर मैंने अध्यात्मवाद का विरोध करना आरम्भ किया। यह भी सोचा कि शोभा का प्रेम न पा सका तो न सही; उसका आक्रोश ही सही। उसका अन्यतम सखा न बन सका तो संसार में उसका सबसे बड़ा शत्रु ही बन कर रहूँ! उससे साधारण सम्बन्ध रखकर जीवन-यात्रा के पथ पर चलना मुझे अ-नौचित्यपूर्ण प्रतीत हुआ। किसी न किसी रूप में शोभा के मन में सदैव मेरी याद तो रहे,--इसी आकांक्षा से उद्वेलित हृदय लेकर मैंने उसके

विरुद्ध जड़वाद का प्रचार करने का बीड़ा उठाया। यदि मैं अध्यात्मवाद का प्रचारक बन जाता तो शोभा मुझे क्या याद रखती ! यही सोचती कि सहस्रों अध्यात्मवादी प्रचारकों में वह भी एक है । मेरे लिये शोभा का अस्तित्व नगण्य नहीं था । फिर मैं भला अपने अस्तित्व को उसके लिये नगण्य कैसे कर देता ! बन्धुत्व न मिला तो न सही, शत्रुत्व ही सही ! कोई न कोई सम्बन्ध तो रहेगा ही ! —इसी आग्नेय आकांक्षा से उत्प्रेरित होकर विरोध करना आरम्भ किया और अध्यात्मवादरूपी अपने प्रति-पक्षी—अपने रकीब को परास्त करके अपने हृदय की ज्वाला शीतल करने में समर्थ भी हुआ। उस दिन यदि शोभा से मेरा शास्त्रार्थ होता तो मैं कभी उसे पराजित नहीं कर सकता था ! भला जिसने मेरे जीवन के अणु-अणु को पराजित कर रखा है—मेरे हृदय और मस्तिष्क के कण-कण पर जिसकी रूप-सुषमा का आधिपत्य है, उसे पराजित करने की क्षमता मुझ में कहाँ से आ पाती ! किन्तु उस दिन का शास्त्रार्थ शोभा से नहीं, अध्यात्म-वाद से हो रहा था। और उसे पराजित करके मैंने अपनी अन्तर्ज्वाला के उत्ताप को कुछ अंशों में शीतल कर लिया है। जिस आसन पर लोग मुझे बैठाना चाहते हैं, उस पर शोभा समासीन होकर संसार में इस बात की घोषणा कर दे कि शिरीष जड़वादी नहीं था, वह अध्यात्मवाद का कट्टर समर्थक था !

'मैं इस पृथ्वी पर शायद कुछ दिन और रहता, लेकिन अब यहाँ मेरा रहना निरर्थक-सा ही है । मैं दूसरो ग्रहों में जाकर शोभा की प्रतीक्षा करूँगा ।'

पत्र सचिव के हाथों से छूटकर जमीन पर गिर पड़ा ।

रुपयों के देश में

पारिजात-कानन की श्री–सुषमा से किसी ने कवि को निर्वासित कर दिया ।

अश्रु-सजल नेत्र, क्रन्दनमय हृदय, काँपते हुए चरण । वह चला जा रहा था ।

मार्ग में एक विचित्र-सा स्थान दिखलायी पड़ा । उत्सुकता और जिज्ञासा ने उसे वहाँ जाने को विवश किया ।

वहाँ पहुँचकर उसने देखा, लोग विचित्र और निरर्थक कार्यों में व्यस्त हैं। वह चकित हुआ ।

चाँदी और सोने के टुकड़े उसने पहले भी देखे थे और उनके द्वारा शृंगारित वेश्म भी, किन्तु उनको पहले श्रमजीवियों के शोणित से सिंचित करके फिर उनकी पूजा करने का कार्य उसके लिए सर्वथा नूतन दृश्य था।

परिवार, पत्नी, पुत्र, दुकानें, तिजोरियाँ, पूंजी, मजदूरी, धर्म, राष्ट्र, रोकड़, ग्राहक, स्वामी, दास! ····कवि यह सब देखकर हँसा। सोचा, निर्वास की अवधि यहीं बितायी जाय। अच्छी जगह है यह! हँसने के साधन सर्वत्र दिखलायी दे रहे हैं।

और, निर्वास की वेदना को भूलकर एक बार तो वह खूब ही हँसा। उसको इस प्रकार हँसते हुए देखकर उस विचित्र स्थान के विचित्र लोग अपनी-अपनी दूकानों से बाहर निकलकर उसके पास आ पहुँचे। बोले— 'तुम कौन हो? देखने से कोई परदेसी मालूम होते हो।'

"हाँ भाई, परदेसी ही हूँ। किस्मत का मारा यहाँ तक आ पहुँचा हूँ।" कवि बोला। उसे अपने पारिजात-कानन की याद हो आयी थी। इसीसे वह अपनी हँसी भूल गया और आँखें आँसुओं से भर आयीं।

"तुम हो क्या?"

"कवि हूँ।"

"कवि? ·····कवि क्या?"

"आप लोग कवि का अर्थ नहीं जानते?" कवि को अपार विस्मय हो रहा था।

"नहीं। हमलोगों ने तो आज तक यह शब्द नहीं सुना।"

"अरे भाई, मैं कविताएँ लिखा करता हूँ।"

"कविताएँ लिखते हो! वे बिकती कहाँ हैं? कितने में बिकती हैं? कहाँ बिकती हैं? उनसे तुम्हें खूब लाभ होता होगा!" एक व्यापारी उतावला होकर बोल रहा था।

"क्या खाक लाभ होता होगा! लाभ होता तो अपना देश छोड़कर हमलोगों के देश में क्या करने आता! यहाँ कविताएँ बेचने आया होगा।"

दूसरा व्यापारी बोला। वह अधिक अनुभवी था और उस मुहल्ले में उसीकी दूकान सबसे बड़ी थी।

तीसरा व्यापारी जरा दूरदर्शी था। सोच रहा था, कविता नयी चीज है। लोग नयी चीजों को अधिक खरीदना चाहते हैं। चेष्टा की जाय तो इसकी कविताएँ खूब बिकेंगी।

बोला—"तुम्हारे पास जितनी कविताएँ हैं, सब बेच दो। मैं ले लूगा।"

चौथा व्यापारी तीसरे व्यापारी की बुद्धिमत्ता से परिचित था। बोला—"यह तो तुम्हारी स्वार्थपरता है। सब कविताएँ तुम्हीं कैसे ले लोगे? आधी तुम लो, आधी मैं।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता!" "यही होगा!"

और व्यापारियों के उस गिरोह में एक कुहराम-सा मच गया।

कवि यह सब देख स्तब्ध था। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। बहुत से देश उसने देखे थे और उसकी कविताओं की सुधा-धारा ने सर्वत्र नवजीवन का संचार किया था। किन्तु इस विचित्र देश में उसे जो दृश्य दिखायी दे रहा था, वह अभूतपूर्व था!

व्यापारियों के उस गिरोह में एक वृद्ध सज्जन भी थे। केशों के श्वेत होने के साथ-ही-साथ बुद्धि में भी हिम-संहति की श्वेतता आ गयी थी। बोले—"तुमलोग जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए लड़ रहे हो, पहले उसे देख तो लो कि आखिर वह कैसी है!"

सबों को उस वृद्ध और अनुभवी व्यापारी की बात जँच गयी। प्रशंसात्मक दृष्टि से सबों ने उसकी ओर देखा और बोले—"धन्य है आपकी बुद्धि! इसीलिए बड़े-बूढ़ों की सलाह प्रत्येक कार्य में लेनी चाहिए।"

"तुम अपनी कविताएँ हमें दिखलाओ। हम उसे देखे विना नहीं खरीदेंगे। हमलोगों को ठगना आसान नहीं है। हमलोग व्यापारी हैं!" सबों ने कोलाहल करते हुए कहा।

उन विचित्र प्राणियों के बीच वह दूर देश का वासी मौन खड़ा था—विस्मय-विमूढ़। उनकी बातें उसकी समझ में नहीं आ रही थीं।

"बोलते क्यों नहीं ? तुम्हें अपनी कविताएँ दिखानी होंगी।"

"लेकिन पहले यह तो बताइये कि आखिर यह बेचना क्या वला है! मेरी कविताएँ आप लोग देखना चाहते हैं, यह तो मैं समझ गया, लेकिन उसे आपलोग खरीदना चाहते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आया। पहले मुझे समझा दीजिए कि खरीदना क्या होता है, तब मैं अपनी कविताएँ आपलोगों को दिखाऊँगा।" कवि बोला।

व्यापारियों ने एक दूसरे के चेहरे की ओर देखा और हँसे। बोले—"बनता है! बदमाश है!"

"बदमाशों से दूर रहना चाहिए, यह उपदेश हमलोगों को बड़े-बूढ़े हमेशा से देते आ रहे हैं। बड़े खतरनाक होते हैं ये लोग!" और आधी से अधिक भीड़ छँट गयी।

बचे-खुचे लोगों में से एक ने कहा—"भाई, विचित्र आदमी हो तुम भी! जब तुम इतना भी नहीं जानते, तो तुम्हारा गुजर कैसे होगा!"

"तुमसे कविताएँ लेकर हमलोग बदले में तुम्हें चाँदी के कुछ टुकड़े देंगे। समझे? यही कार्य तुम्हारे लिए बेचना हुआ और हमलोगों के लिए खरीदना।" दूसरा व्यापारी बोला।

"मेरी कविताएँ आप लोगों को प्रिय लगें, तो आप उन्हें यों ही ले जा सकते हैं। मैं यात्री ठहरा। चाँदी के टुकड़ों का भार कहाँ-कहाँ ढोता फिरूँगा!"

व्यापारियों की प्रसन्नता का अब क्या पूछना ! अच्छे पागल से पाला पड़ा ! अब तो चीज देखने की भी आवश्यकता नहीं रही।

"आपकी कविताएँ हमलोगों को बहुत प्रिय हैं । क्या सुन्दर कविताएँ हैं आपकी ! वाह भाई वाह ! कमाल है !" व्यापारियों ने कहा।

कवि आश्चर्यित -सा बोला--"आप लोगों ने मेरी कविताएँ पढ़ीं भी नहीं और तारीफ करने लगे !"

"अजी, पढ़ने-वढ़ने की क्या जरूरत है ! हमलोग यह काम नहीं करते। नये व्यापारी नहीं हैं, पुराने और अनुभवी व्यापारी हैं । चीज देखकर चीज की उत्तमता या निकृष्टता का ज्ञान तो नये और अनुभवहीन व्यापारियों को होता है । हमलोग तो विक्रेता की सूरत और उसके बोल-चाल के ढंग को देखकर ही उसकी चीज की अच्छाई और बुराई से परिचित हो जाते हैं ! क्या अच्छी कविता है आपकी ! बहुत प्रिय है हमें । लाइये, जल्दी कीजिये।" एक व्यापारी ने कहा।

"तो आप अकेले ही.......!"

"अजी नहीं साहब, अकेले ही क्यों ? मुनाफा बाँटकर खाएँगे। हम कोई बेईमान थोड़े ही हैं !"

कवि को इन लोगों की बातें बहुत ही विचित्र और हास्यास्पद मालूम हो रही थीं। उसने कविताओं के बँधे हुए पन्ने उन्हें दे दिये और हँसता हुआ जाने लगा।

व्यापारियों ने पहले तो एक दूसरे की ओर देखा और फिर कवि की ओर। क्रोधित होकर बोले--"बस, इतनी-सी कविताएँ हैं?"

"तो लाख दो लाख कविताएँ कहाँ से लाऊँ ? हृदय में जितना रस होता है, उसीके अनुसार कविताएँ लिख पाता हूँ ।"

व्यापारी एक स्थान पर बैठकर कविताएँ देखने लगे। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

"इन्हें कौन खरीदेगा !"

"ये तो कुछ समझ में ही नहीं आतीं !"

"व्यर्थ उसने हमलोगों का इतना समय बरबाद किया !"

"इतनी देर में मेरे दस ग्राहक लौट गये होंगे।"

"मेरे बीस।"

"मेरे पचास।"

"मेरे सौ।"

"नहीं सौ क्यों, दस अरब कहो न। सौ ग्राहक तो तुम्हारे यहाँ महीने भर में भी नहीं आते। दूकान पर बैठे-बैठे मक्खियाँ मारा करते हो और अब डींग हाँकने लगे ! भगवान के लिए जरा झूठ कम बोला करो !"

"भगवान के लिए तो ये झूठ कम ही बोलते हैं। हमलोगों के लिए ज्यादा बोलते हैं !"

"अरे, बाबा, यही तो हम व्यापारियों में खोट है। हमलोग आपस में बहुत जल्दी पिल पड़ते हैं। एकता नहीं है। और इसीलिए शक्ति नहीं। शक्ति नहीं, इसीलिए मामूली से मामूली आदमी भी हमलोगों की ही दूकानों पर हमारा अपमान करके चले जाते हैं।"

"लेकिन इस परदेसी ने छकाया खूब !"

"तो तुम लोग इतना भी नहीं समझ सके कि मुफ्त में कहीं कोई चीज मिलती है ! मिट्टी तो आजकल मुफ्त में मिलती ही नहीं और तुम दूकान में रखकर मुनाफा करनेवाली चीज किसी से मुफ्त में लेने की उम्मीद करते हो ! मैं तो उसी समय समझ गया था कि यह परदेसी

हम लोगों के साथ मजाक कर रहा है, जब उसने कहा था कि सोने और चाँदी के टुकड़े अपने पास ही रखिये। मैं मुफ्त में ही कविताएँ दे दूँगा।"

"फिर तुम यहाँ खड़े क्यों रहे ?"

"यह देखने के लिए कि तुमलोग कैसे बेवकूफ बनते हो !"

"इससे तुम्हारा फायदा ?"

"तबीयत बहली।"

"फिर तुम यह क्यों कहते हो कि तुम्हारे इतने ग्राहकों का नुकसान हुआ ?"

"नुकसान तो हुआ ही। इसीलिए कहता हूँ। लेकिन तबीयत बहलाने के लिए मैं ऐसे-ऐसे नुकसानों की परवाह नहीं करता। लाखों रुपये मैं तबीयत बहलाने के लिए बर्बाद कर चुका हूँ।"

"लेकिन इस परदेसी ने खूब छकाया !"

"अजी, हम सबों का नुकसान कर गया। इन हजरत की तो तबीयत बहली और हम सबों का सौ दो सौ का नुकसान हो गया !"

"इस परदेसी पर केस करना चाहिए।" एक व्यापारी ने सुझाव रखा।

"हाँ भाई, बात तो ठीक है। इस पर केस करना चाहिए।"

"लेकिन केस करके होगा क्या ? इस परदेसी के पास कुछ होगा, जो हमलोगों को मिलेगा !"

"कुछ हो चाहे न हो। जेल की हवा तो इसे खानी ही पड़ेगी।"

"इससे हमलोगों का लाभ ?"

"बस, तुम तो हर जगह लाभ की ही खोज करते हो ! इतनी व्यापारिकता अच्छी नहीं होती। यदि इस बार इसे दण्ड मिल गया तो फिर अन्य व्यापारियों के साथ यह इस प्रकार का मजाक नहीं करेगा ! दूसरे व्यापारियों का यदि हमलोगों के द्वारा लाभ हो जाय, तो क्या आपत्ति है ?'

"नहीं, आपत्ति क्या है ! इस पर अवश्य केस होना चाहिए।"

न्यायाधीश बैठे थे।

पारिजात-कानन का वह कोमल कवि भी उन व्यक्तियों के बीच खड़ा था, जिन लोगों ने पहले तो उससे कविताएँ लीं और फिर उसे इस प्रकार तंग करने लगे।

"तुमने इन प्रतिष्ठित व्यापारियों के साथ मजाक किया है ?" न्यायाधीश का प्रश्न हुआ।

"नहीं, मैं इनसे क्यों मजाक करूँगा ! मैं तो अपनी राह चला जा रहा था। इन्होंने ही मुझे पहले छेड़ा। मेरा परिचय पूछा और फिर मेरी कविताएँ माँग लीं।"

"तुम कविताओं का क्या करते हो ?"

कवि यह प्रश्न सुनकर चकित-सा हुआ। बोला—'आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए, तब मैं आपको इस का उत्तर दूंगा। आप जी रहे हैं, यह निर्विवाद है। लेकिन आप इस जीने का क्या करते हैं ? आपके सामने ही व्योम-पथ में यह सूर्य प्रकाश वितरण करता फिर रहा है; वह इस प्रकाश-वितरण का क्या करता है ? यह कोयल कुहू-कुहू कर रही है, सो तो ठीक है, लेकिन यह इस कुहू-कुहू करने का क्या करती है ?'

न्यायाधीश चुप। आँखों में क्रोध की लाली-सी।

दूसरा प्रश्न हुआ—"तुम कविताएँ क्यों लिखते हो ?"

उत्तर मिला—"आकाश का चाँद इस धरती पर चाँदनी की वर्षा क्यों करता है ? पाटल-पुष्प कण्टकमयी शाखा से सौरभ का प्रसार क्यों करता है ?"

न्यायाधीश चुप। लोगों की समझ में कुछ नहीं आ रहा।

तीसरा प्रश्न हुआ—"जब तुम कविताएँ बेचते नहीं और जब तुम्हें उनके बदले में रुपये नहीं मिलते, तो उनसे तुम्हारा फायदा ?"

उत्तर मिला—"जब चाँदनी फैलाने से चाँद को और सौरभ फैलाने से पुष्प को बदले में रुपये नहीं मिलते, तो ऐसा करने से उनका फायदा ?"

न्यायाधीश ने और भी इसी तरह के कई प्रश्न किये।

कवि से उत्तर भी इसी प्रकार के मिले।

न्यायाधीश ने उसे पागल कहते हुए छोड़ दिया।

२

उसी विचित्र देश में एक दूसरा यात्री भी न जाने कहाँ से तो पहुँच गया। तेजोद्दीप्त ललाट; ब्रह्मचर्य से ज्योतित कलेवर; हाथों में दो-तीन ग्रंथ।

उस स्थान की विचित्रता से प्रभावित होकर वह उसका निरीक्षण करने लगा। निरीक्षण करता-करता जब परिश्रान्त हो गया, तो एक दूकान पर जाकर बैठ गया और विश्राम करने लगा।

'क्या चाहिए तुम्हें ?' व्यापारी ने कहा।

'विश्राम।' दार्शनिक बोला।

'विश्राम के व्यापारी कहीं और होंगे! मैं सिर्फ दाल-चावल बेचता हूं।' व्यापारी ने उपेक्षाभरे स्वर में कहा।

दार्शनिक उसकी बात समझ नहीं पाया। बैठा रहा।

इसी तरह दस मिनट बीत गये। व्यापारी ने जब देखा कि वह व्यक्ति

अभी तक नहीं गया, तो उसे कुछ क्रोध-सा हो आया। जोरों से बोला-"क्या चाहते हो तुम ?"

"चाहूँगा क्या ! वही चाहता हूँ जो अज्ञानान्धकार में खोये हुए यात्री को चाहिए। ज्ञान की किरणें चाहता हूँ।" दार्शनिक मृदुल स्वर में बोला।

व्यापारी कुछ नहीं समझा ! उसे सन्देह हुआ, कहीं चोर न हो। गद्दी से बाहर आया और उसे देखने लगा। हाथ में कितावें देखकर बोला "अच्छा, तो तुम मुनीम मालूम होते हो किसी सेठ के ! ये रजिस्टर हैं तुम्हारे। मेरे व्यापार का रहस्य समझने आये हो !......मैं समझ गया, समझ गया !......उसी बदमाश ने तुम्हें यहाँ भेजा होगा !........"

दार्शनिक न तो मुनीम शब्द का अर्थ समझा और न और कुछ। आश्चर्यान्वित-सा बोला--"अरे भाई, ये ग्रंथ हैं ग्रंथ। दार्शनिक ग्रंथ हैं। एक महर्षि कणाद का लिखा हुआ है और दूसरा अरस्तू का। तीसरे में मिश्र के प्राचीन सत्यान्वेषियां के विचार हैं। माया-राज्य में ज्ञान की किरणों का आवाहन करते हुए ये ग्रंथ महामहिम व्यक्तियों के द्वारा जीवन-यात्रियों के उपकार के लिये लिखे गये थे। इनमें ज्ञान की आलोक-किरणें शब्दों में गुम्फित हैं। इनकी ओर उपेक्षाभरी दृष्टि से न देखो।"

व्यापारी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसे अपनी पहली धारणा ही सही मालूम हो रही थी। सोचा, इसे अपने यहाँ रख लूं तो अच्छा रहे। जिस बदमाश ने इसे मेरे व्यापार का रहस्य समझने के लिए भेजा है, उसी के घर की सारी गुप्त बातें इससे जान लूंगा और उसे सबके सामने अपमानित करूँगा !"

बोला--"भले आदमी, तुम्हें मैं सौ रुपये दूंगा। मेरे यहाँ रह जाओ। ज्ञान तुम्हें क्या देता होगा ! ज्यादा से ज्यादा साठ देता होगा ! और सुबह से रात के दस बजे तक कोल्हू के बैल की तरह पेरता होगा ! मेरे यहाँ ये सब बातें नहीं हैं। सबेरे आठ बजे से लेकर रात के आठ बजे तक काम करो और फिर सारी रात तुम्हारी है। टहलो, फिरो या

आराम करो। सौ रुपये दूंगा—पूरे सौ रुपये। देखो, अच्छी तरह विचार कर लो। आदमी विचारवान मालूम होते हो। सौ रुपये की नौकरी आजकल अच्छों-अच्छों को नहीं मिलती। ज्ञान तो अव्वल दर्जे का बदमाश है! कंजूस भी एक नम्बर का। इस बार उसने तीन लाख कमाये, लेकिन जब उसकी विधवा बहन मरी तो एक पैसा खर्च नहीं किया गया उससे। उसीके जेवरों को बेचकर सब खर्चे हुए। ऐसे आदमी के यहाँ तुम नौकरी करते हो?"

दार्शनिक मौन। कुछ भी नहीं समझ पा रहा वह।

"बोलो, चुप क्यों हो? लाओ, ये रजिस्टर मुझे दे दो। और आओ, तुम थके-माँदे हो। भोजन आदि कर लो।"

"अरे, हाँ, भाई, अच्छी याद दिलायी। मुझे भी भूख लगी हुई थी। लेकिन मैं भूल गया था। बड़े सज्जन हो तुम।"

व्यापारी ने दार्शनिक को ऐसा भोजन कराया, जैसा उसे वर्षों से नहीं मिला था।

"तो, तुम आज से मेरे मुनीम हुए। उस बदमाश ज्ञानमल के पास अब मत जाना।"

"अरे, भाई, मुनि होना बहुत बड़ी बात है। मैं अभी अपनी वासनाओं पर विजय कहाँ प्राप्त कर पाया हूँ!" दार्शनिक बोला।

"अजी क्यों बनते हो? मुनीम होना बेवकूफों के लिए बड़ी बात है। तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे आदमी तो......"

व्यापारी की बात काटकर किसी ने कहा—"बड़ी खराब खबर आयी है सेठजी!"....और वह फुफुक-फुफुक कर रोने लगा।

"अरे भाई, बोलो भी तो, आखिर क्या हुआ?"

"क्या कहूँ, कलेजा फट रहा है!"

"अरे भाई, जल्दी बोलो ।"

"वज्रपात हो गया !"

"अरे बोल मेरे भैया !"

"किस्मत फूट गयी ।"

व्यापारी वहीं पछाड़ खाकर गिर पड़ा । औरतें निकल आयीं और रोने-पीटने लगीं !

दार्शनिक चुप था । उसने सेठ को उठाते हुए कहा—"इतने अच्छे आदमी होते हुए भी तुम इतनी अविवेकिता का परिचय दे रहे हो ! कृष्ण का उपदेश याद करो—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

"अरे भले आदमी, मेरे कृष्णमल की ही मृत्यु का तो यह समाचार है।" सेठने रोते हुए कहा ।

"मृत्यु जीवन से अधिक श्रेयस्कर है सेठ ! सच्चे जीवन का आरम्भ उसीके उपरान्त होता है । यह जीवन तो एक क्रन्दन-मुखर स्वप्न मात्र है।" दार्शनिक बोला ।

सब लोग रो रहे थे । केवल दार्शनिक मौन था,—निर्विकार । जैसे कुछ हुआ ही न हो ।

"जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।........जीवन और मरण के परे जो सत्य है, उसे पहचानो सेठ ! इस व्यर्थ के भ्रम-पाश में फँसकर क्यों क्रन्दन कर रहे हो ? अपने चित्त की इस कालिमा को नष्ट करके अभिनव ज्ञान की पवित्र किरणों से उसे ज्योतित करो ।"

दार्शनिक की बातें किसी की समझ में नहीं आ रही थीं !

"इसे यहाँ से निकाल बाहर करो ।" सेठ ने अपने क्रन्दनलीन कर्मचारियों से कहा ।

दार्शनिक की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्यों तो पहले उस व्यापारी ने उसे इतने प्रेम के साथ खिलाया, पिलाया और मुनि कह कर सम्मान प्रदान किया और उसके बाद इस प्रकार अपने उस सुविशाल घोंसले से बाहर करवा दिया !

× × ×

एक महीना बीत गया ।

दार्शनिक के चित्त में सेठ की अवस्था की स्मृति ने करुणा उद्रिक्त की । सोचा, चलकर सेठ को ज्ञान देना चाहिए, अन्यथा अभीतक अभागा रो रहा होगा ।

सेठ की दुकान में पहुँचा ।

सेठ रुपये गिन रहा था । उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था । इस बार उसे सत्तर हजार का लाभ केवल एक सप्ताह में हुआ था ।

दार्शनिक को देखकर हँसा । बोला—'आओ, मुनीमजी, तुम्हारे ज्ञानमल का क्या हाल-चाल है ? डूबा न कम्बख्त ! इस बार मैंने सत्तर हजार का फायदा किया है और उसको··उसको कितने का घाटा हुआ है, यह आप जानते ही हैं । आपको क्या बतलाना ! अब वह आपका वेतन और कम कर देगा !"

दार्शनिक की समझ में कुछ नहीं आया । कुछ देर चुप रहने के बाद बोला--"मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता है कि आप उस शोचनीय स्थिति से छुटकारा पा गये। आशा है, मरण का रहस्य कुछ-कुछ आपकी समझ में आ गया होगा।"

"अजी, छोड़ो ये बातें। इस बार सत्तर हजार का लाभ मुझे हुआ है—सत्तर हजार का । तीन नये और सुन्दर बँगले इस बार बनवाऊँगा !"

"उनका करोगे क्या ?"

"किराये में लगा दूंगा।"

"उससे क्या होगा ?"

"रुपये आयेंगे और क्या होगा ? यार, तुम तो ऐसे बनते हो, जैसे कुछ जानते ही नहीं ! कम्बख्त ज्ञानचन्द ने तुम्हें अभिनय करना भी सिखला दिया है !"

"तो रुपये तो आ ही गये हैं !"

"किराये में लगाने से कुछ वर्षों में इससे ज्यादा रुपये आ जायेंगे।"

"कितने वर्षों में ?"

उत्तर सुनकर दार्शनिक बोला--"इतने दिनों तक तुम जीवित रहने की आशा रखते हो ?"

"क्यों अभी मेरा बिगड़ा ही क्या है ? अभी तो सिर्फ पचास वर्ष का हुआ हूँ।"

"बुढ़ापे में उन रुपयों का करोगे क्या? उसके बाद एक, दो या तीन वर्षों में मृत्यु का आगमन होगा ही । रुपयों को भी अपने साथ ही ले जाओगे क्या ?"

सेठ को दार्शनिक की बातें अच्छी नहीं मालूम हो रही थीं। बोला--"मैं नहीं रहूँगा तो क्या हुआ, मेरे लड़के तो उससे अपना फायदा करेंगे।"

"अपने लड़कों का फायदा करने के लिए आप जितने उत्सुक हैं, यदि उतना ही फ़ायदा अपना भी कर लेते, तो आपका बड़ा कल्याण होता।"

"यह मेरा फायदा नहीं है तो क्या तेरे चाचा का है?" व्यापारी इस बार बेतरह चिढ़ा हुआ था ।

दार्शनिक इस तरह की भाषा में बातें करने का अभ्यस्त नहीं था। फलतः नम्रतापूर्वक बोला—'मेरी समझ में तो आपने अपना कोई भी फायदा नहीं किया। मृत्यु आपकी एक दिन होगी, यह जानते ही हैं; फिर क्यों नहीं आप कुछ ऐसी चीजें उपार्जित करते हैं, जो मृत्यु के उस पार आपका साथ दे सकें ? मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आप क्यों नहीं ज्ञान की किरणों का आनयन अपने हृदय-प्रदेश में करके अपने पार्थिव अस्तित्व को सार्थक बनाते हैं?"

"और मृत्यु के इस पार मैं भूखा मरूँ!"

"आपके पास इतने साधन हैं कि आप पाँच सौ आदमियों को नित्य-प्रति मृत्यु के इस पार खिला सकते हैं।"

व्यापारी ने दार्शनिक की ओर देखा। फिर कुछ देर सोचकर बोला—"तो क्या मैं भी एक दिन जरूर मर जाऊँगा?"

"मृत्यु अवश्यम्भावी है सेठ!"

"अरे,......तो क्या मैं सचमुच मर जाऊँगा और मेरे ये महल, ये सोने के टुकड़ों से लदी हुई तिजोरियाँ, ये दाल-चावल के बोरे सब-के-सब यहीं रह जाएँगे! मेरा यह शरीर जिसे मैं वैद्य भटभटानन्द के स्वर्ण-भस्म को नियमित रूप से खा-खाकर सशक्त रखता हूँ, शक्तिहीन हो जाएगा! इसमें हिलने-डुलने की भी सामर्थ्य नहीं रहेगी,—यह भी मेरा साथ छोड़ देगा!......अरे, बाबा रे, बाबा! मुझे तो बड़ा डर लग रहा है!......मेरा सिर चक्कर खा रहा है!"

दार्शनिक को यह देखकर प्रसन्नता हो रही थी कि आखिर माया के पाश में बँधे उस दुर्भाग्य-ग्रसित प्राणी के जीवन-क्षितिज में ज्ञान की एक नन्हीं-सी किरण तो आयी ।

"क्यों घसीटचंदजी, क्या मैं सचमुच मर जाऊँगा ?" सेठ ने अपने एक मुनीम से पूछा।

"नहीं सेठजी, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं ? आप हजार वर्ष जिएँगे। उस दिन वह ज्योतिषी कह ही गया है कि आपके हाथ में मृत्यु की रेखा अभी प्रकट ही नहीं हुई है। यह तो कोई पागल मालूम होता है !" मुनीम बोला।

सेठ की बांछें खिल गयीं। उल्लसित होकर बोला--"पागल ! ....ठीक कहते हो, यह पागल है ! विचित्र-विचित्र बातें करता है ! बाहर करो इसे यहाँ से।"

दार्शनिक विस्मयान्वित दृगों से यह सब देख रहा था।

(३)

प्रज्ञा और प्रयोग के आलोक में खोयी हुई मंजिल को ढूँढ़नेवाला एक तीसरा जीवन-यात्री भी न जाने दुर्भाग्य के किस कशाघात से उस विचित्र देश में पहुँच गया था।

जन-समूह से दूर एक एकांत स्थान में उसने अपना साधना-निकेतन बनाया और आकाश के दूरवर्ती ग्रहों में दूरवीक्षण यंत्र की सहायता से किसी विस्मृत रहस्य का अन्वेषण करता रहता।

न कंचन में कोई आसक्ति, न नारी के प्रति कोई रुझान। जनता के संपर्क की तो बात ही दूर रही, उसके स्तुति-रव से भी घोर वितृष्णा।

एक दिन कुछ व्यापारी सायंकालिक भ्रमण के लिये उस ओर जा पहुँचे।

उस एकांतवासी वैज्ञानिक के साधना-कुटीर को देखकर उनका कुतूहल जागा। दूर से ही देखने लगे कि वह क्या कर रहा है। कुछ समझ में नहीं आया।

पास के एक ग्रामवासी से पूछने पर पता चला कि वह रात-रात भर इसी तरह आकाश की ओर देखता रहता है और पता नहीं, क्या लिखता और सोचता रहता है!

उन्हें संदेह हुआ, कहीं कोई प्रेत तो सिद्ध नहीं कर रहा है।

"कहीं प्रेत उसे सिद्ध हो गया तो फिर हमलोगों की खैर नहीं है! सारा व्यापार तीन दिन में चौपट हो जायगा! हमलोग तो मर-खप के दूकानों में माल मँगायेंगें, उधर उसके प्रेत देवता रातोंरात हमलोगों की तिजोरियों पर हाथ साफ करना शुरू कर देंगे!"

"अजी नहीं, ये व्यर्थ की बातें हैं! बेचारा सीधा सादा आदमी है। व्यर्थ उसे क्यों बदनाम करते हो! मैंने कई बार उससे बातें की हैं। धनकी लालसा तो उसे छू भी नहीं गयी।"

"तुम्हारी धारणा भ्रान्त है। वह अवश्य किसी न किसी प्रेत को सिद्ध कर रहा है। नहीं तो रात-रात भर शहर से बाहर निर्जन स्थानों में जागने का अर्थ ही क्या हो सकता है?"

"तो इसका कोई प्रतिकार होना चाहिए।"

"हमलोग व्यापारी हैं। हमलोगों को ऐसा काम करना चाहिए जिससे साँप भी मर जाय, और लाठी भी न टूटे।"

"हाँ भाई, करना तो ऐसा ही चाहिए। यदि हमलोगों ने ऐसा नहीं किया तो यह व्यापारिक बुद्धि क्या काम आयी! हमलोग कोई नये व्यापारी तो हैं नहीं!"

"देखो, ऐसा करो ।" एक वयोवृद्ध व्यापारी ने कुछ देर सोचकर ऐसी मुद्रा बनाते हुए कहा मानों वे अपनी बुद्धिमत्ता की पराकाष्ठा इस बार दिखला ही देंगे।

सब लोग सोत्सुक दृगों से उसकी ओर देखने लगे ।

"सरकार को इसकी खबर कर दो ।"

"अजी, रहने भी दीजिये। सरकार को इसकी खबर देने से कुछ नहीं होगा। सरकार प्रेतों से नहीं डरती। सरकार ने तो स्वयं कई प्रेत वश में कर रखे हैं। तभी तो सारी दुनियां पर शासन करती है!"

"हाँ भाई, सरकार से इस काम में सहायता की आशा रखना मूर्खता है। ऐसा करो । हमलोगों को अपने सबसे बड़े अस्त्र से काम लेना चाहिए।"

"कौन-से अस्त्र से भाई !"

"हम व्यापारियों का सबसे बड़ा अस्त्र और क्या हो सकता है?.... रुपयों का प्रलोभन !"

"हाँ, यह तो ठीक है ।"

"मुझे भी यह बात जँच गयी ।"

"मैं दो हजार दूंगा ।"

"मैं तीन हजार ।"

"यदि वह प्रेत-सिद्धि का काम छोड़ दे तो मैं पाँच हजार दूंगा !"

"मैं सात हजार।"

इसी तरह सब मिलाकर वे व्यापारी उस एकांत-निवासी वैज्ञानिक को एक लाख रुपये देने को तैयार हो गये।

साँझ हुई । सबके सब वैज्ञानिक के दूरस्थित कुटीर की ओर चल पड़े।

वैज्ञानिक दूरवीक्षण यंत्र के पास खड़ा-खड़ा न जाने क्या सोच रहा था। शायद तारों के निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था। बगल में ही एक-

साधारण-सी मेज रखी थी, जिस पर कुछ सादे पन्ने रखे थे। पाँच- सात मोटी-मोटी ज्योतिर्विज्ञानसम्बन्धी पुस्तकें और कुछ मानचित्र भी।

मनुष्यों का समूह वैज्ञानिक ने कभी अपने निरीक्षण-स्थान के पास नहीं देखा था। आज एक नई बात देखकर उसे कुछ आश्चर्य-सा भी हुआ और कुछ दुःख भी, क्योंकि आज वह एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम करने जा रहा था। यदि उसे इसमें सफलता मिल गयी तो ज्योतिर्विज्ञान-जगत् को दूरवर्त्ती ग्रहों के सम्बन्ध में बहुत-सी नई बातें अनायास ही मालूम हो जायेंगी। '

व्यापारियों के समूह ने ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता का सादर अभिवादन किया।

"आप बड़े सज्जन आदमी हैं!" एक व्यापारी ने वैज्ञानिक से कहा।

वैज्ञानिक इस अप्रत्याशित प्रशंसा के तात्पर्य को न समझता हुआ बोला---"कृपा है आपकी।"

"हमलोग आपको पंद्रह हजार रुपये देंगे। आप यह काम छोड़ दें।"

"क्यों? इससे आपलोगों का क्या बिगड़ रहा है?" वैज्ञानिक आश्चर्यित होकर बोला।

"बिगड़ तो कुछ भी नहीं रहा है, लेकिन फिर भी हमलोगों को इच्छा है कि आप इस कार्य को छोड़ दें। हमलोग आपको देने के लिये नगद रुपये लाये हैं।"

वैज्ञानिक की समझ में यह सब कुछ भी नहीं आ रहा था। अन्तरिक्ष-पथ में तारे उगते चले जा रहे थे और वह उन व्यापारियों से छुटकारा पाकर अपना कार्य करने के लिये बेचैन-सा हो रहा था।

कुछ देर शांति रही। व्यापारियों ने सोचा, यह अब रुपयों के लोभ में आ रहा है। प्रेत-सिद्धि का काम छोड़ देगा।

"हमलोग आपको पंद्रह हजार अभी-अभी दिये देते हैं! यह देखिये। हमलोग अपने साथ ही रुपये लाये हैं।" एक व्यापारी ने कहा।

"मैं नहीं समझता मेरे इस काम को छोड़ देने से आपलोगों का क्या लाभ होगा! आप लोगों को तो प्रसन्नता होनी चाहिए कि मैं रात-रात भर जागकर सृष्टि के कतिपय अविदित ग्रहों का ज्ञान मानव-जाति को देने का प्रयास कर रहा हूँ। आज मेरी साधना सफल होगी, ऐसा विश्वास है।"

व्यापारी यह सुनकर डरे।......आज यह प्रेत-सिद्धि कर लेगा!

"हमलोग बीस हजार देंगे।"

"और आगे बढ़ो। हमलोग पचीस हजार देंगे। तुम यह काम छोड़ दो। अभी छोड़ दो।"

वैज्ञानिक चुप। कुछ भी नहीं समझ पा रहा वह।

आकाश में तारे बढ़ते चले जा रहे थे। उसके कार्य का समय समीप था। उसकी विकलता भी बढ़ती चली जा रही थी। अबतक तो किसी तरह वह शालीनतापूर्वक बातें करता रहा। अब उससे नहीं रहा गया। बोला—"मुझे आपलोगों के रुपये नहीं चाहिए। आपलोग मेरा समय बरबाद न करें।"

"हमलोग चालीस हजार देंगे!"

"आपलोग यहाँ से जाइये।" वैज्ञानिक झुँझला उठा।

"भले आदमी, इतनी मोटी रकम कभी देखी भी न होगी। तर जाओगे!"

"हमलोग साठ हजार देंगे। मजे में बँगला बनवाकर रहना और मौज करना। एक अच्छी-सी कार खरीद लेना।"

वैज्ञानिक ने घृणामयी दृष्टि से उनकी ओर देखा, लेकिन कुछ बोला नहीं।

"देखो, मूर्खता न करो। स्वीकार कर लो।"

"बाबा, आपलोग यहाँ से अपने-अपने घर जाइये। मेरा समय बहुत महत्वपूर्ण है। मेरी साधना का सबसे मूल्यवान प्रहर यही है। जाइये आपलोग।"

"हमलोग एक लाख देंगे।" व्यापारियों ने डर कर कहा।

"मुझे आप लोगों के एक लाख या बीस लाख रुपयों की आवश्यकता नहीं है। आपलोग कृपया मेरा समय नष्ट न करें।" वैज्ञानिक को क्रोध हो आया था।

और अपने दूरवीक्षण यंत्र की सहायता से वैज्ञानिक आकाश की ओर देखने लगा। देखता जाता और फिर पास के मानचित्रों में लाल स्याही से कुछ अंकित करता जाता।

व्यापारी निराश हो चुके थे। आशा की अंतिम किरण के क्षीण आलोक में एक व्यापारी बोला—"तो क्या तुम प्रेत सिद्ध करके उसकी सहायता से करोड़ दो करोड़ कमा लोगे? याद रखना, प्रेत जिसकी सहायता करते हैं उसी की गर्दन भी मरोड़ देते हैं!"

वैज्ञानिक ने उसकी ओर देखा—क्रोधपूर्वक। बोला—"तो क्या आप लोग यह समझते हैं कि मैं इस एकांत स्थान में प्रेत-सिद्धि कर रहा हूँ?"

"और नहीं क्या करते हो?"

"बाबा, आपलोग मेरा पिंड छोड़िये। मैं इस विश्व के दूरस्थित तारों के ग्रहों का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा यहाँ करता हूँ। मुझे न प्रेत की आवश्यकता है, न आपलोगों की और न आपके रुपयों की!"

"उस ज्ञान को प्राप्त करके करोगे क्या?"

"उस ज्ञान के द्वारा मैं अपने जीवन-पथ में छाये हुए अज्ञानान्धकार में कतिपय किरणों का आनयन कर सकूँगा और उनके प्रकाश में गंतव्य स्थान की ओर अधिक शीघ्रतापूर्वक चल सकूँगा। अन्य जीवन-यात्रियों का भी इससे प्रभूत उपकार होगा।"

व्यापारी उसकी बात नहीं समझे।

"आदमी सीधा मालूम होता है।"

"प्रेत-सिद्धि क्या खाक करेगा! जो प्रेत-सिद्धि का काम करता है व कई ऐसे मंत्र जानता है जिनके द्वारा वह आदमियों को बेहोश कर दे सकता है!"

"पागल है, पागल! अच्छा हुआ, रुपये बचे! नहीं तो व्यर्थ ही हमलोगों के एक लाख रुपयों पर पानी फिर जाता!"

"ठीक कहा। यह कोई पागल मालूम देता है! इसके बोलने के ढंग से और रहने के ढंग से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कोई पागल है!"

(४)

संयोगवश एक दिन वे तीनों दूरदेशागत यात्री मिल गये।

संध्या थी। पश्चिमी क्षितिज के बादलों पर रंगों की अटपटी रेखाएँ खींचकर कोई निराश चित्रकार चला गया था।

तीनों उस विचित्र देश के विचित्र निवासियों के विचित्र व्यवहार को देखकर चकित थे।

एक दूसरे का परिचय प्राप्त कर तीनों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

'हमलोगों की कार्य-प्रणाली में प्रभेद है, इसमें कोई सन्देह नहीं लेकिन मंजिल एक ही है। तीनों ही सत्य और सुन्दर के उपासक हैं।' उनमें से क बोला।

'लेकिन इस देश के रहनेवाले हमलोगों को परेशान क्यों करते हैं ! हमलोग तो इनके जीवन-पथ में विखरे तिमिर-जाल को अपाकृत करके शीतल चन्द्र-रश्मियों के आनयन का प्रयास करते हैं और ये हमें इस प्रकार संत्रस्त करते हैं ! आखिर कौन-सा देश है यह !" उनमें से दूसरा बोला।

'कुछ समझ में नहीं आता। इन लोगों के क्रिया-कलाप भी तो बड़े विचित्र हैं। इन लोगों में जो सबसे ज्यादा परिश्रमी होते हैं, उन्हें ये नीचा समझते हैं और कम से कम सुविधाएँ देते हैं और जो मुफ्तखोर होते हैं, उन्हें सब तरह से सम्मानित भी करते हैं और सब प्रकार की सुविधाएँ भी देते हैं। सुबह से लेकर शामतक पसीना बहानेवालों को तो भरपेट भोजन भी इनके देश में नहीं मिलता और दिनरात गद्दियों में बैठकर औरतों के सम्बन्ध में सोचनेवाले व्यक्तियों को ये लोग इतना खिलाते हैं कि उनका पेट तिगुना हो जाता है !"

"कहीं यह पागलों का देश तो नहीं है !"

"मालूम तो ऐसा ही होता है। इन लोगों की समस्त कार्य-पद्धतियाँ ही अटपटी हैं। इन लोगों की सामाजिक व्यवस्था को देखकर हँसी आती है।"

"लेकिन ये लोग तो हमलोगों को ही पागल बताते हैं !"

"तुमलोग पागल नहीं हो, मूर्ख हो !"—तीनों को एक आवाज सुनायी दी। तीनों चौंके। वहाँ उनके अतिरिक्त और कोई नहीं था। फिर यह आवाज कहाँ से आयी !

"लो, इस देश में आकर पागल भी बने और बेवकूफ भी। अच्छी मिट्टी पलीद हुई !"

आवाज फिर सुनायी दी—"जो निर्गन्ध किंशुक में सौरभ के आनयन का प्रयास करता है, वह मूर्ख नहीं तो क्या है ? पाषाण-खण्ड पर कमलिनी को रखकर जो यह चाहता है कि वह चिरकाल तक सुरभि प्रसारित करती रहे, वह अविवेकी नहीं है तो क्या है ?"

"तो क्या यह देश जहाँ हमलोग आ पहुँचे हैं, निर्गंध किंशुक के समान हैं ?—पाषाण-खण्ड के तुल्य है ?"

"उससे भी बदतर !"

तीनों एक दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे ।

"पागलों के देश में पहुँच कर तुमलोग चले हो सत्य और सुन्दर का प्रचार करने ! इससे बढ़कर अविवेकिता और क्या हो सकती है !"

"तो हमलोग क्या करें ?"

"यह मायालोक है ।—रुपयों का देश है। जबतक तुमलोगों को यहाँ रहना है, तबतक सत्य और सुन्दर को तो भूल जाओ और चुपचाप रुपयों के पीछे पड़ो । फिर देखो, तुम्हारा यहाँ कितना सत्कार होता है !"

"लेकिन हमलोगों को इन पागलों का सत्कार नहीं चाहिए, हमलोग सत्य और सुन्दर को चाहते हैं।"

"तो सत्य और सुन्दर को खोजते फिरो ! साथ ही इन पागलों के अत्याचार सहने को भी समुद्यत रहो !"

तीनों एक दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे।

"सत्य और सुन्दर तो इस देश में तुमलोगों को पीछे प्राप्त हो सकेंगे; पहले भख के मारे तुमलोग अधमरे अवश्य हो जाओगे।"

भूख तीनों को ही लगी हुई थी, लेकिन उधर उनका ध्यान अब गया । घबड़ाकर बोले—"तब किया क्या जाय ? बड़ी बेचैनी मालूम हो रही है। इस देश में आकर बुरे फँसे !"

"रुपये कमाओ !—रुपये ! मूर्खो ! किस फेरे में पड़े हो ? हीरा लेकर चले हो कुँजड़ों के मुहल्ले में उसका आदर कराने !"

"किंतु हमलोग रुपये कमाने के कार्य में अभ्यस्त जो नहीं !

"अभ्यस्त होने में देर नहीं लगेगी। रुपये एकत्र करने के लिये एक ही गुण की आवश्यकता है और वह है बेईमानी ! इस मायालोक में पहुँचने के बाद इस गुण को अर्जित करने के लिए विशेष परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं होती। यह गुण स्वयं आगन्तुकों के पीछे लग जाता है और इससे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। लो, मैं तुम लोगों को सोने की मोहरें देता हूँ। इन्हें लेकर बाजार में जाओ और बेईमानी का मूल-मंत्र जपते हुए इन्हें रोज दुगुनी करते रहो !"

× × ×

कवि, दार्शनिक और वैज्ञानिक तीनों ने सत्य और सुन्दर की आराधना छोड़ कर रुपये कमाना आरम्भ किया।

वैज्ञानिक ने साभ्यतिक पथ-प्रशस्ति के कार्य को छोड़ कर विषाक्त गैसों का आविष्कार किया और कोठियाँ खड़ी कर लीं।

लोगों ने कहा—'महान् है यह ! गजब की ताकत है इसके दिमाग में।'

दार्शनिक ने विश्व के अविदित रहस्यों पर विचार करना छोड़कर राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया और अल्पकाल में ही नेता बन बैठा। कोठियाँ खड़ी हो गयीं।

लोगों ने कहा—'धन्य है यह ! हमें सुपथ दिखला रहा है।'

कवि ने भी अपने लायक रास्ता निकाल ही लिया और महलों का निवासी बन बैठा।

लोगों ने कहा—'इस युग के गौरव हैं ये!'

(५)

लेकिन कवि, दार्शनिक और वैज्ञानिक तीनों ही जनता के द्वारा सत्कृत होने पर भी एक विचित्र बेचैनी का अनुभव कर रहे थे। उन्हें प्रतिक्षण यही अनुभव होता था कि उन्होंने अपने प्रति भीषण अन्याय किया है।

कवि आश्चर्यित होकर सोचता—"जबतक इस संसार के असौंदर्य में पथभ्रमित होकर आनेवाली सौंदर्य की चंद्र-रश्मियों को अपनी प्रतिभा के स्पर्श के द्वारा मैं स्थायित्व प्रदान करता रहा, तबतक तो ये लोग मुझे पागल समझते रहे और अब जबकि मैं असत्य और असुन्दर की सहायता से रुपये कमाता हुआ मानवी सभ्यता के विकास-पथ में अंगारे बिखेर रहा हूँ, तब मुझे ये लोग बड़ा आदमी समझ रहे हैं! किन पागलों का देश है यह!"

दार्शनिक विस्मयान्वित होकर सोचता—'जबतक इस मायालोक की भ्रांतियों से अपनी अंतरात्मा को विमुक्त करके दूरागत ज्ञान के पवित्र आलोक से संसृति-पथ को स्नात करने का मैं प्रयास करता रहा, तबतक तो इन लोगों ने मुझे पागल कहा और अब जब मैं बेईमानी के द्वारा नित्य हजारों का ढेर अपनी कोठी में लगा रहा हूँ, तब ये मुझे इतना आदर प्रदान कर रहे हैं! किन उन्मादियों का देश है यह!'

वैज्ञानिक विस्मित होकर सोचता—'जबतक मैं मानवी अस्तित्व को अपनी साधना के द्वारा श्रृंगारित करने का प्रयास करता रहा तबतक तो ये लोग मुझे अपनी कोप-दृष्टि का भाजन बनाते रहे ! मानवी

अस्तित्व की और उसको धारण करनेवाले इस नगण्य ग्रह के अस्तित्व की वास्तविकता के परिज्ञानार्थ जबतक रात-रात भर दूरवीक्षण यंत्र के साथ साधनालीन रहा तबतक तो ये मुझे पागल, मूर्ख और निकम्मा समझते रहे और अब जबकि मैं विषाक्त गैसों का आविष्कार करके अपनी तिजोरियाँ भर रहा हूँ, ये लोग मेरा सम्मान भी करते हैं और मुझे सब प्रकार की सुविधाएँ भी दे रहे हैं! मैं तो हैरान हूँ इस देश के रहनेवालों की मनोवृत्ति देखकर!"

तीनों अशांत थे, व्यथित और उद्विग्न थे। तीनों को लग रहा था कि उन्होंने अपनी पहले की जीवनचर्या छोड़कर बहुत बड़ा अपराध किया है। तीनों को लग रहा था, जैसे वे आत्मद्रोही हो गये हैं; असली जलाशय को छोड़कर मरीचिका के पीछे दौड़ रहे हैं।

संयोगवश तीनों एक बार फिर मिल गये। इस बार तीनों मोटरों में थे; मूल्यवान कपड़े थे उनके और साथ में सेक्रेटरी भी। पर तीनों के मुखों पर जो दुःख और निराशा की छाया थी, वह उन तीनों की ही आँखों से छिप न सकी। एक दूसरे के हृदय की कारुणिक अवस्था देखकर तीनों सिहर उठे!

"उस दुष्ट ने हमलोगों को सोने की मुहरें देकर हमलोगों का सर्वनाश कर दिया!"

"तब अब किया क्या जाय?"

"हमलोगों का इन पागलों के देश से बाहर निकलना तो अब असंभव है; लेकिन यहाँ रहकर भी हमलोग अपना कार्य कर सकते हैं।"

"लेकिन तब दुनियाँवालों का सत्कार नहीं मिलेगा। फिर पागल कहलाओगे! यदि यहाँवालों की इज्जत चाहते हो तो यहाँवालों को अमृत देनेके बदले जहर की प्यालियाँ दो,—कविता सुनाने के बदले गालियाँ सुनाओ,—बेई-मान और मक्कार बनो! सत्य के बदले असत्य का और विवेक के स्थानपर अविवेकिता का प्रचार करो!"—अदृश्य व्यक्ति की आवाज फिर आयी।

"हमलोगों का सत्यानाश करनेवाला वह दुष्ट फिर आ गया ! पकड़ो उसे।" कवि बोला।

"वह दिखलायी तो देता नहीं। कैसे पकड़ोगे उसे ? और उसका अपराध भी क्या है ! उसने तो सच्ची बात कही है। यहाँवालों का सत्कार प्राप्त करने का यही तरीका है !" दार्शनिक बोला।

"हमलोग बाज आये ऐसे सत्कार से !"

× × ×

दूसरे दिन तीनों ने सोने-चाँदी के टुकड़े लुटा दिये और पुरानी जीवन-पद्धति स्वीकार कर ली।

कवि एक सरसी के तटपर विटपी की शीतल छाया में चन्द्रिकोज्वल लहरों के सौंदर्य को अपनी कविता के द्वारा अमर बना रहा था।

दार्शनिक एक कुशासन पर बैठा हुआ जीवन और मरण के सम्बन्ध में सोचता हुआ खुले हुए पत्रों पर लिखता चला जा रहा था।

और, वैज्ञानिक काफी समय तक उपेक्षित स्थान में रखे हुए अपने दूरवीक्षण यंत्र की गर्द झाड़ रहा था।

कलाकार

कौमुदी का साहचर्य उसके लिये जीवन का सबसे मधुर वरदान था। संध्या की धूमिल घड़ियों में जब शहर से दूर पर्वत-श्रेणियों के समीप वे एक दूसरे को देखते रहते, उस समय उन्हें ऐसा मालूम होता था, जैसे वे जीवन की मंजिल तक पहुँच गये हैं । अब उनके लिये और कहीं भी पहुँचना बाकी नहीं।

कौमुदी के गीतों को सुनकर वह सब कुछ भूल जाता। जीवन-गगन में अनिमन्त्रित ही आकर क्रंदन करनेवाली सघन श्याम जलद-माला स्वर्णिम हो उठती और एक स्वर्गिक सौरभ से उसका हृदयोद्यान लहरा उठता ! कौमुदी के केशों की विशृंखलता दूर करने का सुमधुर प्रयास करता हुआ वह बोलता—"कौमुदी, तुम स्वर्ग से इस धरा पर मार्ग भूल कर आयी हुई कोई अप्सरा हो।"

कौमुदी मुस्कराकर बोल उठती—"और तुम उसे मार्ग दिखलाने के लिये आये हुए कोई देवदूत हो, यह कहना क्यों भूल गये?"

रसलालस नेत्रों से वह कौमुदी की ओर देखने लगता ।

कौमुदी के साथ एक दिन वह एक छोटे-से पहाड़ पर चढ़ रहा था; कौमुदी को बार-बार रुकना पड़ता। बसन्त मुस्कराता हुआ उसे हाथों का सहारा देकर आगे बढ़ाता।

"जीवन-पथ पर हमलोग इसी तरह एक दूसरे को सहारा देते हुए आगे बढ़ते चलेंगे कौमुदी!"

"लेकिन, मैं तुम्हें सहारा कहाँ दे पाती हूँ बसन्त! जब से हमलोगों ने इस पहाड़ पर चढ़ाई शुरू की है, तुम्हीं मुझे सहारा देते रहे हो। मैं तो तुम्हारे लिये एक व्यर्थ का भार ही बनकर तुम्हारे साथ चल रही हूँ। क्या जीवन-पथ में भी ऐसा ही होगा?" गंभीरतापूर्वक कौमुदी ने कहा।

बसन्त ने नेत्रों में अशेष स्नेह भरकर उसकी ओर देखा और फिर कहा—"सबसे बड़ा सहायक वह होता है जो अपनी सहायता को कोई महत्व नहीं देता। कौमुदी, तुम अपने को व्यर्थ का भार कैसे कह रही हो! तुम यदि मेरे साथ नहीं रही होतीं तो क्या मैं इस ऊबड़-खाबड़ मार्ग में एक कदम भी आगे बढ़ा सकता? तुम्हारा साथ ही तो मेरे शरीर में एक अभिनव शक्ति का संचार कर रहा है। तुम्हारे स्नेह और सौन्दर्य की दीप्ति ही तो मुझे प्रतिक्षण गिर पड़ने से बचा रही है। तुम्हारी कोमल उँगलियाँ पकड़कर मैं जीवन-गिरि के सर्वोच्च शिखर तक भी पहुँच सकता हूँ। कौमुदी, किन्तु तुम्हारे अभाव में मेरे लिये चरण उठाना कठिन हो जायगा। तुम मेरे प्राणों की शक्ति हो, मेरी आत्मा की कभी न निर्वापित होनेवाली आलोक-शिखा हो। जीवन-पथ पर तुम्हारे साथ जब मेरे चरण आगे को बढ़ेंगे, मंजिल स्वयं हमलोगों तक पहुँचने के लिये विकल हो उठेगी!"

कौमुदी ने भाव-मुग्ध अपने अशेष अनुराग के पात्र की ओर देखा।

कुछ क्षणों के उपरान्त दोनों पर्वत-शिखर पर थे। वायु का वेग रह-रहकर कौमुदी के केशों को एवं वेश-विन्यास को अस्त-व्यस्त कर जाता था

और वह उन्हें सँवारती हुई अपनी अनवद्य रूप-राशि से वसन्त को विमुग्ध कर रही थी।

'कोई गीत गाओ कौमुदी !' वसन्त ने मनुहारभरे स्वर में कहा ।

"अब चलना चाहिए। आकाश में बादल बढ़ते चले आ रहे हैं। कहीं मार्ग में इन सबों ने बरसना शुरू कर दिया तो बुरा होगा। कपड़े भींग जायँगे।"

"तुम्हें शरीर की तो चिन्ता ही नहीं है। सिर्फ कपड़े भींग जाने का दुःख है!"

"शरीर की चिन्ता मैं क्यों करूँ ? उस पर जिसका अधिकार है, वह करे!" और यह कहकर मुस्करा उठी।

दोनों जल्दी-जल्दी उतरने लगे, किन्तु मार्ग में ही जोरों की वर्षा होने लगी।

(२)

कौमुदी का सुकुमार शरीर उस दिन के कष्ट सह नहीं सका--खाट पकड़ ली उसने।

वसन्त सदैव उसके पास बैठा रहता। उसे अपनी उस दिन की जिद्द पर बड़ा दुःख हो रहा था। रह-रहकर यह भावना उसके हृदय में शत-शत वृश्चिक-दंशन की पीड़ा उत्पन्न करने लगती कि उसी के कारण कौमुदी को बीमार होना पड़ा है।

"कौमुदी, तुम्हें ज्वराक्रान्त करने का दोष मुझपर है।" अश्रु-सजल नेत्रों से कौमुदी की ओर देखकर वह बोला।

"ऐसा न कहो वसन्त! यह कह कर तुम मेरे हृदय पर जो आघात कर रहे हो, तुम नहीं जानते! .....और आखिर घबड़ाने की बात ही क्या है! मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो जाऊँगी। उस दिन के भींग जाने से मैं थोड़े ही बीमार पड़ी हूँ। बीमार पड़ना था, इसलिये पड़ गयी। वे बहुत ही सौभाग्यशाली क्षण थे, जब मैं तुम्हारे साथ पहाड़ के शिखर की ओर कदम बढ़ा रही थी।"

एकाएक वसन्त का छोटा भाई कमरे में आ पहुँचा। बोला--'चिट्ठी आयी है भैया!'

वसन्त ने चिट्ठी ले ली और खोलकर पढ़ना शुरू किया। यदि कौमुदी बीमार न रही होती तो उसे अत्यधिक प्रसन्नता होती उस चिट्ठी को पाकर! ....किन्तु इस समय उस चिट्ठी में उसके लिये कोई महत्व नहीं रह गया था।

"किसकी चिट्ठी है?" कौमुदी ने स्नेहसिक्त स्वर में पूछा।

"मुझे गया में नौकरी मिल गयी है। ढाई सौ रुपये प्रतिमास मिलेंगे। परसों मुझे वहाँ पहुँच जाना चाहिए।' उदास हो वसन्त ने कहा।

कौमुदी के चेहरे पर प्रसन्नता स्पष्ट थी। बोली--"मेरी प्रार्थना भगवान् ने सुन ली। अब शीघ्र ही हमलोगों के हर्षोल्लास के मधुभरे दिन और मदभरी रातें आनेवाली हैं!"

कौमुदी के उल्लास का सहस्रांश भी वसन्त के प्राणों में वह चिट्ठी नहीं जगा पायी थी। मौन रहा वह।

"तो तुम कल अवश्य रवाना हो जाओ।"

वसन्त ने अश्रु-सजल आँखों से उसकी ओर देखा, जिसका साहचर्य उसके लिये जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य--सबसे बड़ा वरदान था।

"क्यों, उत्तर क्यों नहीं देते वसन्त ! और प्रसन्नता के स्थान पर नेत्रों में यह नीर कैसा ?"

"मैं तुम्हें इस अवस्था में छोड़कर नहीं जा सकूँगा कौमुदी ! मेरा प्रत्येक क्षण वहाँ निर्वास की एक लम्बी अवधि बन जायगा।" आहत वसन्त ने कहा।

"देखो, पागलपन न करो। यदि यह अवसर तुमने हाथ से जाने दिया तो फिर जल्दी दूसरी नौकरी मिलनी मुश्किल है। इस जमाने में ढाई सौ की नौकरी का मिलना भगवान् की एक विशेष कृपा ही समझो। मैं शीघ्र ही अच्छी हो जाऊँगी। ज्वर का क्या ? वह तो यों ही आता-जाता रहता है। यदि तुम नहीं गये तो मुझे जो दुःख होगा, तुम उसकी कल्पना से भी सिहर उठोगे !" कौमुदी ने कहा।

आखिर वसन्त तैयार हो गया। हो क्या गया, उसे होना पड़ा। कौमुदी की शय्या को वह आँखों से ओझल नहीं करना चाहता था। लेकिन यदि नौकरी हाथ से चली गयी तो कौमुदी का और उसका चौबीस घंटों का साथ कितना कठिन हो जायगा, यही सोचकर वह गया जाने की तैयारियाँ करने लगा।

"मुझे प्रतिदिन सुबह शाम दो तार मिलने चाहिए, तुम्हारे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में।"

"हाँ, यह ठीक रहा। इस प्रकार तुम्हारी चिन्ता भी दूर होती रहेगी।"

× × ×

ट्रेन चली जा रही थी। रह-रहकर वसन्त को ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उसके समस्त सुकुमार स्वप्न, उसके जीवन की समस्त मधुमयी आकांक्षाएँ उस ट्रेन के पहियों के नीचे पड़-पड़कर कराह रही हैं और वह निष्ठुरतापूर्वक उन्हें रौंदती हुई आगे बढ़ती चली जा रही है !

वह रह-रहकर अपने मन को समझाता था कि ओ अभागे, तू क्यों इतना बेचैन हो रहा है ! नौकरी कर लेने के बाद कौमुदी भी तेरे साथ वहाँ रह सकेगी ! कितने सुख के दिन होंगे वे !—कितना मधु बरस पड़ेगा जीवन-पथ में !

किन्तु हृदय न जाने क्यों तो रह-रहकर सिहर उठता था ! एक प्राण-घातक आशंका रह-रहकर उसे कँपा-कँपा डालती थी ! ...गरीब की जिंदगी भी कोई जिन्दगी है ! पेट में रोटी के दो टुकड़े डालने के लिये और शरीर को वस्त्रों से ढँकने के लिये ही तो उसे आज गया जाना पड़ रहा है ! नहीं तो क्या कभी भी वह राँची के उन सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों को छोड़कर कहीं जाता !

(३)

गया पहुँचने पर उसे जो पहला तार मिला, उसमें लिखा था "कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

पढ़कर उसे कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई। ऐसे-ऐसे वाक्यों का अर्थ वह समझता था। रोगी के प्रेमियों को आश्वस्त करने के लिये अक्सर ऐसे ही वाक्यों को प्रयुक्त किया जाता है। वह उसकी ज्वर-मुक्ति का तार पाना चाहता था।

मन्दिर वह कभी भी नहीं जाता था। ईश्वरोपासना उसके लिये एक अनावश्यक-सी चीज हो गयी थी। लेकिन उस दिन शाम को वह दो घंटों तक प्रभु की मूर्ति के आगे कौमुदी के स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना करता रहा! पुजारी उसकी तन्मयता देखकर आश्चर्यित हो रहा था।

"किस मुहल्ले में रहते हो बाबू!" पुजारी ने स्नेहभरे स्वर में पूछा।

"इस शहर में बिल्कुल नया-नया हूँ। राँची से आया हूँ। यहाँ नौकरी मिली है।"

"जीते रहो बेटा! बड़े सज्जन हो तुम। तुम्हारी भक्ति से भगवान तुम पर बड़े प्रसन्न होंगे।" पुजारी ने उसे प्रसाद देते हुए कहा।

"महाराज! आशीर्वाद दीजिये कि भगवान मुझपर प्रसन्न हों। मेरे ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूट रहा है।"

पुजारी गंभीर हो गया। बोला—"इसकी आशंका तो मुझे शुरू से ही थी। तुम्हारी उदास और विषण्ण मुखाकृति देखकर यही प्रतीत होता था कि तुमपर या तो कोई विपत्ति आसन्न है या आ चुकी है!.....खैर, भगवान तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे। कल्याण हो तुम्हारा।"

वसंत ने पुजारी को जितनी श्रद्धा के साथ प्रणाम किया, उतनी श्रद्धा के साथ उसने जीवन में आज तक किसी को भी प्रणाम नहीं किया था। मन्दिर से निकल कर सीधा डेरे पर आया और धड़कते हुए कलेजे से तारवाले डाकिये की प्रतीक्षा करने लगा।

कोई दो घंटों के बाद तार मिला। कम्पित करों से उसने उसे खोला। पढ़ा—"बुखार सबेरे से कम है। आशा है, कलतक बिल्कुल नहीं रहेगा।"

भगवान को और उसके पुजारी को याद करता हुआ वह बिछौने पर लेट गया।

....कहीं कौमुदी ने यह दुनिया छोड़ दी तो!........क्या करेगा वह फिर इस दुनिया में! अभी तो जीवन का आरंभ ही है! क्या जाने कितने-

कितने वर्ष बिताने पड़ेंगे ! कौमुदी के अभाव में वह कैसे अपने दिन काटेगा ? जीवन के चीत्कार भरे प्रहरों को कैसे अतीत की झोली में डालने में समर्थ हो सकेगा !.........

....आत्महत्या ?....हाँ, आत्महत्या तो एक उपाय है ! वह भी वहीं चल देगा, जहाँ कौमुदी रहेगी। सृष्टि का संचालक क्या इतना निर्दय है कि उस दूसरी दुनिया में उसे कौमुदी से मिलने ही नहीं देगा !.....नहीं, वह सदय है, दया का सागर है। उसकी आहों से वह पसीज जायगा !........

ऐसे ही विचारों में वह डूबता-उतराता रहा कि वातायन-पथ से प्रभात के रवि की किरणों ने प्रवेश करना आरंम्भ कर दिया।

प्रतीक्षा करते-करते नौ बज गये, लेकिन डाकिया नहीं आया। आफिस जाने का समय हो रहा था। बड़ी बेचैनी मालूम हो रही थी उसे। आफिस उसे नरक-तुल्य प्रतीत हो रहा था। इसी आफिस में आकर कतिपय घंटे बरबाद करने के लालच से ही तो वह अपने हृदय की ज्योति से इतनी दूर चला आया है।

नौकर को यह कहकर कि तार आते ही वह डाकिये को दफ्तर भेज दे, वह दफ्तर की ओर चल पड़ा। उसकी उदास और गम्भीर मुखमुद्रा देखकर उसके नीचे काम करनेवाले कर्मचारी भयभीत भी थे, आश्चर्यित भी।

एक बजे डाकिये ने अंदर प्रवेश किया। काँपते हुए हाथों से उसने लिफाफा लिया। धड़कते हृदय से उसे खोला।.......खैर, डरने की कोई बात नहीं थी। अवस्था सुधरने का ही समाचार था।

सायंकाल वह फिर मंदिर गया। हृदय की सारी वेदना अपनी मौन स्तुति में उँड़ेल दी। पुजारी विस्मयन्चित उसे देख रहा था।

× × ×

दूसरे दिन सारा दिन प्रतीक्षा में बीत गया, लेकिन तार नहीं मिला। तार-आफिस जाकर पता लगाया। वहाँ भी निराशा हुई। आया हो, तब तो मिले!

रात भर वह सो नहीं सका। तरह-तरह के दुःखमय स्वप्न उसके मानस-क्षितिज में मँड़राते रहे। दूरवर्ती नक्षत्र से जैसे कोई उसे रह-रहकर पुकार उठता था!

प्रभात हुआ। फिर दफ्तर जाने का समय हो गया; लेकिन तारवाला डाकिया नहीं दिखलाई दिया।

साँझ हो आयी। तार-आफिस जाकर निराश होकर वसन्त शहर में इधर-उधर निरुद्देश्य भटकने लगा, पागलों की तरह! चारों ओर लोग आ-जा रहे थे, हँस-बोल रहे थे। चारों ओर व्यस्तता थी, कर्मण्यता थी। अभागा वसन्त उस कोलाहल में चुपचाप अपने जीवन के उस दुर्दान्त शाप की उदासी को प्राणों से चिपकाये हुए चला जा रहा था!

कौन है इस शहर में उसका, जिससे वह अपने प्राणों की व्यथा कहे! कौन उसके आहत हृदय को आश्वस्त करने का प्रयास करेगा?.....उस समय वह एक साथी चाहता था, जो उसकी आँखों के आँसुओं को अपनी उँगलियों से पोंछता हुआ उसे कलेजे से लगा ले और उसके प्राणों को शक्ति दे।

तीन दिन इसी तरह बीते। समझ गया वह, जीवन का सबसे बड़ा शाप अपनी क्रूर लीला कर चुका है। उजड़ चुका है अरमानों का मधुवन और प्रणय की कोकिला का गला किसी अदृश्य शक्ति ने घोंट दिया है!

अब गया में रहकर उसे करना क्या है! वह कहीं चल देगा,—बहुत दूर चल देगा! एक बार पहले राँची जायगा और कौमुदी की याद में

उस पहाड़ पर जी भरकर रोयेगा---उसे पागल बनकर पुकारेगा और फिर खेतों, नदी-नालों को पार करता हुआ इस विस्तृत संसार-सागर में विलीन हो जायगा !......

त्याग-पत्र लिख ही रहा था कि एकाएक दरवाजा किसी ने खट-खटाया। उठा वह और दरवाजा खोल दिया। देखा, सामने चिट्ठीरसाँ खड़ा है। चिट्ठी ले ली। तीन दिनों तक कौमुदी के स्वास्थ्य की कोई सूचना न मिलने के बाद चिट्ठी का आना क्या अर्थ रखता था, यह वह समझ गया। पागल की भाँति उसने लिफाफा खोला और पढ़ने लगा---

"प्रिय वसन्त, इधर अत्यधिक कार्य-व्यस्तता के कारण तुम्हें तार न दे सका। कौमुदी पूर्ण स्वस्थ है। दुर्बलता दो-चार दिनों में दूर हो जायगी। तुम नौकरी मन लगाकर करना। यहाँ सब सकुशल हैं।"

वसन्त ने चिट्ठी को चूमा, कलेजे से लगाया और डाकिये को आवाज दी। आश्चर्यित डाकिया लौटा। बोला---'कहिये सरकार !'

"लो, ये दो रुपये। तुम्हारे बच्चों की मिठाई के लिए हैं।" वसन्त की प्रसन्नता का बाँध टूट गया था।

(४)

डेढ़ महीने के बाद पंद्रह दिनों की छुट्टी थी। वसंत ने घर जाने की बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की थीं। कौमुदी के लिए सुन्दर उपन्यास, रिस्टवाच

और एक पार्कर फाउंटेन पेन उसने खरीदा था। फाउंटेन पेन पर उसने अंकित करवा दिया था—"कौमुदी को वसन्त की ओर से।"

इस बीच उसे कौमुदी का एक भी पत्र नहीं मिला था। वह दुखित अवश्य था, लेकिन कौमुदी की आदतों से वह अच्छी तरह परिचित था। एक बार उसने मजाक-ही-मजाक में कह दिया था, कौमुदी, तुम मामूली कलम से मेरे पास पत्र न लिखा करो !......उसके बाद से पत्र लिखना तो दूर रहा, उसने सब कुछ लिखना तब तक के लिये बंद कर दिया, जब तक कि उसे पार्कर नहीं मिल गया।

नानाविध सुखद कल्पनाओं का शृंगार अपनी अभिलाषाओं के पुष्पों से करता हुआ वह राँची पहुँचा। रिक्शे से उतरा। सामान रिक्शे पर ही रहने दिया। मकान में सन्नाटा छाया हुआ था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह क्या ? कौमुदी स्वागत करने भी नहीं आयी। उसके भाई भी नहीं ! ......विक्षुब्ध हो उठा वह ! अन्दर घुसा। दरवाजा खोला। देखा एक आराम-कुर्सी पर कौमुदी का भाई एक अखबार पढ़ रहा है। वसंत को देखकर वह उठा भी नहीं, उल्लसित भी नहीं हुआ, कुछ बोला भी नहीं।

वसंत विस्मय से आवाक् था !

'कौमुदी कहाँ है ?' वसंत ने पूछा ।

'कौमुदी ?'

'हाँ !'

उसके भाई ने आँखों में आँसू भरकर उँगली आकाश की ओर उठा दी। वसंत अर्धविक्षिप्त की भाँति पलंग पर गिर पड़ा। हाहाकार भरे स्वर में बोला—"कब ? वह तो स्वस्थ हो गयी थी न ?"

"स्वस्थ वह नहीं हुई थी। तुम्हें उसकी स्वस्थता के सम्बन्ध में जो पत्र भेजा गया था, वह तुम्हारे पिता के अनुरोध से। उनका कहना था

कि यदि कौमुदी की मृत्यु का समाचार तुम्हें मिल गया तो तुम तुरंत नौकरी पर लात मारकर राँची चले आओगे! तुम्हें झूठा पत्र लिखा गया था।"

वसंत के दिमाग में आँधियाँ चल रही थीं। बैग उसके हाथ से छूट कर फर्श पर गिर पड़ा। उपन्यास, रिस्टवाच, फाउंटेनपेन वहीं बिखर गये।

(५)

वसंत गया चला तो आया और पिताजी के अनुरोध से दफ्तर में नौकरी भी करने लगा, लेकिन जीवन के दिन जिस प्रकार बीत रहे थे, वही जानता था।

टूटा हुआ दिल अक्सर सोयी हुई कविता को जगा दिया करता है। वसंत गद्य-काव्य लिखने लगा। अपने जीवन के सारे हाहाकार को शब्दों में गुंफित करके वह इस तरह हिन्दी पाठकों के सामने रखता कि वे सिहर उठते। इतना क्रंदन—इतना गहरा विषाद उसके गद्य-काव्यों में होता था कि लोग उन्हें पढ़ने के बाद घंटों बेचैन रहते थे।

समय बीतता गया। दिवस और रात्रि के दो श्वेत श्यामल विहग सदैव सृष्टि-सागर के व्योम में एक दूसरे से मिलने का प्रयास करते रहे; किन्तु न तो मिल ही सके, न कोई ऐसा स्थल ही मिला, जहाँ बैठकर कुछ क्षण थके पंखों को शक्ति प्रदान करते।

कई वर्ष बीत गये। हिन्दी साहित्य वसंत की प्रतिभा के सौरभ से लहलहा उठा। लोगों ने उसकी नवप्रकाशित पुस्तिका पर मुग्ध होकर उसे सम्मानित करने की विराट् आयोजना की। एक विराट् सभा का आयो-

जन किया गया। दूर-दूर से साहित्यिक आमंत्रित किये गये। विश्वविद्यालयों से छात्र एवं छात्राएँ भी काफी संख्या में वहाँ आयीं।

चंद्र-ज्योतित यामिनी थी। पंडाल में एक उच्चासन पर वसंत बैठा था। अतीत की वेदना धुंधली पड़ चुकी थी और वह सम्मान उसके प्राणों में गौरव की अनुभूति के साथ-ही-साथ एक मधुर उल्लास भी जगा रहा था।

प्रख्यात साहित्यिकों की वक्तृताएँ हुईं। वसंत के साहित्य की उन्होंने मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

बाहर से आये हुए दो-चार छात्र सभा के संयोजक के पास पहुँचे। बोले---'यदि आप आज्ञा दें तो हमलोग कलाकार से अपनी डायरियों में हस्ताक्षर करने का अनुरोध करें।'

संयोजक ने सहर्ष आज्ञा दे दी। वसंत के सामने वे अपने फाउंटेन बढ़ा देते थे और साथ ही डायरी भी। वह मुस्कराता हुआ हस्ताक्षर कर देता था। अन्तिम छात्र की बारी आयी। उसने डायरी बढ़ा दी और फिर अपना फाउंटेन भी। वसंत ने फाउंटेन लिया। हस्ताक्षर करने जा ही रहा था कि हाथ काँप गया। फाउंटेन पर नजर पड़ी--"कौमुदी को बसंत की ओर से।"

तो, यह फाउंटेनपेन आज इसके हाथ में है!

सिहर उठा वह!.......

अतीत आँखों के आगे स्पष्ट हो उठा!........

उसने एक बार उस छात्र की ओर देखा और फिर उसके हाथ से फाउंटेन छूटकर जमीन पर गिर पड़ा। प्राणों का अनन्त हाहाकार मुख पर प्रतिबिंबित हो उठा! चेहरा धुँधला पड़ने लगा। सिर मेज पर टेककर न जाने क्या सोचने लगा!

जनता आश्चर्य-चकित हो रही थी। संयोजक महोदय विस्मय-विमूढ़ वसंत की ओर देख रहे थे।

"जितने भी कलाकार होते हैं, सब पागल होते हैं। इनलोगों का दिमाग कभी भी ठिकाने नहीं रहता है !" एक राजनीतिक नेता ने हँसते हुए कहा।

"अच्छा अभिनय हो रहा है। हजरत बन रहे हैं। दिखला रहे हैं कि मैं बड़ा भावुक हूँ।" एक व्यापारी विचित्र-सी मुखमुद्रा बनाते हुए बोला।

संयोजक महोदय घबड़ाये-से वसंत के पास पहुँचे। बोले—'क्यों, क्या हुआ आपको ?"

"अजी, कुछ नहीं, होगा क्या ! हजरत को स्वप्न-लोक में विचरण करने का यही तो सुअवसर मिला है, जबकि हजारों आदमी उनकी ओर देख रहे हैं !" एक सेठ का नवयुवक लड़का बोला, जो सिर्फ अँगरेजी बोलना सीख जाने के कारण ही अपने को प्रकाण्ड विद्वान् समझता था और जो कई बार अपनी मोटर से बरसात के दिनों में भद्र पुरुषों के कपड़ों पर कीचड़ उछालकर मुसकराने का अभ्यासी हो चुका था।

"क्या हुआ आपको ?" संयोजक ने फिर पूछा।

कोई उत्तर नहीं ! ....

संयोजक ने धीरे-से वसंत का सिर ऊपर किया और चीख उठा ! कलाकार की आत्मा शरीर के बंधनों से मुक्त होकर न जाने किस अज्ञात देश की ओर प्रयाण कर चुकी थी !

मर्त्यलोक

कतिपय देवकुमार एक बार नानाविध ग्रहों का अवलोकन करते हुए संयोगवश मर्त्यलोक की सीमा के पास पहुँच गये । वहाँ पहुँचते ही उन्हें विचित्र प्रकार की अनुभूति होने लगी ।

"यह लोक तो बड़ा विचित्र प्रतीत होता है ! ऐसी अनुभूति तो मुझे अन्यत्र कहीं भी नहीं हुई थी ।" एक ने कहा ।

"यदि इस ग्रह को हमलोगों ने जी भरकर नहीं देखा तो हमलोगों के विश्व-भ्रमण का महत्व ही न रहेगा ।" दूसरा बोला ।

इतने में एक अपरिचित रूपसी वहाँ आ पहुँची । शायद कोई परी थी । उसके दोनों पंखों से ज्योति प्रसारित हो रही थी । उसके आते ही सुगंध से उनका चित्त आह्लादित हो गया । मुग्ध होकर उन लोगों ने उसकी ओर देखा ।

"तुमलोग यहाँ कैसे आये देवकुमार ?"

"निरन्तर देवलोक में निवास करते-करते जी ऊब गया था । इच्छा हुई, विश्व के अन्य ग्रहों-उपग्रहों का पर्यटन किया जाय । नानाविध लोकों का निरीक्षण करते हुए संयोगवश यहाँ आ पहुँचे हैं ।" एक देवकुमार बोला ।

कुछ देर शान्ति छायी रही । वह अपरिचित रूपसी मौन भाव से उन सबों को देख रही थी।

"क्या आपका इस ग्रह से कोई सम्बन्ध है ?" दूसरे देवकुमार ने उससे प्रश्न किया।

रूपसी ने प्रश्न का उत्तर दिये विना ही कहा—"मुझे तुमलोगों पर दया आ रही है ।"

"दया क्यों रूपसि।"

"तुमलोग दया के ही पात्र हो। सुन्दर सुखमय देवलोक को छोड़कर आये हो मर्त्यलोक का निरीक्षण करने ! खैर, यदि तुमलोगों की यही इच्छा है तो मैं तुम्हारी सहायता कर सकती हूँ। लेकिन पहले यह बतला दो कि तुमलोग वहाँ बनोगे क्या ?"

देवकुमार एक दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे। रूपसी का प्रश्न उनकी समझ में नहीं आया। बोले—"अर्थ का स्पष्टीकरण करो, रूपसि !"

रूपसी हँसी। उसने मर्त्यलोक के नानाविध कार्यों और पेशों के संबंध में प्रकाश डालते हुए उन्हें वहाँ की कुछ अन्य बातें भी बतला दीं।

कुछ देर सोचने-विचारने के बाद एक देवकुमार बोला—"मैं तो डाक्टर बनूंगा। वहाँवालों के शारीरिक परिधान को ठीक करने के कार्य में तबीयत भी बहलेगी और वे लोग भी मेरा काफी सम्मान करेंगे।"

सुनकर दूसरा देवकुमार हँसा। बोला—"पागल हो तुम ! सदैव हैजा, मलेरिया, प्लेग प्रभृति विचित्र-विचित्र रोगों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करते रहोगे। इसीमें तुम्हारा मर्त्यलोक-प्रवास पूरा हो जायगा ! मैं बैरिस्टर बनूंगा। लोगों के पारस्परिक झगड़ों को देखने और अध्ययन करने में बड़ा आनन्द प्राप्त होगा। साथ ही वे मेरा तुमसे कहीं अधिक सम्मान करेंगे।"

"कर चुके बैरिस्टर का सम्मान! जैसा चित्रण रूपसी ने उस लोक के निवासियों का किया है, वे लोग शरीर को सबसे ज्यादा प्यार करते होंगे। उनके शरीर की रक्षा करनेवाला उनके सम्मान का सबसे बड़ा अधिकारी होगा।" पहला देवकुमार बोला।

"लोक-लोक भ्रमण करते-करते तुम्हारा मस्तिष्क भ्रमित हो गया है। जैसा चित्रण रूपसी ने उस लोक के निवासियों का किया है, स्पष्ट है कि वे लोग एक दूसरे से काफी झगड़ते होंगे और इस झगड़े में जो उन्हें विजयी बनाने में समर्थ होता होगा उसका वे सबसे अधिक सन्मान करते होंगे। मैं तो बैरिस्टर ही बनूंगा।"

"तो तुम समझते हो कि वहाँवाले मुझ से तुम्हारा सम्मान अधिक करेंगे?" पहला क्रोधित स्वर में बोला।

रूपसी हँसी। बोली--"तुमलोग देवकुमार होकर भी आपस में झगड़ते हो, यह बड़े दुःख का विषय है। शान्तिपूर्वक जल्दी निर्णय कर लो कि कौन क्या बनेगा।"

एक देवकुमार अधिक बुद्धिमान था। बोला--"यह लोक मुझे तो भयावह मालूम हो रहा है। इसकी हवा लगते ही हमलोगों में बातावाती होने लगी। अन्यथा आजतक कभी भी हमलोग किसी बात पर भी कहीं झगड़े थे?"

"कायर कहीं के! फिर भ्रमण करने के लिये निकले क्यों थे? इस लोक को देखे बिना यदि हमलोग वापस चले गये तो सारा श्रम निरर्थक होगा। यह ग्रह इस विश्व में सर्वाधिक विचित्र मालूम होता है।" पाँचवाँ देवकुमार बोला।

"खैर, तुमलोगों की यही इच्छा है तो मैं भी चला चलूँगा। पर मैं व्यापारी बनूंगा। यह लोक रुपयों का देश मालूम होता है और जिसके पास जितने रुपये होते होंगे, उसका लोग उतना ही सम्मान करते होंगे। सुविधाएँ भी उसे उतनी ही प्राप्त होती होंगी।"

"तुम लोग जो इच्छा हो वनो ! मैं तो वही बनूँगा, जो एक देवकुमार को बनना चाहिये। जैसा कि रूपसी ने बतलाया है, वे लोग अज्ञानान्धकार से पीड़ित हो रहे हैं। उन्हें ज्ञानालोक की आवश्यकता है। विश्व की रूप-रेखा के संबंध में उनकी धारणाएँ सर्वथा अज्ञानतापूर्ण हैं। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं कि शरीर उनका परिधान मात्र है। मैं उस लोक में ज्ञान का प्रचार करूँगा।"

"मैं तो भाई, कलाकार बनूँगा। उस असुन्दर लोक में अपनी कल्पना के द्वारा सौंदर्य की सृष्टि करूँगा। मेरी कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यास प्रभृति पढ़कर उस लोक के निवासी मुग्ध हो उठेंगे और मुझे पूर्ण विश्वास है कि युगयुगान्त तक मुझे न भूल सकेंगे! डाक्टरों, व्यापारियों, बैरिस्टरों को वह कौन याद रखता होगा! मुझे वे लोग सुविधाएँ भी काफी देंगे।"

उसकी बात सुनकर दूसरा देवकुमार हँसा। बोला—"जैसा वर्णन उस लोक का इस रूपसी ने किया है, तुम्हें वहाँ सुविधाएँ मिल चुकीं ! मैं तो वहाँ अभिनेता बनूँगा। मेरा यश वहाँ जितनी जल्दी प्रसारित होगा उतना तुमलोगों में से किसी का भी नहीं !"

रूपसी उनके निर्णय सुन-सुनकर मुस्कुरा रही थी। बोली—"तो निश्चय कर लिया न ?"

"सब निश्चय ही निश्चय है। आप हमें शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँचा दीजिये।"

(२)

उसके बाद पचीस-तीस बार उस ग्रह ने सूर्य के चारों ओर परि-कमा की।

उस ग्रह के एक शहर में एक बड़े व्यापारी के यहाँ विवाहोत्सव हो रहा था। बाजे बज रहे थे। खूब सजावट की गयी थी। लोग विवाह की तैयारियाँ देखकर दंग थे। शहर के सभी बड़े-बड़े आदमी उसमें सम्मिलित थे।

बीसों मोटरें मकान के सामने खड़ी थीं। पचासों नौकर इधर से उधर दौड़ रहे थे। मकान की छतपर स्त्रियों का गिरोह खड़ा था।

'धन्य हैं सेठजी आप! ऐसा विवाहोत्सव इस शहर में आजतक नहीं हुआ!" सेठ के एक मित्र ने कहा।

"ऐसे सेठजी भी तो आजतक इस शहर में नहीं हुए हैं साहब!" दूसरा बोला।

"सब रूपचन्द की माया है दोस्तो!" सेठ ने रुपया दिखलाते हुए मुस्कराकर कहा।

लोगों का ताँता हमेशा बँधा रहा। एक से एक मिठाइयाँ बनी थीं।

सेठ गर्वान्वित होकर अपने चारों ओर नजर डाल रहा था। लोगों के अभिवादन का उत्तर देते-देते उसके हाथ भारी हो चले थे।

एकाएक किसी ने आकर सूचना दी--"लड़केवाले किसी कारणवश रूठ कर जा रहे हैं!"

सेठ के काटो तो खून नहीं! मित्रों को भेजा कि जाकर शीघ्र पता लगाकर आओ, बात क्या है! मित्र पता लगाकर आये, बात ठीक थी। लड़केवाले किसी कारणवश रूठ गये थे और सेठ को खरीखोटी सुना रहे थे।

सेठ सुनकर जोश में आ गया!......"मेरे जितने बड़े आदमी के साथ ऐसा वर्त्ताव! सालों को जेल की हवा खिलाकर छोड़ूंगा! मेरी लड़की के साथ शादी करने के लिये लाखों लड़के मिल जायेंगे! सालों ने मुझे समझ क्या रखा है!"

"उन्होंने हुजूर की तौहीनी की है!" एक मित्र बोला।

"वे अब्बल दर्जे के बदतमीज हैं! उन्हें सजा मिलनी चाहिए।" दूसरा बोला।

"कम्बख्तों की किस्मत खराब है! ऐसा घर अब उन्हें मिल चुका!" तीसरा बोला।

सेठ ने ड्राइवर को बुलाया और फौरन अपने कई मित्रों के साथ उस बँगले में जा पहुँचा, जहाँ बरात ठहरी थी।

दोनों पक्षों में बातें होने लगीं। धीरे-धीरे गालियाँ भी शुरू हो गयीं।

"मैं तुमलोगों को इसका मजा चखाकर रहूँगा!"

"बहुत देखे हैं तुम्हारे जैसे मजा चखानेवाले!"

खैर यह हुई कि लोगों ने बीच-बचाव करके बात वहीं खत्म कर दी। अन्यथा दोनों ओर से लाठियाँ चल जातीं।

दूसरे दिन दोनों ओर से मानहानि के मुकदमे दायर हो गये।

बैरिस्टर साहब की खूब खुशामद होने लगी। मनुष्यों से सदैव अव-हेलनात्मक भाषा में बातें करनेवाला पूंजीपति सेठ बैरिस्टर के यहाँ जाकर घंटों बैठा रहता।

'सेठजी, आपको मैं इस मुकदमे में जिता तो दूँ, मगर पचास हजार का खर्च है!' वह कूटनीतिज्ञ बैरिस्टर बोला।

सेठजी तैयार हो गये। बैरिस्टर साहब को पचास हजार का चेक मिल गया।

न्यायाधीश से मिलकर बैरिस्टर साहब ने न जानें क्या तो किया कि हारते हुए सेठजी जीत गये।

शहर में चर्चा होने लगी—बैरिस्टर साहब का दिमाग बड़ा आले दर्जे का है। तभी तो एक-एक दिन में लाखों के वारे न्यारे हो जाते हैं।

विजय के गर्व से मत्त सेठजी अपने महल में पहुँचे और मित्रों को पार्टी भी दी।

रास्ते में चलनेवाले अनिमंत्रित व्यक्ति एक दूसरे से बातें करते जाते थे—"बड़े आदमियों की बात न पूछो!"

लेकिन तीन-चार दिनों के बाद जब विजय का नशा उतरा और मुकदमे में जो रुपये खर्च हुए थे उनकी याद आयी तो सेठजी चिंता और दुःख से विकल हो उठे। पता नहीं उसीसे या और किसी कारण से उनके सिर में सदैव पीड़ा रहने लगी।

डाक्टर बुलाया गया। उसकी तरह-तरह से खुशामद की गयी।

"आप मुझे ठीक कर दें डाक्टर! मैं आपको काफी रुपये दूंगा।" गिड़गिड़ाकर व्यापारी ने कहा।

"आप निश्चित रहें। मैं इस तरह के क्या जाने कितने रोगियों की चिकित्सा कर चुका हूँ। मुझे कभी भी इस रोग के निवारण में असफलता नहीं मिली।"

"मेरा व्यापार-कार्य नष्ट हो रहा है डाक्टर! यदि मैं अच्छा नहीं हुआ तो मेरी मिलें तबाह हो जायेंगी। मेरा सारा कारोबार खराब हो जायगा।"

और यह कहता हुआ सेठ डाक्टर की ओर इस प्रकार देखने लगा जैसे कोई डूबता हुआ व्यक्ति नाविक की ओर देखता है।

कुछ दिनों में सेठ अच्छा हो गया। डाक्टर की प्रतिष्ठा धनी-समाज में और बढ़ गयी। अपनी फीस भी उसने द्विगुणित कर दी। गरीबों को उसके दरवाजे तक पहुँचने का भी अधिकार नहीं रहा।

× × ×

शहर में उस दिन विराट् सभा का आयोजन किया गया था। एक सुविख्यात अभिनेता आनेवाला था। शहर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। टिकट खरीदकर ही लोग अंदर जा सकते थे। टिकट की दर बहुत ऊँची थी, इस कारण केवल पैसेवाले ही अंदर प्रवेश पा सकते थे।

सेठ को सभा का अध्यक्ष चुना गया और कला-संगीत-साहित्य से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हुए भी उसकी कला-प्रियता का काफी गुणानुवाद किया गया।

बैरिस्टर और डाक्टर भी सबसे आग बैठे थ।

अभिनेता ने साधारण-सा भाषण किया और दो गीत गाये।

बैरिस्टर ने उठकर अभिनेता की प्रशंसा में एक वक्तृता दी, जिसमें उसे देश का गौरव सिद्ध किया। उसकी अभिनय-कला को उपादेयता के सम्बन्ध में औरों के भी भाषण हुए, जिनमें सर्वश्रेष्ठ भाषण डाक्टर का समझा गया।

सभा-भवन के बाहर उन व्यक्तियों की भीड़ थी, जो मुद्राओं के अभाव में अंदर प्रवेश नहीं कर सके थे। मानव-जाति की आध्यात्मिक दुर्दशा को देखकर ज्ञान की पवित्र आलोक-किरणें वितरित करनेवाला एक व्यक्ति वहाँ आ पहुँचा। उसने सोचा, लोगों को सन्मार्ग पर लाने का अच्छा अवसर मिला है। वहीं एक ऊँचे स्थान पर खड़ा होकर वक्तृता देने लगा। क्षुद्र दैहिक वासनाओं को वश में करके किस प्रकार मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है, इस विषय पर उसका प्रवचन हो रहा था।

उपस्थित जनता में सब प्रकार के आदमी थे। कुछ ध्यानपूर्वक उसकी बातें सुनने लगे। कुछ व्यक्ति, जो अंदर न प्रविष्ट हो सकने के कारण उद्विग्न-से हो रहे थे, उस वक्ता के उपदेशों को सुनकर झुंझला उठे और जब वक्ता ने प्रचलित अविवेकितापूर्ण आध्यात्मिक धारणाओं के विरुद्ध कहना शुरू किया तो उनके मजहबी जोश ने उनकी विक्षोभाग्नि में घृताहुति का काम किया।

"मारो बदमाश को !" उनमें से एक ने जोरों की आवाज लगायी।

और, दो-चार पत्थर जोरों से उसके सिर पर आ लगे। खून बहने लगा और उसके लिये खड़ा रहना असंभव-सा हो गया। वह अशक्त होकर गिर पड़ा।

अंदर की सभा समाप्त हो गयी। नये और बहुमूल्य वस्त्रों में अपने भौतिक परिधान को ढँके हुए पूंजीपति एक-एक कर निकलने लगे। सद्धर्म प्रचारक के श्रोताओं में जो दो-चार उसकी बातें सुन रहे थे, भी उस ओर आकृष्ट होकर उठ खड़े हुए।

बदमाशों ने फिर चार-पाँच पत्थर फेंके। हल्ला हुआ, हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया और फिर दोनों ओर से पत्थर फेंके जाने लगे।

पुलिस ने सद्धर्म-प्रचारक को उसी अवस्था में गिरफ्तार कर लिया। उस पर आरोप लगाया गया था कि अपनी वक्तृताओं द्वारा वह हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य का बीज वपन करता है।

सद्धर्म-प्रचारक का परम प्रिय मित्र था एक कलाकार। अपने बन्धु की अवस्था सुनकर वहाँ आया और पुलिसवालों को समझाने लगा कि उनकी धारणा नितान्त भ्रांत है। उसके बन्धु को न किसी संप्रदाय से अनुराग है, न किसी से विरक्ति। वह मानव-समाज को ज्ञानालोक की स्वर्णिम रश्मि से शृंगारित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता।

मगर वहाँ उसकी सुनता कौन था !

जमानत पर छोड़ा गया। सिर पर जो चोट लगी थी, वह देखने में ही साधारण थी। कलाकार के बंधु की पीड़ा क्रमशः बढ़ती चली जा रही थी। रात-रात भर वह वेदना से विकल रहता था।

निर्धन कलाकार अपने बंधु को लेकर डाक्टर के यहाँ पहुँचा। डाक्टर ने उपेक्षाभरे स्वर में कहा—"मेरी फीस मालूम है?"

"डाक्टर साहब, जिस व्यक्ति की चिकित्सा आप करनेवाले हैं, उसकी महत्ता पर भी तो विचार कीजिये। आप इसके रोग को दूर करके मानव समाज का बहुत बड़ा उपकार करेंगे।' कलाकार बोला।

डाक्टर हँसा। व्यापारी भी पास ही बैठा था। शायद अपनी ही चिकित्सा के लिये वहाँ आया था। बोला—"यह तो वही आदमी है, जो लोगों को धर्म के खिलाफ भड़काता फिरता है और उसे लेकर आनेवाले ये साहब कौन हैं?"

पास में एक दूसरे व्यापारी बैठे थे। बोले—"पता नहीं, दिन भर अपने कमरे में बैठा-बैठा क्या लिखता रहता है!"

कलाकार ने सोचा, डाक्टर पढ़ा-लिखा आदमी है; ये व्यापारी तो मूर्ख हैं। शायद हम अपना परिचय दें तो काम हो जाय। बोला—"मैं पुस्तकें लिखता हूँ महाशय! उस आलमारी में वह जो उपन्यास दिखलायी दे रहा है, मेरा ही लिखा हुआ है।"

इतने में घड़ी ने टन-टन की आवाज दी। चार बज गये थे।

"पार्टी का समय हो गया। चलिये डाक्टर साहब, अभिनेता महोदय हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।" सेठ बोला।

डाक्टर ने अपनी रिस्टवाच पर दृष्टि डाली और चलने को खड़ा हो गया।

कलाकार घृणा और क्रोध से सिहर उठा!

मानवी संस्कृति को अपने मस्तिष्क का खून पिला-पिलाकर परिपुष्ट करते रहने का क्या यही पुरस्कार है ! क्या मानवी सभ्यता के पथ में आलोक विकीर्ण करनेवालों के प्रति मानव-जाति के ये प्रतिष्ठित व्यक्ति इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं !

उन असभ्य मानवों की ओर देखकर कलाकार ने फिर अपने बंधु की ओर देखा। बोला—"चलो, यहाँ से चला जाय !"

दंगा-फसाद करने का जो मुकदमा सद्धर्म-प्रचारक पर चलाया गया था उसके लिये बैरिस्टर साहब को ठीक करने के लिये कलाकार यह सोच-कर उनकी कोठी पर पहुँचा कि वे पढ़े-लिखे आदमी हैं और उसकी लिखी हुई पुस्तकें भी पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ से कई बार उनके यहाँ गयी थीं ।

"आप लेखक हैं ?" बैरिस्टर बोला।

"जी हाँ ?"

"आपकी भाषा बहुत कठिन होती है। समझ में नहीं आती। देखिये, बर्नाड शा कितना सरल लिखता है।" बैरिस्टर साहब बोले।

"अपनी-अपनी शैली है। न मैं बर्नाड शा के समान लिख सकता हूँ और न बर्नाड शा मेरे समान लिख सकते हैं !"

"बर्नाड शा ने लाखों रुपये कमा लिये हैं । आप भी सरल भाषा में लिखें तो काफी आमदनी कर सकते हैं ।"

कलाकार को बड़ा बुरा मालूम हो रहा था। बोला—"बैरिस्टर साहब, मैं भारती के मन्दिर की देहली पर व्यापार करने नहीं बैठा हूँ। पुस्तकें रुपयों के लिये नहीं लिखता। मेरी पुस्तकों की कीमत देने की क्षमता दुनिया के किसी भी व्यक्ति में नहीं है । मेरे पास शरीर नाम की भी एक चीज है और उसके लिये जिन वस्तुओं की मुझे आव-श्यकता होती है, वे आपलोगों के समाज में रुपयों से ही मिलती हैं अतः कुछ रुपये मैं प्रकाशकों से अवश्य लेता हूँ लेकिन उन्हें मेरी पुस्तकों का

मूल्य नहीं कहा जा सकता। देवता को प्रसाद चढ़ानेवाला व्यक्ति क्या देवता के उपकार का प्रसाद के रूप में मूल्य देता है ? मैं पुस्तकें इसलिये नहीं लिखता कि प्रकाशकों से रुपये लूँ, बल्कि प्रकाशकों से रुपये इसलिये लेता हूँ कि उनसे अपने शरीर की रक्षा कर सकूँ और अधिक-से-अधिक तन्मयता पूर्वक साधना करूँ !" कलाकार का आत्माभिमान सजग हो उठा था।

बैरिस्टर की समझ में उसकी बातें आ नहीं रही थीं। बोला--"आप यहाँ किसलिये आये हैं ?"

कलाकार ने अपने बंधु का और उसकी महत्ता का सम्यक् परिचय देते हुए कहा--'अविवेकी मानव-समाज ने इस महामहिम व्यक्ति पर इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण लांछन लगाये हैं। आप मेरी सहायता करें ताकि वह इस बखेड़े से मुक्त हो जाय।'

बैरिस्टर हँसा, और बोला--"दो हजार रुपयों का खर्च है। ला सकते हैं आप ?"

कलाकार सुनकर सहमा। बोला--"क्या आप उस महापुरुष के लिये इतना भी त्याग नहीं कर सकते ?"

'महापुरुष !' आश्चर्य से विस्फारित दृगों से उसकी ओर देखते हुए बैरिस्टर बोला--"महापुरुष होने के लिये भी पैसों की जरूरत होती है। गाँधी और जवाहर की ओर देखो। तुम्हारे दोस्त दो हजार का भी प्रबन्ध नहीं कर सकते और महापुरुष बने फिरते हैं !"

कलाकार के प्राणों में क्रोधानल प्रज्वलित हो उठा।

वहाँ से लौटकर अपने मित्र के पास जब आया, तो देखा, वह साधारण से विस्तर पर सो रहा है। बाँहें तकियेका काम कर रही थीं और फटी चादर हवाके झोंकोंसे रह-रह कर हिल-हिल उठती थी।

अन्तर्वेदना से प्रपीड़ित कलाकार लेखनी लेकर बैठ गया और लिखने लगा।

× × ×

पृथ्वी ने सूर्य के चारों ओर उसके बाद दस परिक्रमाएँ और दीं।

व्यापारी के ये दस वर्ष दस लाख को बीस लाख बनाने में, श्रम-जीवियों का शोणित-पान कर-करके अपने शरीर को स्थूल बनाने में, रात को दो-दो बजे तक रोकड़ मिलाने में, और वेश्याओं के अधरामृत का पान करने में व्यतीत हुए।

बैरिस्टर के ये दस वर्ष दो सुन्दर कोठियाँ बनवाने में, मुकदमों के द्वारा लोगों के घरों को तबाह करने में, असत्य भाषण के द्वारा निर-पराधों को जेल भिजवाने में और टेनिस खेलने में व्यतीत हुए।

अभिनेता के ये दस वर्ष जी खोलकर रुपये खर्च करने में, अभिनेत्रियों को लेकर इधर-उधर भ्रमण करने में, रात-रात भर मदिरा-पान करके अभिनेत्रियों को आलिंगन-पाश में आबद्ध रखने में व्यतीत हुए।

डाक्टर ने यह अवधि हैजा, मलेरिया, प्लेग, थाइसिस प्रभृति के चिंतन में और हॉकी खेलने में वितायी।

इन चारों को काफी सम्मान मिला। जो भी इन्हें देखता, कहता—'बड़े आदमी हैं!'

कलाकार और सद्धर्म-प्रचारक के ये दस-वर्ष तपस्या में व्यतीत हुए। अपनी प्रखर मनीषा के द्वारा कलाकार ने मानव-समाज को कतिपय ऐसी पुस्तकें प्रदान कीं, जिनकी प्रत्येक पंक्ति आलोक-निर्झरिणी थी और सद्धर्म-प्रचारक ने चारों ओर घूम-घूमकर प्रेरणाप्रद वक्तृताएँ दीं। शारीरिक सुख की ओर दोनों का ही ध्यान नहीं रहा।

इन दोनों को जो भी देखता, कहता—"समझ में नहीं आता, आखिर ये लोग कर क्या रहे हैं! कहीं इनका दिमाग फिर तो नहीं गया है!"

× × ×

छहों देवकुमार माया-लोक की उसी अन्तिम सीमा पर मिले, जहाँ से वे बिछुड़े थे। व्यापारी, बैरिस्टर, अभिनेता और डाक्टर अपनी सफलता पर प्रसन्न थे और कलाकार एवं मसीह पर व्यंग्य-बाणों का प्रहार कर रहे थे।

'बड़ा सम्मान हुआ न तुम लोगों का !'

"कहते थे, हमारी वे लोग बड़ी इज्जत करेंगे। हमें अपना उद्धारकर्त्ता समझकर हमें समस्त सुविधाएँ प्रदान करेंगे !......खूब सुविधाएँ मिलीं !"

कलाकार और धर्मप्रचारक बननेवाले दोनों देवकुमार उदास और लज्जित खड़े थे। क्या उत्तर देते वे !

एकाएक रूपसी मुसकराती हुई आयी। उन दोनों उदास देवकुमारों को देखकर बोली—"तुमलोग खिन्न एवं विषण्ण क्यों हो ? तुम लोगों का वहाँ अब जो सम्मान हो रहा है, इसकी कल्पना भी ये लोग नहीं कर सकते। इनलोगों को तो वे लोग अब याद भी नहीं करते। लेकिन तुम दोनों का कीर्तन सर्वत्र हो रहा है। (धर्मप्रचारक बननेवाले देवकुमार के प्रति) वहाँ तुम्हारे मन्दिर बन रहे हैं और लोग तुम्हारे उपदेशों का नियमित रूप से पाठ कर रहे हैं। तुम्हारी मूर्त्तियों के सामने नतजानु होकर क्षमा याचना एवं प्रार्थना करनेवालों की संख्या लाखों तक पहुँच चुकी हैं। (कलाकार बनने-वाले देवकुमार के प्रति) और तुम्हारा भी काफी सम्मान हो रहा है। तुम्हारी चिट्ठियाँ तक पुस्तकाकार छप-छपकर प्रकाशित हो रही हैं। तुम्हारी हस्तलिपि को हस्तगत करने के लिये तुम्हारे परिवारवालों को हजारों रुपये मिले हैं। तुम्हारी डायरी तक उनलोगों ने नहीं छोड़ी है। वह भी छप गयी है और समस्त देशों में उसकी आलोचना प्रत्यालोचना हो रही है। तुम्हारा एक वृहत् जीवन-चरित्र प्रकाशित हुआ है जिसमें तुम्हें इस युग की एक महान् विभूति सिद्ध किया गया है। संसार की समस्त भाषाओं में तुम्हारी पुस्तकों का अनुवाद हो रहा है।"

दोनों ने हर्षित होकर विजयोल्लास के साथ अपने उन साथियों की ओर देखा, जो अभी तक उन पर व्यंग्यवाणों की वर्षा कर रहे थे।

"बड़ी विचित्र दुनिया है वह ! जबतक ये लोग वहाँ रहे, इन्हें तरह-तरह से सन्तापित और पीड़ित किया गया—न रहने के लिये मानव-जाति इन्हें अच्छे मकान दे सकी और न पहनने के लिये अच्छे कपड़े ही और अब जब दोनों उस लोक को छोड़कर चले आये हैं तो इनका इतना सन्मान कर रही है।"

"विश्वास नहीं होता रूपसी की बातों पर। इन दोनों को आश्वस्त करने के लिये शायद यह ऐसा कह रही है !" एक देवकुमार बोला।

इस पर रूपसी कुछ क्रोधित -सी हुई। बोली—"मुझे इन्हें या किसी और के हृदय को झूठी बातों से आश्वस्त करने से मतलब ? तुम लोगों को यदि विश्वास नहीं होता तो एक बार फिर जाकर देख आओ।"

'हाँ, हाँ, यदि विश्वास नहीं होता हो तो जाकर देख आओ। तुम चारों में से कोई एक चला जाय।' कलाकार बननेवाले देवकुमार ने कहा।

चारों एक दूसरे की ओर देखने लगे। व्यापारी बोला—"मैं तो अब उस लोक में दुबारा नहीं जाने का। वहाँ मुझे रहने को अच्छे-अच्छे मकान मिले और चढ़ने को सुन्दर मोटरें मिलीं, इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन मन को शांति कभी नहीं मिली। सदैव तरह-तरह की चिन्ताएँ मन-प्राण को जर्जरित करती रहीं। मर गया मैं तो वहाँ रोकड़ मिलाते-मिलाते !"

बैरिस्टर बोला—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोग सदैव मेरी खुशामद किया करते थे. लेकिन उस खुशामद के लिये मुझे कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी, यह मैं ही जानता हूँ। झूठ बोलते-बोलते मैं तो परेशान हो गया ! उस जीवन से एक बार छुटकारा पाने के बाद दुबारा हिम्मत नहीं होती। डाक्टर और अभिनेता यदि जायँ तो अच्छा रहे।'

अपना नाम सुनकर डाक्टर चौंका। बोला—"माफ करो, मैं तो दुबारा वहाँ नहीं जाने का ! हमेशा हैजा, प्लेग, थाइसिस प्रभृति के विचारों में डूबा रहना पड़ता था। न दिन को चैन, न रात को ! रात को दो-

दो वजे उठकर रोगियों के घर जाना पड़ता था ! मैं तो परेशान हो गया ! अभिनेता को भेजो। इसने वहाँ खूब मजे किये हैं। सुन्दर अभिनेत्रियों के साथ प्रम-लीला करते हुए इसने जीवन बिताया है !"

"दूर के ढोल हमेशा सुहावने होते हैं डाक्टर ! मैंने वहाँ जो तकलीफें झेली हैं, उन्हें मैं ही जानता हूँ। तुमलोगों को अभिनेता का जीवन सुन्दर और सरस मालूम होता है, लकिन स्वयं अभिनेता होते तो मालूम होता ! घड़ी-घड़ी गिनकर मैंने जिन्दगी काटी है ! कान पकड़ता हूँ मैं । मैं तो अव नहीं जाने का ।' अभिनेता बोला।

और एक दूसरे की बातें सुनकर वे भयाक्रान्त-से आग को जल्दी -जल्दी कदम वढ़ाने लगे। जल्दी से जल्दी उस मायालोक के वातावरण से वे लोग वहुत दूर पहुँच जाना चाहते थे। केवल कलाकार और धर्मप्रचारक के पैर मस्ती के साथ आगे को वढ़ रहे थे ।

रूपसी उन जाते हुए देवकुमारों को देख-देखकर मुस्करा रही थी !

—::००::—
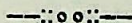
विप्लवकारी

उसकी प्रेयसी के पिता लक्षाधीश थे। महल में रहती थी वह; मोटरों में घूमती थी। उसकी एक साड़ी की जितनी कीमत थी, उतने में उसके घर का साल भर का खर्च चल सकता था!

फिर भी अभागे का साहस देखिए, उसको जीवन-संगिनी बनाने के स्वप्न देखता था! हतभागी को यह मालूम नहीं था कि चकोर का जीवन चाँद को पाने के लिये नहीं होता, केवल उसे प्यार करने के लिये होता है! उसके हृदय से अपना हृदय लगाकर जीवन के दुःखों और सुखों का स्वागत करने की लालसा वहाँ वज्र-मूर्खता है। वहाँ तो इतना ही है कि जब दर्शन हो जाय तब उल्लसित होकर देखता रहे, सूखे और आभा-हीन प्राणों में क्षण भर के लिये मधु की और ज्योत्स्ना की वर्षा कर ले; जब बादलों के कारण या अन्य किसी कारण दर्शन न हो तो अपने आँसुओं से अपने हृदय के उत्ताप को शीतल करने की चेष्टा करे!

जो बुद्धिमान होते हैं, वे सौरभ की परिस्थितियों में रहकर कभी भी राका जैसी नारियों को जीवन-संगिनी बनाने का स्वप्न नहीं देख सकते। लेकिन अभागे सौरभ को देखिये न, पृथ्वी का निवासी चकोर होकर चला है व्योम-विहारी चाँदपर एकाधिकार स्थापित करने!

समझता है, मैं भी कवि हूँ, राका भी कवयित्री है। धन की निस्सारता और कविता की महत्ता को समझती है। जानती है, धनपतियों की अपेक्षा कलाकार अधिक बड़े होते हैं! .....किन्तु अभागा इतना ही सोचकर रह जाता है! आगे बढ़कर नहीं सोचता या सोचने की हिम्मत नहीं कर पाता! सोचता है, राका उसकी कविताएँ पसन्द करती है, अपने लेखों में भी उसकी प्रशंसा करती है, यह सब प्यार का परिचायक नहीं तो क्या है! और यदि राका उसे प्यार करती है तो फिर उसे उसकी जीवन-संगिनी बनने से कौन रोक सकता है! वह कोई अशिक्षिता नारी तो है नहीं कि पिता जिसके साथ चाहें बाँध दें और वह विद्रोह न करे! वह सुशिक्षिता है, कवयित्री है, लेखिका है। अपने हृदय पर अत्याचार नहीं होने देगी! सारे संसार से वह खुला मोर्चा लेने को तैयार हो जायगी!

और ऐसी-ऐसी बातें सोच-सोचकर वह सुख पाता—सुख पाने की चेष्टा करता। कवियों की यह साधारण विशेषता नहीं कि अपनी कल्पनाओं के द्वारा वे जीवन की कठोर विवशताओं को भूल जाने में जल्दी समर्थ हो जाते हैं।

राका को क्यों नहीं वह क्रान्तिकारी-दल की ओर आकृष्ट करे! क्यों नहीं वह उसे समाजवाद की महत्ता और वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था की निस्सारता समझाये! ......इस प्रकार वह चिरकाल तक उसका साहचर्य पा सकता है। दोनों साथ-साथ पूँजीवाद की जड़ उखाड़ने में लगेंगे। राका का साथ सदैव उसे अभिनव शक्ति प्रदान करता रहेगा। उसका जीवन-क्षितिज उसकी रूप-श्री से सदैव ज्योतित रहेगा।

'राका!' एक दिन संध्या की अलस, धूमिल वेला में उसने बड़े ही स्नेह-सिक्त स्वर में कहा—'राका! क्या तुम वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था से संतुष्ट हो?'

'नहीं तो। मैं तो वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था को सर्वथा अविवेक-पूर्ण समझती हूँ। प्रचंड घृणा है मुझे इससे!'

'समाजवाद के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या धारणा है?' उत्साहित होकर सौरभ ने पूछा।

'वही एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसके होने से मानव-जाति अपने अस्तित्व को सार्थक कर सकेगी। अभी वह पशुओं से कुछ भी ऊपर नहीं। मस्तिष्करूपी जो शक्तिशाली साधन उसके पास है, उससे उसने अन्य पशुओं को परास्त अवश्य कर दिया है किन्तु उसके अपने क्रिया-कलाप पशुओं के क्रिया-कलाप से ऊपर नहीं उठ पाये हैं।'

'राका! मैं तो समझता था कि तुमसे मुझे घंटों तर्क-वितर्क करना पड़ेगा और तब तुम्हें समाजवादी बनाने में समर्थ हो सकूँगा। लेकिन तुम तो पहले से ही समाजवादिनी हो।' उल्लसित, प्रहर्षित सौरभ बोला।

'यह बात तुम्हें आज मालूम हुई है?'

'तो मैं इसे पहले जानता कैसे! महलों में निवास करनेवाली लक्षाधीश-पुत्री स्वभावतः ही पूंजीवाद की पोषिका होगी, यही धारणा चित्त में अनायास बद्धमूल होती है!'

'यह भ्रम है तुम्हारा! जबतक वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था है तबतक प्रत्येक व्यक्ति पूंजीपति बनने का प्रयास करता है और उसे ऐसा करना भी पड़ता है। वह न करे तो उसका काम नहीं चल सकता! लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रत्येक पूँजीपति पूँजीवाद का समर्थक भी होगा ही। मेरे पिता को तुम अभी पहचान नहीं पाये हो। पूँजीवाद से उन्हें स्वयं बड़ी घृणा है, किन्तु वे करें क्या? पूँजी एकत्र न करें तो काम कैसे चले! समाजवाद की स्थापना के पक्ष में वे वर्षों से हैं।'

'तो फिर वे इसके लिये प्रयास क्यों नहीं करते?'

'यही तो दुर्बलता है। प्रत्येक पूंजीवाद का विरोधी यदि समाजवाद की स्थापना के लिये संग्राम में कूद पड़े तो यह नारकीय व्यवस्था अधिक समय तक किसी हालत में नहीं टिक सकती।'

सौरभ का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। इधर-उधर की बातें करके अनुराग की शीराजी के नशे में विभोर अपने घर आया और सुनील अन्तरिक्ष के तारकों की ओर पलंग पर लेटे-लेटे घण्टों देखता रहा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे समाजवाद की स्थापना के कंटकित मार्ग में उसके और उसकी संगिनी के शरीर से गिरते हुए स्वेदकण ही तारकों के रूप में झिलमिला रहे हैं।

२

'इन्हें पहचानती हो राका!' उसके पिता ने एक युवक की ओर इशारा करते हुए कहा।

राका ने पहचानने की चेष्टा की, किन्तु पहचान नहीं पायी। हो सकता है, पहचान गयी हो किन्तु उसकी मुखमुद्रा से तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा था जैसे पहचान नहीं पायी है।

'तुम भी बड़ी भुलक्कड़ हो! यह तुम्हारा बचपन का साथी है नीलम। इंगलैण्ड से उच्चशिक्षा प्राप्त करके लौटा है।'

राका ने नीलम की ओर देखा। सुन्दर, स्वस्थ, लुभावना युवक पाश्चात्य वेशभूषा उसके शरीर पर बहुत ही भली लग रही थी। नीलम ने भी आँखें उठायीं। उस सुख-भार को राका की सुकुमार अँखड़ियाँ सह न सकीं। पलकें झुक गयीं।

चाय की तीन प्यालियाँ आयीं। कुछ मिठाइयाँ भी।

'इसे सर्विस से बहुत घृणा है। बम्बई में इसने एक मिल स्टार्ट की है और पूर्ण विश्वास है कि यह अपनी उच्च शिक्षा एवं कुशाग्रबुद्धि के बल पर अल्पकाल में ही बम्बई के इने-गिने व्यवसायियों में गिना जाने लगेगा।' उसके पिता ने नीलम की पीठ थपथपाते हुए कहा।

नीलम मौन था। राका की रूपश्री से मुग्ध उसका हृदय भविष्य की उन्मादक कल्पनाओं की वारुणी पी रहा था! राका ने नीरवता भंग की—'योरप आपको पसन्द आया?'

नीलम की इच्छा बोलने की नहीं हो रही थी। वह चुपचाप राका को देखते रहना चाहता था। लेकिन प्रश्न का उत्तर तो देना ही पड़ेगा। बोला—'वहाँ की बहुत-सी चीजें पसन्द आयीं, बहुत-सी पसन्द नहीं भी आयीं?'

"कौन-कौन-सी चीजें पसन्द आईं?"—राका ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'वहाँ के लोगों की जिन्दादिली और स्वातन्त्र्यप्रियता। वहाँ का नारी-स्वातन्त्र्य मुझे बहुत अच्छा लगा।'

'और नापसंद कौन-कौन सी चीजें हुईं?'

'वहाँ का आसमान!'

राका के पिता हँस पड़े। बोले—'अच्छा तुम दोनों बातें करो। मुझे एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना है।'

दोनों उस सुसज्जित प्रकोष्ठ में रह गये। बहुत-बहुत-सी बातें हुईं। राका ने अपनी कविताएँ नीलम को सुनायीं। वाणिज्य-व्यवसाय में दिमाग दौड़ाने वाला वह युवक उन कविताओं की तह में तो नहीं पहुँच सका लेकिन उसे उनमें एक अननुभूतपूर्व सुख की मधुमयी अनुभूति अवश्य हुई।

'राका! तुम्हारी कविताओं ने तो मुझे उस देश में पहुँचा दिया जहाँ सौंदर्य और अनुराग......'

'के पुष्प पर इच्छाओं के भ्रमर सदैव गुंजार किया करते हैं! क्यों?' और यह कहकर राका खिलखिलाकर हँस पड़ी।

३

सौरभ ने विदेश के एक क्रांतिकारी दल से सम्बन्ध स्थापित कर लिया और इस बात की चेष्टा करने लगा कि राका का भी सम्बन्ध स्थापित हो जाय। उन यामिनियों की मदिरामयी कल्पना से वह भाव-विभोर रहने लगा, जब राका के साथ वह विदेश में रहकर भारत के पूंजीपतियों के विरुद्ध काम करने में समर्थ हो सकेगा।

.....राका अवश्य उसके साथ विदेश चलने को तैयार हो जायगी उसके कहने भर की देर है। समाजवाद की सबल समर्थिका वह है ही। उसके हृदयान्तराल में उसके प्रति स्नेह की जागृति हो ही गयी है! .....स्नेह की जागृति मात्र!! ......बावला है वह! वह उसे बहुत समीप पा रही है अपने हृदय के! राका उसकी कविताएँ पढ़ते समय कई बार पुलक-विह्वल हो उठी है! उसकी अनुरागमयी कविताओं ने कई बार उसके सामने ही उसके वक्षस्थल को आन्दोलित किया है। क्या वह इतना भी नहीं समझ सकी होगी कि उन कविताओं में किसका अनुराग प्रतिबिम्बित हुआ है! ......

आशा का स्वर्ण-प्रदीप हृदय-मन्दिर में जलाकर वह राका के पास पहुँचा और बोला--'राका! अब मुझे विदेश जाना पड़ेगा। दलवालों ने बुलाया है। वहाँ से यह कार्य मैं अधिक अच्छी तरह कर सकूँगा। दल की शक्ति दिनोंदिन बढ़ती चली जा रही है। मुझे विश्वास है, हम लोग बहुत कम समय में पूंजीवाद की जड़ें उखाड़ फेंकेंगे।'

राका कुछ देर मौन रही। फिर बोली--'तुम विदेश जाकर अपना कार्य अधिक अच्छी तरह कर सकोगे, यह जानकर प्रसन्नता हुई। तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।'

हक्का-वक्का-सा सौरभ राका की ओर देखता रहा। उसे विश्वास था, वह भी उसके साथ चलने को अवश्य तैयार होगी; उससे अनुरोध करेगी कि मुझे भी विदेश ले चलो। मैं भी तुम्हारे दल की सदस्या बनकर पूंजीवाद के दुर्ग को भस्म करने का प्रयास करूँगी!

किन्तु अभागा सौरभ!.........सारा उत्साह शिथिल हो गया उसका! हृदय फटने-सा लगा!......तुम्हारा पथ प्रशस्त हो, यह वाक्य उसके हृदय को चीरने लगा!

'तो किस दिन जा रहे हो?'

'परसों!' अर्ध-विक्षिप्त की भाँति सौरभ ने उत्तर दिया।

'मैं पहुँचाने आऊँगी। तुम्हारे जैसे मित्र से एक सुदीर्घ अवधि के लिये बिछुड़ते हुए दुःख तो बहुत हो रहा है, लेकिन यह देखकर प्रसन्नता भी कुछ कम नहीं हो रही कि तुम एक ऐसे कार्य के लिये जा रहे हो, जो दुनियाँ के नारकीय रूप को नष्ट करके उसे स्वर्ग की सुषमा प्रदान करने में समर्थ हो सकेगा!'

सौरभ अपने स्वप्नों की दुनियाँ में अंधकार का चिरन्तन प्रवेश देखकर काँप उठा! बोला—'राका, मुझे पहुँचाने मत आना। मैं नहीं चाहता, तुम पर पीछे किसी प्रकार का भी सन्देह किया जाय!'

अधिक देर वह ठहर नहीं सका। हृदय उसका भग्न हो चुका था। वहाँ से आकर चुपचाप सूने नेत्रों से पश्चिम-क्षितिज की ओर देखता रहा।

.....क्या होगा अब विदेश जाकर! दुनियाँ में पूंजीवाद रहे चाहे समाजवाद रहे! उसको अब इससे क्या? उसकी दुनियाँ तो बरबाद हो चुकी! .....भारत में रहना भी मुश्किल और छोड़कर जाना तो और भी मुश्किल! यदि वह विदेश नहीं गया तो राका को कौन-सा मुँह दिखलायगा! क्या सोचेगी वह!......और यदि वह चला गया, अपने हृदय का खून करके यदि चला

भी गया तो क्या वहाँ वह अपने को राका के अभाव में किसी लायक भी रख सकेगा !

उसका दिमाग घूम रहा था। लड़खड़ाकर वह गिर पड़ा।

४

दो वर्ष वीत गये।

राका और नीलम का विवाह हो गया था। व्यापार में नीलम काफी उन्नति कर रहा था। राका वहुत सुखी थी उसके साथ।

'वह क्या है ?' एक पुस्तक की पांडुलिपि की ओर इशारा करते हुए नीलम ने पूछा।

'मेरे एक मित्र की लिखी कविताएँ हैं। आजकल ये विदेश में हैं। इनके प्राणों में जितनी शक्ति है उतनी ही मस्तिष्क में भी। समाजवाद की स्थापना करने का महान् व्रत इन्होंने स्वीकार किया है। दो वर्षों से विदेश के विप्लवी-दल में काम कर रहे हैं।' सौरभ की प्रशंसा करते हुए राका को हार्दिक प्रसन्नता हो रही थी।

नीलम मुसकराया। वोला—'तुम तो कभी-कभी ऐसी वातें करने लगती हो जैसे तुम पूंजीवादियों के विरुद्ध कोई षड़यन्त्र रच रही हो ! पूंजीवाद से इतनी घृणा क्यों है तुम्हें ?'

'पूंजीवाद घृणास्पद तो है ही ! जवतक यह जीवित रहेगा तव तक किसी को भी चैन नहीं। न तो पूंजीपति सुख को नींद सो पाते हैं, न श्रमजीवी

ही। आप अपनी ओर ही देखिये न। पन्द्रह दिनों के बाद आज आपको मेरे साथ टहलने का मौका मिल रहा है।'

'तो तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारे सौरभ कुमारजी विदेश में सचमुच गुप्तरूपसे पूंजीवाद का बलपूर्वक विरोध कर रहे होंगे!' राका की उँगलियाँ अपनी उँगलियों में लेते हुए नीलम ने कहा!

'इसमें भी कोई सन्देह है क्या? सौरभ को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। वह समाजवाद की स्थापना के लिये अपना सारा जीवन होम कर चुका है! आपकी उससे कभी मुलाकात नहीं हुई है। वह बड़ा ही कर्मठ, जीवनमय और ज्वालामय युवक है। मुझे पूर्ण विश्वास है, वह योरप में इस समय अपनी दुर्दान्त कार्य-शक्तियों के द्वारा अपने सहकर्मियों को विस्मयान्वित कर रहा होगा। उसकी बौद्धिक शक्तियों के द्वारा भारत का माथा अवश्य ऊँचा होगा।'

मौन नीलम अपनी पत्नी के मुख की ओर देखता रहा। सिगरेट जलाते हुए बोला—'चलो, मोटर तैयार है। घूम आयें।'

कुछ ही मिनटों में दोनों समुद्र-तट पर पहुँच गये। मोटर से उतर कर पैदल हीं टहलने लगे। एकाएक राका चिल्ला उठी—'अरे, कौन, सौरभ?'

......सौरभ ही तो था वह! फटे हुए कपड़े; बिल्कुल मैले। गढ़े में धँसी हुई आँखें; पिचके हुए गाल। हाथ में एक झोली!......पागल हो चुका था वह!

सौरभ ने राका की ओर देखा, फिर नीलम की ओर, फिर अपनी ओर और फिर बिना कुछ बोले ही सिर के केश नोचता हुआ भागने लगा! झोली फेंक दी थी उसने! उसमें से कुछ सूखी हुई रोटियों के टुकड़े निकलकर इधर-उधर बिखर गये; चार-पाँच आने पैसे भी!

राका ने एकबार उस दिशा की ओर देखा जिधर सौरभ भागा चला जा रहा था, फिर रोटी के उन बिखरे हुए टुकड़ों और पैसों की ओर। कुछ समझ नहीं पायी वह!

—::००::—

धोखा

पावस की तमसाकीर्ण अर्धयामिनी थी। व्योम-पथ के समस्त स्वर्ण-प्रदीपों को निर्वापित करके मेघ इधर-उधर भटक रहे थे।

किशोर की आँखों में नींद नहीं थी। एक विचित्र व्याकुलता उसके रोम-रोम में व्याप्त हो रही थी। उसे ऐसा लग रहा था, मानो हृदय के अन्दर ज्वालागिरि का भयंकर विस्फोट होना ही चाहता है!

अपनी पीड़ा प्रशमित करने के लिये उसने लेखनी उठायी और कविता लिखने का प्रयास गिया। लेकिन हृदय में रस कहाँ था! निराशा की चरम सीमा अपने अशेष अंधकार के साथ उसके कोमल प्राणों को संत्रस्त कर रही थी। जिसे अपनी आँखों के आगे बिठा कर वह जीवन के अन्धकारमय मार्ग में एक नयी और स्वर्णिम ज्योति जगाने के सुमधुर स्पप्न देख रहा था, उसके वियोग से वह इतना विपन्न और असहाय नहीं हो पाया था, जितना आज उसकी मृत्यु का समाचार पाकर वह हो रहा था।

पहले आशा की कतिपय रजत-रश्मियाँ उसके अन्धकारमय क्षितिज को जब-तब आलोकित कर जाया करती थीं। कभी न कभी जीवन के किसी न किसी पथ पर उससे मिलने के सपने जब-तब उसके प्राणों पर मधुकी

वर्षा करके नवीन गीत उससे लिखा लिया करते थे और संसार के अनेका-नेक आघातों से संत्रस्त वह सुकुमार कवि आँखों में आँसू भरकर कल्पना किया करता था—'मेरी कविताओं को पढ़ कर यदि उसके हृदय में जरा सी भी कँपकँपी उत्पन्न हुई और आँसू की एक नन्हीं-सी बूंद भी यदि उसके रक्तिम कपोलों पर ढुलकी तो मेरा अस्तित्व—मेरे वियोग का यह हाहाकार भरा अस्तित्व वेकार नहीं जायगा ! सार्थक हो जायगी मेरी यह क्रन्दनमयी काव्य-साधना !'

किन्तु अव वह कौन-सी आशा का आसव अपने मानस के रिक्त पात्र में भर कर जीवन के सुनसान मार्ग पर चलने का दुस्साहस करे ? किसके दर्शन की मदिरामयी आकांक्षाओं को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करे ?

रात वढ़ती चली जा रही थी और निराशा-जनित उसकी यंत्रणा भी। वार-वार वह अपनी उस पुस्तिका की ओर देखता, जिस पर उसने अपने भविष्य कीं समस्त आशाएँ केन्द्रित कर रखी थीं। अव उस पुस्तकको प्रकाशित कराके क्या होगा ! जिसके-लिये जिसके हृदय में प्रेम का एक कोमल कम्पन जगाने के लिये वह कविता-पुस्तक लिखी गयी थी, वही जव इस दुनिया में नहीं रही, वही चन्द्रिकामयी प्रेयसी जव इस हाहाकारभरे अश्रुलोक को छोड़कर कहीं अन्यत्र चली गयी, तो अव इसे दुनिया के सामने रख कर ही क्या होगा ?

माना, उस पुस्तक के प्रकाशित होने से वह वहुत प्रसिद्ध हो जायगा। लोग उसकी प्रतिभा की शक्ति स्वीकार कर लेंगे। समालोचनात्मक पुस्तकों में आदर के साथ उसकी कविताओं की चर्चा होगी। दुनिया के अन्य साहित्यिक उसकी कविताओं का अनुवाद अपनी भाषाओं में करके अपने को गौरवान्वित समझेंगे।

यह सव हो या न हो, किशोर को इससे अव क्या ? जव तक उसकी प्रयसी जीवित थी, तभी तक ये कल्पनाएँ उसे सुख पहुँचाया करती थीं,—

तभी तक वह यश का आकांक्षी भी था । लेकिन अब वह किसके लिये यशस्वी बने ?......किसे रिझाने के लिये कीर्त्ति का भार अपने दुर्बल कंधों पर रखे ?

कवि का जीवन भी क्या होता है ! अन्य मनुष्यों के लिये जो साधारण-सी बात होती है, वहीं उसके लिये असाधारणता छिपी होती है ! जिन घटनाओं पर किसी का ध्यान भी नहीं जाता,—जिनपर ध्यान देने की किसी को मामूली-सी आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती, वे ही उसके जीवन-वृन्त को बुरी तरह झकझोर डालती हैं ! आँधी का जो झोंका औरों के लिये सर्वथा नगण्य-सा होता है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो, वही भावुक कवि के हृदय की पंखड़ियों को छिन्न-भिन्न कर डालता है !

नहीं तो क्या बात थी ! किशोर के लिए नीलिमा कौन होती थी ! न उनकी जाति एक, न उनका धर्म एक। इधर चार वर्षों से उन दोनों में मुलाकात भी नहीं हुई थी । फिर भी वह उसकी मृत्युका संवाद सुनकर इतना अधीर हो उठा है, जैसे इतने बड़े संसार में उसको छोड़ कर उसका और कोई भी नहीं !

घड़ी ने दो बार टन-टन करके यह सूचना दी कि दो बज गए हैं। किशोर ने सोने की चेष्टा की, किन्तु आंखों में नींद हो तब तो !

२

जीवन-पथ का शृंगार आँसुओं से हो रहा हो या मुसकुराहट की स्निग्ध ज्योत्स्ना से, समय दिवस और रात्रि के श्वेत-श्यामल उपहारों को किसी के श्रीचरणों पर निवेदित करता हुआ अप्रतिहत गति से आगे बढ़ता ही चला जाता है!

एक वर्ष बीत गया। किशोर का हृदय ग्रीष्म के मरुस्थल की तरह विशुष्क और दाहमय हो रहा था। उसकी बची-खुची धाराएँ भी सदा के लिये उस अनन्तविस्तृत सिकताराशि में अपना अस्तित्व लुप्त कर चुकी थीं।

इस बीच उसने एक भी कविता नहीं लिखी। प्रिय-निधन की वेदना अन्य कवियों से अधिक हाहाकारमयी कविताएं लिखाया करती है, किन्तु किशोर के साथ ऐसा नहीं हो पाया। नीलिमा को मृत्यु के साथ-साथ जैसे उसकी कविता की भी मृत्यु हो गयी!

किशोर के जीवन में अब रहा ही क्या ? पैसों का अभाव तो शुरू से था ही, अब जीवन में आलोक और रस का भी अभाव हो गया! कौन-सा वहाना अब वह विस्तृत संसार-मरुस्थल में जीवित रहने के लिये ढूंढ़े! दुनियां में उसका कहीं कोई भी नहीं था। नीलिमा का साथ भी चार वर्षों से छूटा हुआ था, केवल उसके सौंदर्य की स्मृति अपनी ज्योत्स्ना बिखेर-बिखेर कर उसके पथ के अन्धकार को दूर करती रहती थी।

साँझ हो चुकी थी और दिनभर का भूखा-प्यासा किशोर अपने टूटे-फूटे मकान की देहली पर बैठा-वैठा आने जाने वालों को देख रहा था।

अचानक उसके मुहल्ले का एक आवारा लड़का आकर बोला—'वाह, तुम यहाँ बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? कवि-सम्मेलन में नहीं जाओगे क्या ?'

"क्या आज इस शहर में कवि-सम्मेलन है ?" किशोर ने पूछा।

'हाँ, बाहर से कई श्रेष्ठ कवि आये हैं। तुम्हें निमंत्रण नहीं मिला क्या ?'

किशोर को कवि-सम्मेलनों से कोई प्रेम नहीं था, लेकिन उस कवि-सम्मेलन में जाने के लिये वह शीघ्र ही तैयार हो गया। उसने सोचा, अब दुनिया से एक दिन विदा माँगनी ही है, एक दिन जहर की प्याली आँखों में आँसू भरकर और होठों पर मुसकान लेकर चूमनी ही है; फिर क्यों नहीं अपने प्राणों के आकुल आर्त्तनाद से दुनियावालों को भी अभिज्ञ करा दूं। इस तरह चुपचाप अपने हाहारव को अपने तक ही सीमित रख कर मृत्यु के श्यामल अंचल का स्पर्श करना तो उचित नहीं मालूम होता। यह सोचकर किशोर उठा। कपड़े बदले और कविताओं की पुस्तिका लिए हुए कवि-सम्मेलन में जा पहुँचा।

काफी भीड़ थी। बड़ी-बड़ी तैयारियां की गई थीं।

किशोर को भी बारी आयी। उसने अपनी एक कविता पढ़ी। लोगों ने मंत्र-मुग्ध की भांति कविता सुनी। इतनी क्रन्दनमयी कविता उन लोगों ने आज तक नहीं सुनी थी।

किशोर को कई कविताएं सुनानी पड़ीं। जनता मुग्ध हो गयी।

सभापति ने अपने भाषण में किशोर की कविताओं की बड़ी प्रशंसा की।

लेकिन किशोर को इन सबों से क्या! कविताएँ सुनाने के बाद वह चुपचाप सभा की समाप्ति के पहले ही घर की ओर चल पड़ा।

आँसू तो वहाँ कई आँखों में किशोर की कविताओं के कारण आ गये थे, किन्तु जितनी वेदना एक रमणी के हृदय में जाग पायी थी, उतनी और किसी में भी नहीं। वह सभा की समाप्ति की प्रतीक्षा कर रही थी। किशोर से मिलने के लिये वह अत्यन्त विकल हो उठी थी।

लेकिन सभा की समाप्ति के उपरान्त जब किशोर कहीं भी नहीं दिखलाई दिया तो वह बहुत विकल हो उठी।

उसकी संगिनी ने कहा—'इस समय किशोर तुम्हें नहीं मिला, यह अच्छा ही हुआ। तुम्हें देखकर वह सुध-बुध भूल जाता और फिर पुलिसवाले तुम्हें पहचान कर गिरफ्तार कर लेते!'

'आज चार वर्षों के बाद उसे देख पायी हूँ। मेरी मृत्यु का झूठा समाचार इसे अवश्य मालूम हो गया होगा और इसीलिए इसकी आवाज इतनी दर्दभरी थी! किन्तु तुम नहीं जानतीं, वह मुझे कितना प्यार करता है! मुझे सन्देह है, वह कहीं आत्मघात न कर ले!'

वह यहाँ से अपने घर ही गया होगा। और कहाँ जायगा? चलो, वहीं चलें।'

दोनों ने एक रिक्सा किया और किशोर के घर पहुँची।

अंदर जाकर देखा तो नीलिमा चीख उठी। किशोर अंतिम साँसें ले रहा था। पास में ही कविता की वह पुस्तिका भी रखी थी, जिससे उसने कवि-सम्मेलन में कविताएँ सुनायी थीं।

'किशोर!' नीलिमा वेदना और हाहाकार की सजीव प्रतिमा-सी उसकी मरणासन्न देह पर गिर पड़ी।

'प्यारे किशोर, तुमने यह क्या किया? मेरी मृत्यु का समाचार झूठा था। एक विशेष कारणवश मेरे दल की अन्य क्रान्तिकारिणी बहनों ने यह झूठी अफवाह जनता में उड़ायी थी।'

लेकिन किशोर वहाँ था कहाँ, जो उसको जवाब देता!

३

नीलिमा धनी पिता की एकमात्र पुत्री थी। क्रान्तिकारियों के दल में शामिल होने के बाद जब उसने देखा कि उसके पिताजी उसकी खोज में जमीन आसमान एक कर रहे हैं और चार वर्ष बीत जाने पर भी उनकी आशा का दीपक नहीं बुझ पाया है, तब उसने अपनी मृत्यु की झूठी अफवाह उड़ा दी।

किशोर को वह प्यार नहीं करती थी, ऐसी बात नहीं है; किन्तु प्यार की अपेक्षा उसने कर्त्तव्य को अधिक ऊँचा स्थान दिया था।

लेकिन, किशोर की मृत्यु का उसके हृदय पर बहुत ही बुरा असर हुआ। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे वह पागल हो जायगी। कभी-कभी तो उसे सन्देह होने लगता, कहीं उसकी दुर्बलता के कारण क्रान्तिकारी-दल पर कोई संकट न आ पहुँचे।

अंत में उसने उस दल का परित्याग करके पिता के पास जाने का निश्चय किया।

'नीलिमा, यह क्या ? हमलोगों को तुम से बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं !' उसके अधिनायक ने कहा।

'लाचारी है। हृदय पर वश नहीं।' अश्रु-सिक्त उत्तर था यह उसका।

'पिता से मिलकर फिर आओगी न ?'

'आशा कम है। प्रयास करूँगी।'

'पिता से मिलने की ऐसी आवश्यकता ही क्या है ?' एक व्यक्ति का प्रश्न हुआ।

'मुझे भय है, जो हालत किशोर की हुई, वही हालत कहीं मेरी मृत्यु के समाचार से मेरे पिता की भी न हो !'

४

रात के बारह वज नीलिमा टैक्सी से अपने बँगले के सामने उतरी।

सीढ़ियों पर पैर रखते ही उसके आश्चर्य की सीमा न रही। चारों ओर विवाह का सा दृश्य नजर आ रहा था। वाजा बजानेवाले वाजों के पास थककर सोये हुए थे। बंगले की सजावट का क्या कहना था! राजाओं के यहां भी शादी में इतनी सजावट शायद ही होती हो!

'तो क्या पिताजी घर बसाने जा रहे हैं! इस उम्र में उन्हें विवाह का निश्चय करते हुए शर्म नहीं आयी!' घृणा और क्रोध के मारे नीलिमा सिहर उठी!

वह अंदर जाने की हिम्मत न कर सकी। एक कागज पर उसने लिखा--"पिताजी, मुझे यहाँ का दृश्य देखकर आप से प्रचण्ड विरक्ति हो गयी है। मैं आपके पास रहने के लिये आयी थी। मेरी मृत्यु का समाचार झूठा था। लेकिन धन्य हैं आप! मेरी मृत्यु का समाचार आपके विवाह का कारण हुआ! आप से ही नहीं, मुझे अव जीवन से ही घृणा हो गयी है। मैं उस किशोर को भी खो बैठी जिसके हृदय के उच्चतम आसनपर मैं थी। आप चाहें तो इस चिट्ठी का जवाव ....के पते से दे सकते हैं। लेकिन वहाँ आकर आप मुझसे नहीं मिल सकेंगे। केवल आपका पत्र मुझे मिल जायगा! आपकी--नीलिमा।"

और वह वहाँ से शीघ्र ही रवाना हो गयी ।

'लौट आयी तुम ?' दल के अधिनायक ने पूछा।

'जी !'

नीलिमा ने सारा हाल कह सुनाया । अधिनायक ने सब कुछ सुन कर कहा 'दुनियाँ ऐसी ही है नीलिमे ! मोह की वशवर्त्तिनी होकर कर्त्तव्य-मार्ग की अवलेहना न करो।'

५

अधिनायक ने पत्र खोलकर पढ़ा--'बेटी,--तुम्हारा छोटा-सा पत्र एक आदमी ने पढ़ कर सुनाया। सुनकर आत्मा रो उठी है ! तुम्हें चार वर्षों तक खोजते रहने के बाद भी मेरी आशा नष्ट नहीं होती, यदि तुम्हारी मृत्यु के समाचार ने मेरे हृदय को पागल नहीं कर दिया होता ! तुमसे मिलने की आशा को निराशा में परिणत होता देख मैं कितना संतप्त हुआ, इसकी कल्पना तुम नहीं कर सकती। मैं आधा पागल हो गया। मेरे जीवन की एकमात्र साध तुम्हारी किसी सुयोग्य युवक से शादी करके भग-वान का भजन करने की थी। उस आशा पर सदा के लिये पानी फिर गया। मैंने यह जो घर का साज श्रृंगार कर रखा है और गाजे बाजे वालों को रखा है, वह अपनी शादी के लिये नहीं नीलिमे ! हाय ! तुमने भी क्या से क्या समझ लिया ! मैं इन बाजों की आवाज को आज से नहीं, उसी दिन से सुन रहा हूँ जब से तुम्हारी मृत्यु का समाचार मिला है ! मेरे घर में एक अर्से से इस प्रकार की शादीवाली चहल-पहल

होती है। लोग यह सब देख कर हैरान हैं। लेकिन मैंने यह सब अपने पागल हृदय को समझाने के लिये किया है, अन्यथा जीवित रहना मेरे लिये असंभव था। शराब के नशे में जब मैं इन बाजों की आवाज सुनता हूँ और बंगल की सजावट देखता हूँ तो मुझ एसा मालूम होन लगता है जैसे मेरी नीलिमा की शादी हो रही है! तुमको कम से कम एक बार मुझसे मिल तो लना चाहिय था। तुम्हारी चिट्ठी ने मेरी क्या हालत कर दी है, इसकी कल्पना भी तुम नहीं कर सकतीं! नीलिमा, एक वार आकर मुझसे अवश्य मिल लो--फिर शायद तुम अपने पिता को न देख सकोगी!'

अधिनायक ने समीपस्थ व्यक्ति को नीलिमा को बुलाने की आज्ञा दी।

"नीलिमा ने आत्महत्या कर ली है। उसकी मृतदेह के साथ एक किताब की पांडुलिपि मिली है ऑर आपके नाम से एक चिट्ठी भी जिसमें उस किताब को सुन्दरतापूर्वक प्रकाशित करने का अनुरोध किया गया है।"

कर्त्तव्य के कठोर मार्ग पर चलनेवाले उस पुरुष-केसरी की आँखों में भी आँसू भर आये।

पत्र में लिखा था--'चाहती थी सारा जीवन विप्लवी-दल को सेवा में निवेदित करना। किन्तु दुदव के निर्मोह आघात ने ऐसा करने नहीं दिया। मैं समझ बैठी थी, मैंने अपनी समस्त कोमल-कांत भावनाओं और आकांक्षाओं को क्रांति की सर्वग्रासिनी लपटों में भस्म कर दिया है। समझने लगी थी कि अब जीवन-विटपी की शाखाओं को कोई भी आँधी झुका नहीं सकेगी। किन्तु मेरा यह सोचना एक धोखा,--एक आत्मप्रवंचना थी। किशोर के निधन ने और पिता जी के आचरण ने मेरी समस्त आशावादिता को उन्मूलित करके स्मशान का भयंकर दृश्य मेरे हृदय-प्रांत में उत्पन्न कर दिया है। चारों ओर चिताएँ ही चिताएँ हैं वहाँ! अब मैं करूँ तो क्या करूँ! विवश, विकल, विक्षुब्ध मन अब दुनियाँ के उस पार जाना चाहता है--इस तिमिर-सरिता के उस पार!"

इसी प्रकार की कतिमय हाहाकारमयी पंक्तियों के बाद अंतमें था—'ये कविताएँ उस व्यक्ति को लिखी हुई हैं, जिसने त्यागमय प्रेमकी वेदीपर अपने को उत्सर्ग कर दिया है। काश, मैं इस महान् प्रेम की अधिकारिणी बन पाती! इन कविताओं के संग्रह को यदि प्रकाशित करनेकी कृपा की तो मैं समझूँगी, मैंने दल के लिए जो कुछ भी त्याग किया है, उसका प्रतिदान मुझे मिल गया।'

६

किशोर की कविता-पुस्तक सुंदरतापूर्वक प्रकाशित हुई। सहृदय पाठक पढ़ते समये रस-विभोर हो उठते थे। इतनी वेदनामयी कविताएँ लोगोंने अन्यत्र कहीं नहीं पढ़ी थीं।

लेकिन उस कविता-सग्रह के पीछे कौन-सा हाहाकारभरा इतिहास छिपा था, इसे तीन-चार व्यक्तियोंको छोड़कर और कोई भी नहीं जान पाया।

—::००::—

धर्म, अध्यात्म और क्रांति

हिमगिरि की रजतवर्ण रम्य शिखर-माला। स्वच्छन्द व्योम और उसमें मुसकराता हुआ पूर्णिमा का सुधांशु।

चारों ओर अप्रतिम सौंदर्य छाया हुआ था। प्रकृति उस निर्जन वन-प्रांत पर आश्चर्यजनक रूप से सदय थी। चारों ओर तृण-राजि, लता-गुल्म और द्रुमों की अद्‌भुत हरीतिमा। नानाविध पुष्पों का सुरभि-दान। शीतल, सुगंध समीर का मंद-मंद प्रवाह।

गुरुदेव उस दिन कुछ चिंतित दिखायी दे रहे थे। उनके सदैव प्रसन्न रहने वाले श्रीमुख पर विषाद की इस अप्रत्याशित छाया से उद्विग्न होकर हेमंत ने प्रणि-पात करते हुए प्रश्न किया--'श्रद्धेय गुरुदेव, आपका पावन मुख-मंडल निरंतर आनंद की किरणें वितरित करता रहता है। आपका दर्शन प्राप्त करके उदास और नैराश्यग्रस्त व्यक्ति भी अपनी व्यथा से त्राण पा जाता है। क्या कारण है जो आज आप इतने चिंतित दिखायी दे रहे हैं?'

गुरुदेव मुसकराये। बोले--'वत्स, तुम अकेले ही कारण जानकर क्या करोगे! मैं चाहता हूँ, सभी आश्रमवासी इसका कारण जानें।'

हेमंत को लगा, कोई बहुत ही विशिष्ट हेतु है, तभी तो गुरुदेव समस्त आश्रम-वासियों को उस विषाद-भार से परिचित करना चाहते हैं। वह आश्चर्यित था, गुरुदेव को उदास देखकर दुःखित भी।

नम्रतापूर्वक बोला—'किंतु गुरुदेव, समस्त आश्रमवासी तो आज यहाँ हैं नहीं। आपके सर्वाधिक बुद्धिमान शिष्य भी बाहर गये हुए हैं। उनकी उपस्थिति आवश्यक है।'

"उन सबों को सूचना दे दो कि सोमवार को वटविटपी के नीचे एकत्रित हो जायें।"

× × ×

आश्रम से कोई सात-आठ कोस की दूरीपर नवनीत और शेफालिका सरसी की सुरम्य चंद्रिका-स्नात लहरों का निरीक्षण कर रहे थे। नवनीत बोला—"शेफालिके, सुना है, गंगा-यमुना-तट की वह भूमि पुराना सौंदर्य खो बैठी है। धर्म त्याग के स्थान पर परिग्रह का साधन बन गया है। वर्णाश्रम धर्म की तो बड़ी भयंकर विक्रिया हो रही है।"

'तुम्हें ये बातें किसने बतायीं ?'

"कुछ ही दिन पहले गुरुदेव के एक घनिष्ट मित्र आश्रम में आये थे। वे

परिव्राजक हैं। देश-देशान्तर का पर्यटन करते रहते हैं। उन्होंने ही गुरुदेव से ऐसी बहुत-सी बातें कहीं। मैं भी दूर से सुन रहा था।'

'गुरुदेव पर इस प्रकार के समाचारों का क्या प्रभाव पड़ा ?' शेफालिका ने उत्सुकतापूर्वक प्रश्न किया।

'वे बहुत ही व्यथित हो उठे । और दिनों की अपेक्षा अधिक देर तक प्रार्थना में भी लीन रहे । लगता है, वे आश्रम छोड़कर अब सद्धर्म की रक्षा के लिये पर्यटन करेंगे ।'

'बड़े आश्चर्य की बात है । बीस वर्षों से मैं देख रही हूं, गुरुदेव इस स्थान को छोड़कर कहीं नहीं गये। अब ऐसा कौन-सा आकस्मिक हेतु हो गया ?'

संपूर्ण सूचना तो मुझे भी नहीं है। किंतु लक्षण ऐसे ही दिखायी दे रहे हैं।'

शेफालिका कुछ देर मौन रही। गुरुदेव के प्रति उसके हृदय में अगाध श्रद्धा थी। चिंतातुर स्वर में बोली--'किंतु यह परम लज्जा की बात होगी कि हमलोगों के रहते हुए स्वयं गुरुदेव को इस आयु में कष्ट उठाना पड़े। क्या तुम इस कार्य को नहीं कर सकते ?'

नवनीत चुप था। सोच ही रहा था कि हेमंत आता दीख पड़ा।

उसने दोनों को गुरुदेव का आदेश सुनाते हुए कहा कि समस्त आश्रम-वासियों को सोमवार के दिन वट-वृक्ष के नीचे एकत्रित होना है। गुरुदेव किसी महत्वपूर्ण विषय पर विवेचना करेंगे।

× × ×

गुरुदेव के मुख से गंगा-तटवर्त्ती भूमि पर व्याप्त धर्म-संकट के सम्बन्ध में सुन कर शेफालिका उठ खड़ी हुई। बोली––'भगवन्, आप स्वयं न जाकर यदि अपने शिष्यों में से कुछ को भेज दें तो अधिक उचित होगा । आप यदि स्वयं चले गये तो आश्रम की स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाएगी। और साथ ही इससे अधिक लज्जा की दूसरी बात क्या हो सकती है कि युवक यहाँ रहें और आप कष्ट सहते फिरें।"

"मैंने स्वयं इस पर विचार किया है। लेकिन मैं देखता हूँ कि जिन समस्याओं का सामना वहाँ जाकर करना पड़ेगा, वे दुःसाध्य है। मात्र नास्तिकता की ही वृद्धि का प्रश्न रहा होता तब भी कोई बात थी।"

थोड़ी देर शांति छायी रही। वृक्ष की शाखाओं पर नानाविध वन-विहगों का कलरव बड़ा ही श्रुति-सुखद प्रतीत हो रहा था।

"जैसा मुझे ज्ञात हुआ है, कपटाचारिता का, आडम्बर और छद्म का ऐसा प्राबल्य भारत के इतिहास में कभी भी देखने में नहीं आया। धर्म और देश-भक्ति की आड़ में अनेक व्यक्ति अपने निम्नतम स्वार्थ की सेवा के कार्य में लगे हैं। जिस वर्णाश्रम धर्म का प्रचलन मानवता की सुख-सुविधा के उद्देश्य से हुआ था, वह अपने रूप को इतना अधिक विकृत कर चुका है कि बड़ा ही विक्षोभ होता है। मानव अपने अस्तित्व के वास्तविक उद्देश्य को भूल कर हानिकारक पार्थिव सुखोपभोग की मरीचिका के पीछे इतने भयंकर उन्माद के साथ भटक रहा है कि वस्तु-स्थिति में सुधार करना साधारण परिश्रमकी बात नहीं है।"

नवनीत उठा। हाथ जोड़कर बोला––'गुरुदेव, आपका आशीर्वाद प्राप्त करके संसार का कठिन से कठिन कार्य भी सम्पन्न किया जा सकता है। आप इस कार्य के लिये आरम्भ में मुझे भेजने की अनुकम्पा करें।'

गुरुदेव कुछ देर सोचते रहे। फिर बोले--"अच्छी बात है। तुम्हारा एकाकी जाना ठीक न होगा। साथ में हेमंत को भी लेते जाओ। वह तुम्हारी पूरी सहायता करेगा। ... किंतु एक बात का ध्यान रखना। वह स्वभाव का बहुत ही सरल है। कहीं वहाँ के प्रपंच–प्रवीण व्यक्तियों के जाल में न फँस जाय!"

हेमंत इस बात से गौरव का अनुभव कर रहा था कि इस महत्कार्य के लिये उसे भी चुना गया। नवनीत के समान तीक्ष्णबुद्धि विद्वान् का सहयोगी बनकर कोई भी दूसरा आश्रमवासी गर्व का अनुभव कर सकता था।

× × ×

गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त करके जब नवनीत हेमंत को साथ लेकर विदा ग्रहण करने लगा, उस समय उसे मालूम हुआ कि उसने कुछ वर्षोंतक का यह जो धर्म-प्रचार का व्रत ग्रहण किया है, वह कितना कठिन है। शेफालिका के अश्रु-सजल नेत्रोंको देखकर और यह सोच कर कि अब उसकी सुमधुर गीत-ध्वनियों से वह अपने प्राणों को वर्षों तक रस-विभोर नहीं कर पायेगा, उसका हृदय हाहाकार कर उठा।

शेफालिका के नवनीत-कोमल करों को अपने हाथ में लेते हुए बोला--'शेफालिके, तुम्हारी स्मृति उस नये कार्य-क्षेत्र में सदैव सजग रहेगी।'

शेफालिका के मुख-चंद्र की ज्योत्स्ना विषाद के वादलों से अवरित थी। बहुत कुछ बोलना चाहती थी, बताना चाहती थी कि नवनीत ही उसके जीवन की साधना का केन्द्र-बिन्दु है, उसको माध्यम बना कर वह अपनी मंजिल तक पहुँचने के स्वप्न वर्षों से देखती आ रही है, किंतु बोल न पायी। इतना ही कहा—'पत्र लिखना न भूलना। मैं प्रति सप्ताह पास के गाँव के डाकखाने जाया करूँगी, तुम्हारा पत्र पाने को।'

२

नगर की कोलाहलमय पण्यवीथी।

नवनीत क्षुधा से ग्रस्त था। कई दिनों से समुचित खाद्य-सामग्री उपलब्ध नहीं हो पायी थी। हेमंत की भी यही अवस्था थो।

'क्यों भाई, यहां किसी विद्वान् का घर पास में है?' हेमंत ने एक पथ-चारी से प्रश्न किया।

जिससे प्रश्न किया गया था, वह सनातन-धर्म-प्रचारिणी सभा का संयोजक था। इन दोनों की ओर देखता हुआ बोला—'यहाँ विद्वानों की कमी नहीं है। एक से एक विद्वान् हैं। आपको क्या किसी विशिष्ट विद्वान् से मिलना है? कुछ शंकाओं का समाधान चाहते हैं क्या?"

"सब प्रकार की शंकाओं से हमें गुरुदेव ने मुक्त कर दिया है। हमलोग महीतल पर निःशंक विचरण करनेवाले प्राणी हैं। शंका-समाधानार्थ नहीं, रात्रि-यापनार्थ हमें स्थान की आवश्यकता है।"

उन दोनों को सिर से पैर तक ध्यानपूर्वक देखता हुआ वह व्यक्ति बोला–'आपलोग क्या यहाँ पहले पहल आये हैं?"

"जी हाँ। हम दूरवर्त्ती हिमगिरि पर स्थित आश्रम के निवासी हैं और गुरु की आज्ञा से आपलोगों के नगर में आये हैं।"

"बड़ी प्रसन्नता की बात है। वेशभूषा से और वार्तालाप की शैली से आप लोग संस्कृत के विद्वान् मालूम होते हैं। चलिये, मेरे ही घर पर निवास कीजिये। उसीको पवित्र कीजिये।"

दोनों को साथ लेकर वह अपने घर की ओर चल पड़ा।

"आपलोगों का वर्ण क्या है?"

"हम दोनों ही ब्राह्मण-धर्म का पालन करते हैं।"

'बड़ी ही प्रसन्नता की बात है। मैं भी ब्राह्मण हूँ। मेरा घर आपलोगों के चरण-स्पर्श से पवित्र हो जायगा।'

उसकी मीठी और नम्रतापूर्ण बातों से दोनों ही मुग्ध थे। घर पहुँचकर उस व्यक्ति ने अपने मुनीम से उनका परिचय कराया। और रहने की सुन्दर व्यवस्था कर दी।

दोनों अतिथियों ने सायंकालिक स्नानादिक के उपरांत संध्या की। फिर गृहस्वामी से बातें होने लगीं।

बातचीत के सिलसिले में हेमंत बोला––"आपकी कन्या बहुत ही लावण्यवती है। क्या वह नृत्य-गीतादिक में भी निपुण है?"

सुनते ही उस व्यक्ति का मुख रक्ताक्त हो आया। प्रश्नकर्त्ता की ओर क्रोधभरी दृष्टि से देखने लगा।

हेमंत ने सोचा, इस व्यक्ति ने अपमान का अनुभव किया है। और अपमान के अनुभव की बात भी है। एक सुशिक्षित, सुसंस्कृत सनातन-धर्मावलंबी

परिवार की कन्या कला-विहीन हो, यह कैसे संभव हो सकता है ! मैंने जिज्ञासा प्रकट करके अपराध किया है।

बोला--'मेरा अपराध क्षमा कीजिये। सुनने में आया था कि वर्त्तमान भारत में संस्कृति का बड़ा अधःपात हो गया है। इसीलिये यह प्रश्न पूछा था। क्षमा कीजियेगा।"

"नहीं, नहीं, क्षमा की इसमें कौन-सी बात है! आपलोग दूर देश से आये हैं; प्रत्येक स्थान की संस्कृति समान नहीं होती।"

कुछ देर शांति छायी रही। इस बार विद्वत्प्रवर नवनीत ने शांति भंग करते हुए कहा--'आपकी कन्या बड़ी ही व्यवहारकुशल भी है। जो भी इसका वरण करेगा, धन्य हो जायगा। जिस गृह में भी यह जायगी, वहाँ का वातावरण सुरभित हो उठेगा। यह बुद्धिमती है अतः आप स्वयंवर-प्रथा से ही इसका परिणय करें तो अधिक युक्तियुक्त होगा।'

महान् सनातनधर्मी पण्डित लेखराजजी की सहनशीलता की भी एक सीमा थी। क्रोधित होते हुए उन्होंने कहा--"आपलोगों के भोजन का समय हो गया है। महाराजजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैं तो साथ नहीं दे सकूँगा। क्योंकि मुझे सभा की गोष्ठी में आवश्यक कार्य से जाना है। आप दोनों भोजन करके विश्राम कीजिये।"

लेखराज की इच्छा थी, उन्हें अपने साथ ले जाने की। किंतु उनके विचित्र प्रश्नों से वह क्रोधित हो उठा था और नहीं चाहता था कि गोष्ठी में वे ऐसा कोई दूसरा प्रश्न कर दें !

× × ×

हेमंत और नवनीत एक दूसरे की ओर ताकने लगे। नवनीत अधिक समझदार था। बोला--'लगता है, इस कन्या का ब्राह्म-विवाह होने वाला है। तभी स्वयंवर आदि के नाम से यह चिढ़ गया है। स्वाभाविक ही है।'

रसोइया सामने खड़ा था। बोला--'चलिये, भोजन तैयार है।'

दोनों जने रसोई घर की ओर चल पड़े। वहाँ एक प्रौढ़ स्त्री खड़ी थी, घूँघट से मुँह को ढँके हुए। इन्हें देखते ही इनका चरण-स्पर्श किया और फिर कमरे की ओर भाग गयी।

नवनीत यह देखकर बड़ा दुःखी हुआ। उसे लगा, यह महिला उनके किसी अभद्र व्यवहार से असंतुष्ट है; तभी न तो उन्हें अपना मुख दिखाना चाहती है और न उनका मुख देख रही है। हेमंत भी आत्मग्लानि का अनुभव कर रहा था।

किंतु उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर उनका अपराध क्या है!

रसोइये ने खाना परोसते हुए कहा--"आप दोनों किस बिरादरी के हैं?"

"हम दोनों ब्राह्मणत्व में दीक्षित किये गये हैं।"

फिर जिज्ञासावश हेमंत ने पूछा--'और आप?'

"मैं ब्राह्मण हूँ--कान्यकुब्ज।'

दोनों के आश्चर्य की सीमा न रही, पर कुछ बोले नहीं। रसोइये ने फुलके डालते हुए फिर प्रश्न किया--'आप दोनों देखने में बहुत ही सुन्दर हैं। यदि कोई फिल्म-निर्माता देख ले तो पौराणिक फिल्मों की भूमिका के लिये जरूर नौकर रख ले!"

इन दोनों ने फिल्में देखी नहीं थीं, सुना अवश्य था। यह जान कर दोनों को प्रसन्नता हुई कि कला के उस अभूतपूर्व क्षेत्र में उनका स्वागत होगा।

नवनीत ने कहा--'ब्राह्मणप्रवर, हम दोनों में किसी को भी अभी तक फिल्म देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। क्या आपकी कृपा से यह संभव हो सकता है?"

सुनकर रसोइया बहुत प्रसन्न हुआ। बोला--"लेखराजजी स्वयं फिल्मों के वितरक हैं। आप चर्चा छेड़ दीजियेगा। फिल्म ही नहीं, जहां फिल्में बनती हैं, वह स्थान भी देखा जायगा।"

भोजन समाप्त करके दोनों जने बाहर बरामदे में बैठ कर आकाश के तारक-प्रदीपों की सुषमा का अवलोकन कर ही रहे थे कि हेमंत बोला--'गुरुदेव के पास एक पत्र तो लिख ही दिया जाय कि हम दोनों सकुशल पहुँच गये हैं और सत्पुरुषों के सम्पर्क में भी आ गये हैं।'

'एक पत्र शेफालिका को भी लिखना है।' नवनीत बोला।

३

लेखराज इन दोनों की विद्वत्ता से और शास्त्रीय अध्ययन से बहुत ही प्रभावित था।

"चलिये, मैं आप दोनों को आज अपने कुछ घनिष्ठ सहकर्मियों से मिलाता हूँ। सनातन-धर्म-प्रचारिणी सभा के सभापति सेठ कौड़ीमल ठुनठुनिया से तो

आपको अवश्य ही मिलना चाहिये। वे सनातन धर्म के स्तम्भ हैं। लाखों रुपये उन्होंने धर्म-प्रचारार्थ दान कर दिये हैं।"

दोनों प्रसन्नमना मिलने चले।

सेठजी का मकान वहुत विशाल था और उसके समान ही विशालकाय उनका दरवान था। बड़ी-बड़ी मूंछें, लाल-लाल आँखें। लेखराज को देखते ही उठ खड़ा हुआ और बोला—'सेठजी आप लोगों की प्रतीक्षा कर ही रहे हैं। ऊपरवाले डाइंग रूम में चले जाइये।'

ऐसा सुन्दर मकान इन दोनों आश्रमवासियों ने आजतक नहीं देखा था। दोनों सोच रहे थे, जिस व्यक्ति का मकान इतना सुन्दर और विशाल है, उसका हृदय कितना सुन्दर और विशाल नहीं होगा!

और सचमुच सेठजी का हृदय बड़ा ही सुन्दर और विशाल था।

असुन्दर और दुवले-पतले मजदूरों का पेट काट-काटकर वे पैसे बटोरते थे और सुन्दर-सुन्दर कामों में पानी की तरह वहाते थे। लेकिन सुन्दरता की उनकी अपनी परिभाषा और परिभाषाएँ थीं। यहाँ इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि वे सुन्दर-सुन्दर कायावाली सुन्दरियों के पीछे धन वहाना बहुत ही सुन्दर कार्य समझते थे। उनकी सभा के अन्तर्गत जहाँ-तहाँ कई विद्यालय थे और चूंकि देश में नारी-शिक्षा का बड़ा अभाव है और इस अभाव की भावना सेठजी को बहुत ही असुन्दर मालूम होती थी, वह इन महिला-विद्यालयों को चलाने में सुन्दरतापूर्वक आर्थिक सहायता देते थे।

सेठजी का हृदय इस प्रकार जितना सुन्दर था, यदि उतनी ही सुन्दर उनकी काया भी होती तो अपनी परिभाषा के अनुसार और भी बहुत से सुन्दर काम करते। लेकिन उनकी वह विचित्र-सी काया, जिस पर कुरूपता की छाया चिरकाल के लिये पड़ी हुई थी, उन्हें बहुधा यह बताती रहती थी कि सेठ, दुनिया में सब कुछ पैसे से ही नहीं होता।

अभी-अभी हाल में सेठजी ने अपने विद्यालय में निर्मला नामक एक अध्यापिका नियुक्त की थी । वह सौंदर्य की दृष्टि से सारे शहर में अद्वितीय थी।

इन तीनों को आता देख सेठजी उठ खड़े हुए और इन दोनों आश्रम-वासियों की चरण-रज माथे में लगाते हुए कहा––"यह मकान आपके पैरों की रज से पवित्र हो गया । आप पधारे, इससे वढ़कर पुण्य और क्या हो सकता है! यह इस शहर का सौभाग्य है कि आप सरीखे सनातन धर्म के धुरन्धर विद्वान् ब्रह्मचारी यहाँ आये।"

दोनों ब्रह्मचारी उसके विनम्र व्यवहार से मुग्ध थे। चारों ओर दीवारों पर दृष्टि जा रही थी। एक-से-एक धार्मिक चित्र टँगे थे।

"मुझे मालूम हुआ है कि आप दोनों गुरु की आज्ञा से देश में धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने आये हैं। आप मुझ से जो भी सहायता चाहेंगे, दूँगा।"

हेमंत सोचने लगा, कौन कहता है कि देश में धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने की आवश्यकता है। जहाँ ऐसे-ऐसे धर्मनिष्ठ त्यागवीरों का निवास हो, वहाँ और चाहिए क्या? पता नहीं, किन मिथ्या समाचारों ने गुरुदेव को इतना उद्वेलित कर डाला था।

कुछ देर धर्म-चर्चा हुई।

सेठ जी उन दोनों की वाक्शक्ति से अत्यधिक प्रभावित दीख पड़े। लेखराज जी से कहा, 'शहर के समाचार पत्रों में सूचना निकाल दीजिये कि हिमालय से दो महान् विद्वान् पधारे हुए हैं और उनका वालिका-विद्यालय में मंगलवार को प्रवचन होगा।'

अचानक टेलीफोन की घंटी बजी। मालूम हुआ, फोन लेखराज जी के लिये है; बम्बई से है।

'हलो! हलो!'

हेमंत और नवनीत दोनों ही इस अपरिचित शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार कर ही रहे थे कि लेखराज जी का मुखमंडल देखने योग्य हो गया।

'क्यों लेखराज जी, क्या बात है?'

'क्या बताऊँ, बड़ी भयंकर आर्थिक हानि का सामना करना पड़ेगा। राष्ट्र-विनाश-धन-विकास स्टूडियो से खबर आयी है कि 'कोई इधर गया, कोई उधर गया' फिल्म की एक अभिनेत्री घोड़े से गिरकर बुरी तरह घायल हो गयी है।'

सुनकर पहले तो सेठजी कुछ देर चुप रहे। फिर अचानक प्रसन्नता की झलक उनके चेहरे पर दिखायी दी। फिर उदासी की छाया। फिर प्रसन्नता की झलक। छाया-प्रकाश की इस आँख-मिचौनी का रहस्य उन दोनों तापस-कुमारों की समझ में नहीं आया, पर लेखराज जी सेठजी से उस समय से परिचित रहे हैं, जब वे कलकत्ते में फुटपाथ पर बैठकर पुरानी कमीजें बेचा करते थे।

बोले—'मैं जानता हूँ, आप क्या सोच रहे हैं। पर वह अभिनेत्री बनना स्वीकार नहीं करेगी।'

'अजी, कैसे नहीं करेगी! ऐसा सुनहला अवसर कौन पढ़ी-लिखी स्त्री हाथों से जाने देती है, आप उसे नहीं जानते। मैं जानता हूँ।'

× × ×

विशाल सभा। बालिका-विद्यालय को बड़ी अच्छी तरह सजाया गया था। सभापति स्वयं सेठ कौड़ीमल थे। ऐसी सुन्दर सभा का सुन्दरतापूर्वक सभा-

पतित्व करने के लिये यह बड़ा ही सुन्दर चुनाव था। परिणाम यह हुआ कि सभा सुन्दर वस्तुओं से भरी पड़ी थी। प्रवेश-द्वार पर सुन्दर-सुन्दर गाड़ियों से सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने हुए सुन्दर शरीरवाली स्त्रियों का झुंड का झुंड सुन्दरतापूर्वक भीतर चला आ रहा था।

उस सुन्दर सभा में यदि कोई अखरनेवाली बात थी तो यह कि एक अत्यन्त असुन्दर व्यक्ति सभा का सभापतित्व कर रहा था, लेकिन चंद्रमा में जिस प्रकार कलंक शोभा देता है, रूपसी के गौर मुख पर जिस प्रकार तिल, उसी प्रकार सेठ कौड़ीमल भी सभामंच पर सुशोभित हो रहे थे।

आश्चर्यित हेमंत ने नवनीत से पूछा—'बंधु, यह क्या बात है? क्या इस नगरी में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां इतनी अधिक संख्या में हैं?

'बात ऐसी नहीं है। धर्म के प्रति स्त्रियों में अधिक आस्था है।' नवनीत का उत्तर था।

'जिनमें आस्था है, उनमें धर्म-प्रचार करके क्या होगा। जिनमें नहीं है, उन्हें न अधर्म से पराङ्मुख करना है बंधु!'

सभा की कार्यवाही निर्मला के गीत से आरंभ हुई। बहुत ही सुन्दर गीत था, बहुत ही मधुर स्वर में गाया गया था।

लेखराज बार-बार गायिका के मुख की ओर देख रहे थे और सोच रहे थे, सेठ इसे 'कोई इधर गया, कोई उधर गया' फिल्म की अभिनेत्री बनाना चाहता है, यह विचार बुरा नहीं है।

नवनीत का भाषण बहुत ही सुन्दर हुआ। इतना सुन्दर कि सभा की समाप्ति के उपरांत निर्मला ने नवनीत से निवेदन किया—"आपकी वक्तृता ने मेरे हृदय को बहुत बल दिया है। मैं भी ऐसी ही बातें सोचती थी,

लेकिन कोई पथ-प्रदर्शक नहीं था। यदि आप सहमत हों तो मैं भी आपके साथ धर्म-प्रचार के इस महत्कार्य में जुट जाऊँ।"

नवनीत ने हेमंत की ओर देखा और हेमंत ने नवनीत की ओर। प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वस्थ वातावरण में दोनों पले थे, अतः आडम्बरयुक्त संकोच से दोनों अनभिज्ञ थे। स्वीकृति मिल गयी।

उसी दिन नवनीत ने शेफालिका के प्रति लिखे जानेवाले पत्र में यह भी लिखा--'इस महान् आयोजन में हमलोगों का साथ देने को एक दिव्य सुन्दरी भी समद्यत हो गयी है ।'

जहाँ विशुद्ध प्रेम का सम्बन्ध होता है और उसकी आधारभूमि स्वस्थ होती है, वहाँ ईर्ष्या-द्वेष का प्रवेश संभव नहीं।

× × ×

नगर में और नगर के आसपास कई सभाएँ हुईं। नवनीत के प्रशंसकों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी, यह देख-देखकर हेमंत फूला नहीं समा रहा था।

'सेठजी, नवनीत के भाषणों में बड़ी शक्ति होती है। उसका नाम सुनते ही जनता दौड़ी आती है।"

सेठजी के मुखड़े पर कभी तो प्रसन्नता का प्रकाश फैले, कभी उदासी की छाया। छाया-प्रकाश के इस आवागमन से अच्छी तरह परिचित लेखराज

ने कहा—'निर्मला तो सब कुछ भूलकर उनके काम में सहायता दे रही है।'

'यह निर्मला का ही रूप है, जिसके कारण नवनीत की सभा में बैठने को स्थान नहीं मिलता। धर्म-प्रवचन सुनने कौन आता है पंडितजी!'

'लेकिन निर्मला से अब 'कोई इधर गया, कोई उधर गया' फिल्म में काम कराना तो असंभव ही है।'

सेठजी ने थोड़ी देर पंडित लेखराज के चेहरे की ओर देखा। फिर ऐसा भाव प्रकट किया मानों वे दया से द्रवित हो उठे हों। बोले—"आप भी बुद्धू के बुद्धू ही रहे लेखराज जी ! आज रात का भोजन हमारे ही यहाँ रहे।"

किसका भोजन रात को सेठजी के यहाँ रहे, इसका उल्लेख करने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी थी, क्योंकि वह समझते थे, लेखराज के जैसा आदमी जो सफेद पर्दे पर झूठी तसवीरें नचा कर जनता के पैसे ऐंठ सकता है, इस सर्वनाम के तात्पर्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकता। और बात भी यही थी। सनातन-धर्म-सभा के संयोजक महोदय इस सर्वनाम का अर्थ अच्छी तरह समझ गये थे, किंतु वह एकवचन है या वहुवचन, इसी को लेकर ऊहापोह कर रहे थे।

× × ×

'निर्मला, नवनीत के काम के लिये धन की बड़ी आवश्यकता है। सह-कर्मी भूखे रह करके तो काम कर नहीं सकेंगे। फिर चारों ओर प्रचार भी तो होना चाहिए।' सेठजी बोले।

'युग ही प्रचार का है। जिस प्रकार अचार के बिना भोजन में रस का संचार नहीं होता; प्यार के विना संसार नहीं होता और उससे उद्धार नहीं होता, श्रृंगार के विना जिस प्रकार प्रणय-व्यापार नहीं होता, मार के विना जिस तरह हाहाकार नहीं होता, उसी तरह प्रचार के विना आज की दुनिया में कोई सार नहीं होता।"

लेखराज की यह एक विचित्र-सी आदत थी कि जब भी उनके सामने कोई सुन्दर स्त्री उपस्थित होती तो उनके अन्दर इस प्रकार की भाषा में बातें करने की प्रवृत्ति जोरों से जाग उठती थी। वे समझते थे, इससे स्त्रियाँ प्रभावित होती हैं। सेठ का इससे मनोरंजन भी होता था।

'मैं आपलोगों का तात्पर्य नहीं समझ पा रही।' निर्मला बोली।

"क्या धन के विना धर्म-प्रचार का कार्य नहीं हो सकता? मैं इसे मानने को तैयार नहीं। धन और धर्म में सम्बन्ध क्या है?" नवनीत ने कहा।

'सम्बन्ध? सम्बन्ध क्यों नहीं है? केवल अन्ध मनुष्य ही कह सकते हैं कि सम्बन्ध नहीं होता! आप में अनुभव की गंध भी नहीं है?'

'लेखराज जी, आप बड़े ही मतिमंद हैं!' क्रोधपूर्वक लेखराज की ओर ताकते हुए सेठ ने भी अपनी ओर से तुक में तुक भिड़ाने की चेष्टा की।

लेखराज जी सचमुच भावावेश में आकर यह भूल गये थे कि इस अवसर पर तुक मिलाने की अपेक्षा मिठास कहीं अधिक आवश्यक होती है।

सेठजी मुसकराते हुए बोले—'निर्मला, इस महान् कार्य के लिये लाखों की आवश्यकता होगी। मैं तो अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करूँगा ही। लेकिन उतना पर्याप्त न होगा। तुम भी यदि कुछ उपार्जन करो तो काम सरल हो जायगा।"

'मैं उपार्जन करूँ? जब आप सरीखे लखपतियों के उपार्जन से काम नहीं चल रहा तो मुझ निर्धन अध्यापिका के उपार्जन से क्या होगा? विचित्र

बात है यह !' निर्मला बोली। उसे सेठ के प्रस्ताव से कुछ भय-सा लगने लगा था। वह जानती थी कि सेठ का प्रत्येक सुझाव कोई-न-कोई ऐसा अर्थ लिये रहता है, जो उसके लिये तो सांसारिक दृष्टि से लाभप्रद होता है और औरों के लिये अहितकर।

'देखो, तुम्हारे लिये एक स्वर्ण-अवसर सामने है। इसे चूक कर पछताओगी। लेखराज जी तुम्हें 'कोई इधर मरा, कोई उधर मरा' फिल्म की प्रमुख अभिनेत्री बना सकते हैं। फिल्म-निर्माता महोदय उनके अपने आदमी हैं।'

'मरा नहीं, गया कहिये, गया !' विक्षुब्ध होकर लेखराज ने कहा।

थोड़ी देर शांति छायी रही। सेठजी ने सोचा, तीर निशाने पर लगा है। बोले—'यदि इस फिल्म में तुम्हारा प्रचार अच्छी तरह किया गया और तुमने काम भी अच्छा किया तो फिर धन की कमी न रहेगी। एक-एक कंट्राक्ट के एक-एक लाख तो मामूली बात है। वह सारा का सारा धन तुम नवनीत को धर्म-प्रचारार्थ दे दिया करना। इससे बढ़ कर सेवा और क्या कोई कर सकता है !'

'किंतु हमें धन की कोई आवश्यकता नहीं है। धन सब अनर्थों की जड़ है। इसीसे इतना-इतना भ्रष्टाचार फैलता है। और फिर हम ठहरे ब्रह्मचारी। हमारे लिये तो ऐसा कोई विधान ही नहीं है। हम ऐसी कोई प्रणाली नहीं अपनाने के, जिसमें धन की आवश्यकता हो।'

'यह कौन कहता है कि आप धन अपने पास रखें। कोई-न-कोई सहृदय मिल ही जायगा। आज के युग में धन से बहुत बड़े-बड़े काम संभव हो जाते हैं। धन के बिना जो काम आप वर्षों में कीजियेगा, वह धन की सहायता से महीनों में हो जाता है। आखिर आप घबड़ाते क्यों हैं ? बड़ी-से-बड़ी योजना बनाइये और उसे कार्य रूप में परिणत कीजिये। धन की कोई कमी न होगी। उसकी व्यवस्था हमलोगों पर छोड़ दीजिये।'

लेखराजजी की प्रवृत्ति ने फिर बल खाया। बोलने लगे--'धन के बिना जीवन एक रोदन क्रंदन के सिवा और क्या है? धन है तो सघन वन में भी मन लगता है, धन नहीं है तो तन, मन, यौवन सब व्यर्थ है। भौंरों की भन-भन और कोयल का कूजन और वसंत ऋतु का उपवन और पायल की झन-झन तभी अच्छी लगती है जब रुपयों की ठन-ठन सुनायी दे।'

'वाह लेखराज भाई, क्या बात कही है! इसे कहते हैं पांडित्य!'

बहुत देर के तर्क-वितर्क के बाद निर्मला तैयार हो गयी। पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ यदि सुन्दर भी हों और गायिका भी तो अक्सर इस प्रकार के सुझाव तर्क-वितर्क के बाद पसंद आ जाया करते हैं। निर्मला अति शीघ्र कल्पना में बड़े-बड़े पोस्टरों पर अपना चित्र देखने लगी। ... यदि अभिनय अच्छा हुआ तो सारे देश में उसकी ख्याति फैल जायगी। छात्र-गण इतिहास की तारीखें भूल कर उसकी जन्मतिथि को याद करते फिरेंगे। सैकड़ों नवयुवक अपनी पुस्तकों के भीतर उसका चित्र छिपा कर कॉलेज जाया और आया करेंगे। ...... पैसों की तो कमी नहीं रहेगी। उनकी तो वर्षा होगी। ... लेकिन उन्हें रखने की व्यवस्था बड़ी सावधानी के साथ करनी होगी।

और निर्मला का मनरूपी तुरंग छलांगें मारता हुआ जब काफी आगे बढ़ गया तो उसने अपना रूप बदल लिया और भुजंग बन कर उसकी त्याग और धर्म-प्रचार की वृत्तियों को डँसने लगा। निर्मला चौंकी, जैसे उसे सचमुच किसी सर्प ने डँस लिया हो। ......

'यह क्या? तुम डरी क्यों निर्मले!' निर्दोष हेमंत ने प्रश्न किया।

उसके सुन्दर चेहरे पर भावपूर्ण दृष्टि डालती हुई निर्मला बोली--"मैं तैयार हूं। आप लोगों के मिशन के लिये धन की व्यवस्था का यह अच्छा मार्ग है।'

× × ×

'क्यों मंत्री जी, मान लिया न आपने कि सेठ कौड़ीमल ने कच्ची गोलियां नहीं खेली हैं।'

"मैंने मान तो लिया लेकिन आपका या मेरा या धर्म-प्रचारिणी सभा का इससे लाभ क्या हुआ? निर्मला यदि मुख्य अभिनेत्री बनती है अर्थात् हीरोईन बनती है तो लाभ तो केवल उसीका है, या फिर इन दो ब्रह्मचारियों का।"

"लेखराज जी, सेठ कौड़ीमल ने जब जीवन आरम्भ किया था तब उसके पास कौड़ी भी नहीं थी, और आज उसके पास जितनी कौड़ियां हैं उसे गिनते जाइये तो आपकी उमर बीत जायगी गिनते-गिनते!"

'लेखराज को दुनिया में और कोई चस्का नहीं था। न सुन्दरियों से प्रेम था, न आवश्यकता से अधिक धन से ही। पर दीर्घायुष्य के प्रति बड़ी आसक्ति थी। उनकी आलमारी में इस विषय की पुस्तकों का बड़ा अच्छा संकलन था और सच पूछिये तो सनातन धर्म के प्रति उनकी आस्था का एक कारण यह भी था कि पुराणों में अनेक ऐसे-ऐसे व्यक्तियों का वर्णन है जिनकी आयु हजार वर्ष से भी ऊपर थी।

"मान लिया, मान लिया", बात आगे न बढ़े और सेठ सफलता की पिनक में कुछ और अशोभन बात न बक बैठे, इस आशंका से लेखराज ने बात के आगे वहीं पूर्ण विराम लगा दिया।

लेकिन सेठ ने उसके बाद लेखराज को जिस दृष्टि से देखा, उससे उस बेचारे पंडित को ऐसा प्रतीत हुआ मानों अभी पूर्णविराम बहुत दूर है, अभी तो अर्धविराम भी नहीं लगा है और वाक्य आरंभ ही हुआ है——

× × ×

स्क्रीन-टेस्ट के अतिरिक्त और जितने भी प्रकार के टेस्ट फिल्म-क्षेत्र में होने आवश्यक हैं, जब सबों में निर्मला को चमत्कारक सफलता मिली तो निर्देशक महोदय ने, जो अपने नाम के आगे बड़े गर्व के साथ एफ० ए० एफ० का प्रयोग किया करते थे, उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा--"निर्मला, कमाल कर दिखाया तुमने। तुम बहुत जल्द सारे देश में फैल जाओगी।"

निर्मला सुनकर घबड़ायी। उसे और तो दुनिया में किसी प्रकार का भी ज्ञात या अज्ञात भय नहीं सताता था, केवल एक भय उसके मस्तिष्क में वर्षों से चक्कर काटा करता था। और वह था फैल जाने का अर्थात् मोटापे-का। निर्देशक की यह शुभ कामना उसे तनिक भी प्रिय नहीं लगी। यदि इसे वह दूसरे प्रकार से प्रकट करता तो निर्मला की प्रसन्नता द्रौपदी का चीर बन जाती, या भारत की दरिद्रता।

निर्देशक मुसकराया। बोला---"सारे देश में फैलने की बात सुनकर तुम लाज से सिमटी चली जा रही हो। सिमटो। जितना चाहो सिमटो। फैलने का दिन दूर नहीं है और जब फैलोगी तो ऐसा फैलोगी कि शेष सब अभिनेत्रियाँ मुंह ताकती रह जायेंगी।"

"मेरा सिर चकरा रहा है।" निर्मला ने व्याकुल होकर कहा।

"चकराने दो। अभी उसके चकराने की बारी है, कल दुनियाँ के चकराने की बारी आएगी। मैं कहता हूँ बड़े-बड़े लखपतियों के छोकड़े तुम्हारी गलियों के चक्कर काटेंगे—चक्कर!"

निर्मला को फिर बुरा लगा। उसके व्यक्तित्व के तब तक दो भाग हो चुके थे। एक नवनीत और हेमंत को आर्थिक सहायता देकर अपने को कृत-

कृत्य मान रहा था और दूसरा सोच रहा था, किसी बहुत ही सुन्दर स्थान में अपना रहने का बँगला होगा। शुरू में फ्लैट ही सही, और वह भी किराये का ही क्यों न हो, पर होगा समुद्र के तट पर या कहीं और ऐसे स्थान पर जहाँ साधारण आर्थिक स्थितिवाले तो रहने का सपना तक नहीं देख सकते।........और डाइरेक्टर महोदय कह रहे हैं, गलियों में......

'निर्मला, तुम जब प्रसिद्ध हो जाओगी और हर फिल्म-निर्माता की कार तुम्हारे द्वार पर खड़ी दिखायी देगी तब तुम मुझे भूल तो न जाओगी?'

निर्मला मुसकरायी और उस रूपहीन फिल्म -निर्देशक के मुख पर ऐसा दृष्टि-निक्षेप किया, मानों उसे भूलकर वह अपनी अभिनय-कला ही भूल जायगी, यह भी भूल जायगी कि उसका नाम निर्मला है और वह रमणी है और कि वह सुन्दर भी है....!

रूपहीन निर्देशक के उदास मुखमंडल पर प्रसन्नता का प्रकाश फैला। यह व्यक्ति रूप-रहित न होकर यदि रूप-सहित होता तो बहुत ही प्रसिद्ध सितारा बन गया होता। किंतु चेष्टा करके सब बातें बदली जा सकती हैं, उनका विकास या विनाश किया जा सकता है पर कुरूपता एक ऐसी वस्तु है, जहाँ रोने के सिवा और कुछ भी नहीं बन पड़ता। सबसे अधिक दुःख तो इस फिल्म निर्देशक को इसी बात का था कि दर्जनों नये-नये तरुणों और तरुणियों को प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचा कर वह अभागा स्वयं अज्ञात ही बना रहा।

किंतु अभिनेत्रियाँ बड़ी ही कृतज्ञ होती हैं और अपने उपकारक का प्रत्युपकार तन, मन और धन तीनों से करने को तैयार रहती हैं; मात्र समुचित वातावरण तैयार होना चाहिए। धन तो सनातनधर्म के पुनरुद्धार-कार्य में लगाना था, नवनीत और हेमंत के प्रतिदिन वर्धनशील दल की व्यवस्था में व्यय करना था और मन अभी अपना ठौर ठिकाना खोज नहीं पाया था,

इसलिये अंत में अभागा तन ही बच रहा था जिसके द्वारा व्यवस्था हो सकती थी।

× × ×

इस बीच पृथ्वी ने सूर्य के चारों ओर दो परिक्रमाएँ पूरी कर दीं।

सेठ और निर्मला के उत्साह-वर्धक वाक्यों से प्रेरित नवनीत अपने कार्य की बड़ी व्ययसाध्य योजनाएँ बना बैठा था। हेमंत इससे रह-रहकर घबड़ा भी उठता था, लेकिन सेठ और निर्मला की प्रेमप्रवणता और भक्तिभाव की याद करके अपनी घबड़ाहट दूर कर लेता था।

काम जोरों से हो रहा था। लग रहा था, नास्तिकता और जड़वाद की नीवें हिल जायेंगी और देश में एक नया युग आकर रहेगा।

× × ×

उस दिन नवनीत, हेमंत और निर्मला समुद्र-तट पर सांध्य भ्रमण कर रहे थे। सागर की लहरों को चूम-चूम कर सायंकालिक समीर अपने दिवस-कालीन उत्ताप को दूर कर रहा था।

'निर्मले, तुम्हारी अनुपस्थिति से हमलोगों कीं कार्य-शक्ति को बड़ा धक्का लगा है। तुम साथ थीं तो हमारा आधा भार हलका हो गया था।' हेमंत ने स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा।

'किंतु निर्मला हमलोगों से दूर कहाँ है! यहाँ भी वह इसीलिये आयी हुई है कि हमलोगों के कार्य को आगे बढ़ा सके। और तो कोई दूसरा ध्येय उसके सामने है नहीं!" नवनीत बोला।

निर्मला के प्राणों का उत्साह बहुत कुछ शिथिल हो चला था। अध्यापिका निर्मला में और अभिनेत्री निर्मला में उतना ही अंतर था जितना कि फूल और धूल में होता है। कुछ समय पूर्व वह त्याग और तप के जीवन को वरेण्य मानती थी और अब भोग-विलास के अतिरिक्त वह और कुछ सोच ही नहीं पाती थी।

लेकिन कुछ बोलना था, इसलिये बोली--'आप जो कह रहे हैं, सब ठीक है।'

'भारत भूमि भोग के लिये विधाता ने नहीं बनायी है, वह योगभूमि है। यहाँ आज जिस प्रकार की नास्तिकता और धर्महीनता प्रसारित हो रही है, उसे जड़मूल से दूर करके हमें फिर से आध्यात्मिकता की पताका फहरानी है।' निर्दोष हेमंत निर्मला की परिवर्त्तित मनःस्थिति से अपरिचित था।

दोनों को रुपयों की बड़ी आवश्यकता थी। इस बीच सहकर्मियों की संख्या बढ़ गयी थी और कई प्रांतों में उनका काम आरंभ हो गया था। निर्मला से आरम्भ में तो कुछ रुपये प्राप्त हुए और उससे उत्साहित होकर दोनों ने व्यय के और भी कई सात्विक मार्ग ढूंढ़ निकाले। किंतु कुछ समय से न निर्मला के रुपये आ रहे थे और न पत्र ही। विवश होकर दोनों को उसकी महानगरी में आने का कष्ट करना पड़ा था।

'देश को आध्यात्मिकता की आवश्यकता है या नहीं इस पर मैंने इधर कई दिनों तक बहुत माथापच्ची की और मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँची, वह आपके लिये उत्साहवर्धक नहीं होगा।' निर्मला सकुचाती हुई बोली।

निर्मला का तात्पर्य न समझते हुए उन हिमगिरि-निवासियों ने उसकी ओर जिज्ञासाभरी दृष्टि से देखा। वह दृष्टि अपने आप में एक प्रश्न थी। एक प्रश्न, जो त्याग और तप की ओर से था, भोग-विलास के प्रति।

'मानवता का तबतक अभ्युत्थान संभव नहीं, जबतक कि वह इस बात को हृदयंगम नहीं कर लेती कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य आत्मज्ञान है,--सत्य, शिव और सुन्दर की उपासना है।....'

बीच में ही बात काटकर निर्मला बोल उठी---'किंतु यह काम भाषणों से नहीं होगा। इसके लिये देश में कला की भावना का विकास होना चाहिए। संगीत, नृत्य, अभिनय आदि से हृदय का परिष्कार होता है और हृदय का परिष्कार हुए बिना जीवन का वास्तविक उद्देश्य हृदयंगम नहीं किया जा सकता।'

'तो तुम्हारा तात्पर्य क्या है?' हेमंत ने चकित होते हुए पूछा।

'तात्पर्य स्पष्ट है। देश में सुन्दर-सुंदर फिल्मों का निर्माण होना चाहिये। विद्यालयों में नृत्य गीत आदि की शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। देश के उद्धार का यही मार्ग है। आपके भाषण में यदि एक आने का भी टिकट रख दिया जाय तो कोई नहीं आयगा और फिल्में देखने के लिये लोग दस-दस का टिकट भी ब्लैक में खरीदने को तैयार रहते हैं। मैं कहती हूँ, मनुष्य को युग के साथ चलना चाहिए। और युग फिल्मों का है, भाषणों का नहीं।'

'किंतु निर्मले, तुमने तो फिल्म-क्षेत्र में प्रवेश ही इसलिये किया था कि हमारे धर्म-प्रचार -कार्य में आर्थिक सहायता दे सको।......'

निर्मला कुछ देर चुप रही। फिर बोली—'यह सही है, लेकिन अनुभव ने मुझे बता दिया कि आप दोनों का मार्ग गलत है।'

इस प्रकार के उत्तर की और नीरस व्यवहार की दोनों ही ऋषिकुमारों को आशा न थी। महानगरी में वे निर्मला के पास बड़ा ही आशान्वित हृदय लेकर आये थे और दोनों को ही इस बात का गर्व था कि उन्हें निर्मला के समान सहकर्मिणी मिली, जो उनके मंडल की सेवा के निमित्त इतना बड़ा त्याग कर रही है।

'तब अब हम करें क्या?' विवश, विक्षुब्ध नवनीत पूछ उठा।

'फिल्म-क्षेत्र में प्रवेश कीजिये। मेरी प्रायः सभी अच्छे-अच्छे निर्माताओं और निर्देशकों से घनिष्ठता हो गयी है। कोई न कोई काम मिल ही जायगा। धर्म-प्रचार का चक्कर छोड़िये।'

× × ×

'अब क्या किया जाय? हमलोगों पर तो पहले से ही काफी कर्ज हो गया है। अन्यत्र प्रेषित प्रचारकों के पास भी कुछ न कुछ भेजना ही पड़ेगा।' दुःखित नवनीत ने अपने साथी से कहा। जीवन में संभवतः यह प्रथम अवसर था जबकि उसे इस प्रकार की उदासी और नैराश्य का सामना करना पड़ रहा था।

हेमंत कुछ देर सोचता रहा। फिर बोला—"बड़े आश्चर्य की बात है। निर्मला को आखिर हो क्या गया? मैं तो इस बार संदेह कर रहा था कि

हमलोग कहीं निर्मला के धोखे में उसीसे मिलती-जुलती आकृतिवाली किसी दूसरी रमणी से तो बातें नहीं कर रहे हैं !"

नवनीत हँसा। बोला--'इस समय हम लोगों पर जो आर्थिक संकट आ गया है, उसका तो परिहार करना ही पड़ेगा अन्यथा हमलोग कहीं के न रहेंगे। लोग हमें मिथ्याभाषी समझेंगे। यदि निर्मला ने आर्थिक व्यवस्था का वचन नहीं दिया होता तो हम कदापि अपने को इस प्रकार ऋणग्रस्त नहीं करते !'

बहुत देर तक विचार-विमर्श करने के बाद दोनों ने सोचा, पंडित लेखराज के सामने अपनी विपत्ति का बखान किया जाय। शायद वे कोई मार्ग बता सकें।

जब लेखराज के यहां पहुँचे तो मालूम हुआ, वे बीमार हैं और चिकित्सकों ने पूर्ण विश्राम का आदेश दिया है। दीर्घायुष्य के प्रेमी पंड़ित लेखराज इस रुग्णावस्था में कोई उपाय करेंगे, इसकी नवनीत को आशा न थी, किंतु हेमंत के आग्रह के कारण नवनीत ने उनके शयन-कक्ष में प्रवेश किया।

बड़ी नम्रता के साथ स्वागत वचन कहते हुए लेखराजजी बोले--"कहिये, कैसी रही बम्बई की यात्रा ? निर्मला तो आजकल चाँदी काट रही है।"

दु:खित स्वर में नवनीत ने कहा--'वह तो बिल्कुल बदल गयी है । उसी के बल पर हमने काम को इतना आगे बढ़ाकर इतना खर्चीला बना लिया है। इस समय हमारे संगठन पर जो ऋण है यदि उसका भुगतान नहीं किया गया तो सारे परिश्रम पर पानी फिर जायगा और हम कहीं के न रहेंगे।"

'देखिये यह आपके मन का भ्रम है कि आप कहीं के न रहेंगे। कौन ऐसा बड़ा आदमी है जिस पर ऋण का बोझ न हो ? ऋण के बिना कोई बड़ा काम हो ही नहीं सकता । बड़े और छोटे आदमियों में यही अंतर है। छोटे आदमी या तो ऋण लेते हुए घबड़ाते हैं या लेकर वापस कर देते हैं, चाहे

उसके लिये उन्हें भूखों ही क्यों न मरना पड़े। लेकिन बड़े आदमी ऐसी मूर्खता नहीं करते। वे सब प्रकार के ऋण का स्वागत करते हैं और ऋणी बने रहने में ही जीवन की सार्थकता समझते हैं। आपलोग घबड़ायें नहीं। ऋण का बोझ ढोने योग्य बनिये। कायरता का त्याग कीजिये।'

हेमंत से न रहा गया। बोला—"हमलोग इस बोझ को कुछ और बढ़ाने के लिये ही आपके पास आये हैं।"

लेखराजजी मुसकराये। बोले—"मैं समझ गया। सब समझ गया। अब आप लोगों ने मानव-जीवन की कुंजी पा ली है। 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' यही सच्चा सनातन धर्म है।'

हेमंत और नवनीत मौन, विस्मयान्वित उसकी ओर देख रहे थे।

'आपलोग आश्चर्यित क्यों हो रहे हैं? यह आर्ष वाक्य है। यदि आर्ष वाक्य न होता तो घृतं के स्थान पर मद्यं शब्द का प्रयोग होता!'

दोनों विकल होकर वहाँ से विदा ग्रहण करने का उपक्रम कर ही रहे थे कि सेठ ठुनठुनिया ने भीतर प्रवेश किया। दोनों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो सेठ उन्हें देखकर नम्रता की मूर्त्ति बन जाया करता था, आज उसने उनका ब्राह्मणोचित अभिवादन तक नहीं किया।

निर्मला द्वारा सेठ को मालूम हो गया था कि दोनों ऋषिकुमार आर्थिक संकट का सामना कर रहे थे और यही अवसर था जबकि सेठजी अपने श्रेष्ठत्व का स्पष्टतः अनुभव करने में समर्थ हो पाते थे। अन्यथा जीवन के इस कंटकित यात्रा-पथ में प्रायः सर्वत्र ही उन्हें अपनी हीनता का बोध होता रहता था।

'लीजिये, सेठजी आ गये। आप अपनी समस्या इनके सामने रख सकते हैं।' लेखराजजी ने मुसकराते हुए कहा। वह मुसकान अर्थहीन भी थी और अर्थमयी भी।

नवनीत मौन रहा, किंतु सरलहृदय हेमंत ने आशान्वित दृगों से सेठ की ओर देखा और बोला––'श्रेष्ठिप्रवर, आप से हमें भारतभूमि में अपना कार्य आगे बढ़ाने में जो उत्साह और सहायता प्राप्त होती रही है, वह अविस्मरणीय है। इस समय हमारे कार्य की प्रगति के मार्ग में भयंकर आर्थिक बाधा आयी हुई है और यदि उसका समाधान नहीं हो पाया तो कार्य-हानि ही नहीं होगी, हम अपनी समग्र प्रतिष्ठा भी खो बैठेंगे।"

"निर्मला से आप क्यों नहीं मिलते ?" मुसकराते हुए सेठजी ने पंडित लेखराज की ओर देखा।

'वह सेठजी की कृपा से अच्छी तरह सद्धर्म में दीक्षित हो चुकी है।' लेखराज के इस कथन का आशय उनके मित्र महोदय ही हृदयंगम कर सके, वे हिमाचलवासी युवक नहीं।

थोड़ी देर सोचने के बाद सेठ जी बोले––'देखिये आपलोगों की राह गलत है। देश को इस समय धर्म और अध्यात्म की आवश्यकता नहीं है। और जिस वस्तु की देशवासियों को आवश्यकता न हो, उसके लिये रुपये बरबाद करना मेरी दृष्टि में घोर पाप है और सनातन-धर्म-प्रचार-सभा के अध्यक्ष के नाते मैं किसी प्रकार के भी पाप कर्म के लिये तैयार नहीं।"

'यदि देश को धर्म और अध्यात्म की आवश्यकता नहीं तो फिर आवश्यकता किस वस्तु की है ?" झुंझलाकर नवनीत ने प्रश्न किया।

'देश को किस वस्तु की आवश्यकता है, यह आप अभी तक नहीं समझ सके, यह खेद का विषय है। आपको अपने आश्रम से आये हुए इतना समय हो गया। मैं तो समझता था कि आपकी आँखें इतने दिनों में खुल गयी होंगी और आप अच्छी तरह समझ गये होंगे कि देश को क्या चाहिए। मैं अपने मुँह से कुछ नहीं कहना चाहता। कुछ दिन और ठोकरें खाइये। सब समझ में आ जायगा।'

बीच में ही बात काट कर लेखराज बोल उठे––'देखिये, देश को अच्छे चिकित्सकों की आवश्यकता है, अच्छी दवाइयों की आवश्यकता है। लोग बहुत जल्दी बीमार पड़ जाते हैं और अच्छी दवाइयां मिलती नहीं। देश को अच्छे अच्छे अस्पतालों की आवश्यकता है, अच्छी-अच्छी नर्सों की अर्थात् परिचारिकाओं की। आपलोग अपने को शास्त्रज्ञ कहते हैं किंतु शास्त्र के उपदेश आपको तनिक भी स्मरण नहीं।' शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

दोनों को मौन देखकर सेठ का भी उत्साह बढ़ा। बोलने लगा––"पंडितजी बिल्कुल ठीक कहते हैं। पहले काया, फिर माया। पहले काया ठीक हो, तब माया से लड़ा जा सकता है। इसलिये देशवासियीं की काया को ठीक करने का उपाय पहले होना चाहिए। आप लोगों ने इस पर तो विचार किया नहीं और माया से भिड़ने के लिये अखाड़े में उतर गये। आप लोग ज्ञान की छाया भी नहीं छू सके हैं।"

सेठ उन दोनों को हतोत्साह करने के साथ ही साथ लेखराज को यह भी दिखलाना चाहता था कि मात्र वह ही तुक से तुक मिलाकर बातें करने की कला में दक्ष नहीं हैं।

दोनों मौन। कभी दीवार पर टँगे भगवान् कृष्ण के चित्र की ओर देखते, कभी एक दूसरे की ओर।

'काया पहले, फिर आत्मा। काया है, तभी सृष्टि है। इस काया को जो सुख पहुँचाने का प्रबन्ध करता है, वही सच्चा सनातनी है। निर्मला आप दोनों के साथ घोर कष्ट पा रही थी। उसकी इंद्रियाँ कष्ट पा रही थीं, उसका मन कष्ट पा रहा था। अब मेरे बताये रास्ते पर चल कर वह सद्धर्म का पालन कर रही है। नारियों और शिशु को जो यातना दे वह घोर पातकी होता है। इंद्रियाँ नारियाँ हैं और मन है शिशु। इनको हर तरह से सुख पहुँचाने की चेष्टा करना ही सच्चा धर्म है।"

सेठ और भी न जाने क्या-क्या बोलता ! किंतु नवनीत उद्विग्न होकर बीच में ही बोल उठा--"यदि आप की ऐसी मान्यता थी तो आपने आरंभ में हमारा उत्साह क्यों बढ़ाया और लम्बी-लम्बी प्रतिज्ञाएँ और लंबे-लंबे आश्वासन क्यों दिये ? आप लोगों की बातें मान कर हमने आयोजनों को इतना व्ययसाध्य रूप दे डाला है। हम तो अपने कार्य की दूसरी ही प्रणाली अंगीकार करना चाहते थे, जिसमें अर्थ का प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन आप लोगों ने ही इस व्ययसाध्य पद्धति को स्वीकार करने की प्रेरणा दी।

बात काट कर बीच में पंडित लेखराज बोल उठे--'मित्रवर, आप इतना तो जानते ही हैं कि यह संसार क्षणभंगुर है और जब इस संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणिक है, तब प्रतिज्ञाओं और आश्वासनों की क्ष णिकता आप दोनों की समझ में क्यों नहीं आयी ?'

'देखिये, आप धर्म-स्थापना का काम तो भगवान् कृष्ण के लिये छोड़ दीजिये। उनके द्वारा होनेवाले काम को आप स्वयं बीच में कूद कर कर डालना चाहते हैं और सारा श्रेय स्वयं लेना चाहते हैं, यही आपका अपराध है। उन्होंने कुरुक्षेत्र में जो कहा था, वह तो आपको स्मरण होगा ही। जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है तब-तब भगवान् श्रीकृष्ण अवतार ग्रहण करते हैं। देश में धर्म की ग्लानि हो रही है, इसलिये अब वे आयेंगे। आप उनका सिर दर्द मोल ले रहे हैं, यह आपकी गलती है।"

कुछ देर सन्नाटा छाया रहा।

"'देश में इस समय अधर्म को प्रोत्साहन मिलना चाहिये, ताकि भगवान् शीघ्र अवतार ग्रहण करें। हमलोग जो कुछ करते हैं, उसमें यदि आपको या औरों को स्वार्थ की गंध मिलती है तो यह आपलोगों की या औरों की नासिका का दोष है। हम चाहते हैं कि देश में शीघ्र से शीघ्र भगवान् का

अवतार हो और यह तभी संभव है जब पृथ्वी पाप के भार से कराहने लगे।"

'तो क्या अभी कराह नहीं रही है?" हेमंत बोला।

"बिल्कुल नहीं। अपनी कराह को आप पृथ्वी की कराह समझ रहे हैं, यह आपकी दूसरी गलती है। पृथ्वी यदि कराहती तो कबका अवतार हो गया होता और आप जैसे मूर्खों को धर्म-स्थापना के लिये नहीं आना पड़ता।"

सेठ इतना आगे बढ़ जायगा और उन विद्वान् ॠषिकुमारों के लिये इस प्रकार के शब्द का प्रयोग कर बैठेगा, इसकी पंडित लेखराज तक को उम्मीद न थी। वह अच्छी तरह जानता था कि सेठ विपत्ति में फँसे आदमियों को सहायता देकर नहीं, गालियाँ देकर ही पिंड छुड़ाया करता है, लेकिन वह आज भी ऐसी हरकत करेगा, इसकी उसे आशा न थी। बोला—'सेठजी का आशय समझने में आप गलती न कीजियेगा।'

'गलती हम से आरंभ में हो गयी हैं, अब और क्या गलती होगी! काश! हम आपलोगों को आरंभ में ही समझ पाते तो आज यह दिन न देखना पड़ता।'

'अपनी समझ को दोष दीजिये! हमलोगों को नहीं।' सेठ को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हुए लेखराज ने कहा।

× × ×

'हमलोग तो बुरे फँसे बंधु !'

'यदि मालूम होता कि ये लोग इतनी सरलता के साथ अपना वचन भंग कर सकते हैं तो हमलोग अपने कार्य की योजना दूसरे ढंग से बनाते। अब तो भई गति साँप छुछुंदर केरी। उधर प्रचारार्थ गये हुए लोगों की चिट्ठियों पर चिट्ठियाँ आ रही हैं, इधर जिन लोगों से उधार काम लिया गया है, या सामग्रियाँ ली गयी हैं, वे जान आफत में किये हुए हैं !'

डूबते हुए अंशुमाली की ओर दोनों निर्निमेष देख रहे थे। हृदय में विषाद घनीभूत होता चला जा रहा था।

'अंतिम उपाय एक है। हमलोग निर्मला को एक विस्तृत पत्र लिखें और उसे अपने वचन की याद दिलायें।' हेमंत ने सुझाव रखा !

'निर्मला का उस दिन का व्यवहार याद करते हुए उसे पत्र देकर प्रत्युत्तर की आशा रखना दुराशामात्र है। यह किया जा सकता है कि हम एक बार फिर उससे मिलकर काम निकालने की चेष्टा करें।'

उनके पास उतने ही पैसे शेष थे, जितने से बम्बई का टिकट खरीदा जा सकता था। गुरुदेव के श्रीचरणों की याद करके दोनों ब्रह्मचारियों ने टिकट कटाया और वहाँ जा पहुँचे, जहाँ अभिनेत्री निर्मला निवास करती थी।

दरवान के लिये वे नये नहीं थे। प्रणाम करके दोनों का स्वागत किया और यह सोच कर भीतर जाने दिया कि मालकिन इनका दर्शन पाकर उतनी ही प्रसन्न होंगी जितनी पहले हुआ करती थीं। और यही सोचकर उसने इसकी आवश्यकता का अनुभव नहीं किया कि भीतर जाकर पहले पूछ लिया जाय।

अच्छा होता, उस गँवार ने पहले ही जाकर पूछ लिया होता ! वैसी अवस्था में इस कहानी का अंत शायद दूसरे ढंग से होता !

दोनों संकुचित होते हुए भीतर प्रविष्ट हुए।

देखा, एक सोफा पर निर्मला अर्धनग्न पसरी हुई है। बगल में एक आदमी यूरोपीय वेश-भूषा में बैठा हुआ उसके मेचक केशों में अपनी उँगलियाँ उलझाये हुए है और सामने की गोलाकार मेज पर मदिरा के अर्धरिक्त पात्र रखे हुए हैं।

दोनों यह दृश्य देखकर चौंके, सहमे और ठिठके।

पहले तो निर्मला भी चौंकी, सहमी और ठिठकी। लेकिन पलक मारते ही उसका चौंकना, सहमना और ठिठकना क्रोध के रूप में बदल गया। लाल होती हुई बोली--'आप लोग अनुमतिं के विना अंदर कैसे चले आये? देखते नहीं, मैं अभी व्यस्त हूँ!"

सचमुच निर्मला वहुत व्यस्त थी। आय-कर-विभाग ने उसको बरी तरह परेशान कर रखा था और आय-कर-विभाग के सबसे बड़े अधिकारी के सबसे बड़े मित्र को वह प्रसन्न करने में तन्मयतापूर्वक संलग्न थी।

पहले तो नवनीत और हेमंत को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। लगा, जैसे कोई दुःस्वप्न देख रहे हों। निर्मला!......क्या सचमुच यह वही निर्मला है जिसने इतना उत्साह दिखाया था और इतने बड़े-बड़े प्रण किये थे!

'तुमसे हमें ऐसी आशा नहीं थी निर्मले!' सरलमति हेमंत बोल उठा।

'तो क्या आशा थी तुमलोगों को?...... कि मैं संन्यासिनी बनकर तुम दोनों के साथ मारी-मारी फिरूँगी!.... कि मैं लोगों को धर्म और अध्यात्म के झूठे नशे में डालती फिरूँगी!....

'धर्म और अध्यात्म को तुम झूठा नशा कहती हो?' हेमंत के स्वर में आवेश था।

'बिल्कुल झूठा।' निर्मला के वगल में बैठे उस व्यक्ति ने मुंह बिचकाते हुए उत्तर दिया।

'तो फिर सच्चा नशा कौन-सा है, मैं जान सकता हूँ ?' नवनीत ने विक्षुब्ध होकर प्रश्न किया।

'सच्चा नशा कौन-सा है ? सच्चा नशा यह है।" कहते हुए निर्मला ने शराब से भरी प्याली नवनीत की ओर बढ़ाते हुए कहा।

नवनीत ने घृणा और विरक्ति से मुंह फेर लिया।

"सच्चा नशा यही है। प्राचीन काल के ऋषि-मुनि इसीका पान करके ब्रह्मानंद का आस्वादन करते थे। यही है वह सोमरस। तुम भी इसे पीओ। इसके विना बुद्धि नहीं खुल सकती। बुद्धि खुले विना मुक्ति के कपाट नहीं खुल सकते। तुम दोनों को चाहिए, अन्य कार्यों को छोड़ कर देश में मधुपान का प्रचार करते फिरो। इसीमें देश का और मानवता का कल्याण है !··· उमर खैय्याम का नाम सुना है ?"

दोनों मौन। नेत्रों में दु:ख, निराशा, विस्मय और विक्षोभ।

"जो पीता नहीं, उसका जीवन व्यर्थ है। वह नास्तिक है, धर्महीन है। वास्तविक ज्ञान तभी होता है, जब बोतल होठों से लगती है !"

"जैसा कि तुम्हें अभी हो रहा है !" निर्दोष हेमंत से न रहा गया।

"मूर्ख !" क्रोधित स्वर में निर्मला के पार्श्व में स्थित व्यक्ति बोल उठा।

किंतु मदिरा-प्रेरित निर्मला की बुद्धि उसकी जिह्‌वा को स्थिर नहीं होने दे रही थी।

'क्या समझते हो तुम दोनों , कि भगवान् ने यह सृष्टि विना पिये ही रच दी है ? यदि पी न होती तो सृष्टि की कल्पना उनके मन में उत्पन्न ही न हो पाती !'

'लेकिन मालूम होता है, आवश्यकता से कुछ अधिक पी ली थी, तभी तुम्हारे जैसी नारियों की भी सृष्टि कर डाली !'

'बिल्कुल ठीक कहा तुमने। आवश्यकता से अधिक पिये बिना आवश्यकता से अधिक सुंदर नारियों की रचना करना संभव कैसे हो सकता था!' निर्मला के साथवाला व्यक्ति बोल उठा, नशे में।

'तुम मुझे आवश्यकता से अधिक सुंदर समझते हो? क्या जैसी मैं हूँ, उसकी इस दुनिया में आवश्यकता नहीं है?' आवेश में आकर निर्मला पूछ उठी।

साथी ने सोचा था, सुनकर देवी जी प्रसन्न होंगी, किंतु यह तो उलटा ही हो गया। देवीजी झुंझला रही थीं।

झुंझलाहट जब समाप्त हुई तो मधुर स्वर में नवनीत की ओर मधुर-दृष्टि-निक्षेप करती हुई बोली—"आप भी क्या मुझे आवश्यकता से अधिक समझते हैं?"

नवनीत ने सोचा, काम की बात करने का अवसर है। बोला—'निर्मले, तुम जिस उद्देश्य को लेकर इस क्षेत्र में आयी थीं, उसको स्मरण करो।'

निर्मला को सचमुच बीते दिन और बीती बातें स्मरण हो आयीं। और उनकी स्मृति से उसे प्रेरणा भी मिलने लगी कि वह उठे, मेज की दराज से चेकबुक निकाले और हस्ताक्षर करके एक सादा चेक उसके हाथों में थमा दे। और इस कमाई का दूसरा उपयोग ही क्या था!

किंतु निर्मला के भीतर जो एक नई नारी निर्मित हो रही थी या हो चुकी थी, उसने उसके कान उमेठते हुए कहा—'मूर्खे!'

नवनीत ने सोचा, सोच रही है, शायद काम बन जाय!

निर्मल के सामने रखी बोतल के साथी ने सोचा, सोच रही है, इन्हें कैसे उल्लू बनाया जाय!

'निर्मले, हमलोगों का संगठन काफी सबल हो चुका है। बहुसंख्यक विद्वानों का सक्रिय सहयोग प्राप्त हो रहा है। यदि इस समय तुम्हारा आर्थिक सहयोग प्राप्त हो जाता तो काम को आगे बढ़ाने में पर्याप्त सुविधा होती।'

निर्मला का अंतर्द्वंद क्षणिक था। बोली--"मैं तो आपसे पहले ही निवेदन कर चुकी हूँ कि देश को धर्म और अध्यात्म की आवश्यकता नहीं है। और जिस वस्तु की आवश्यकता न हो उसके लिये धन का अपव्यय मेरी दृष्टि में भयंकर अपराध है।"

'किंतु हमने तो तुम्हारे आश्वासन पर काम को काफी आगे बढ़ा डाला है और इस प्रकार ऋणग्रस्त हो रहे हैं कि कुछ न पूछो। मुझे पूर्ण विश्वास था कि धनार्जन के उपरांत भी तुम वही निर्मला बनी रहोगी।'

निर्मला कुछ क्षण मौन रही। फिर बोली--'देखिये, आप लोगों को यह तो मालूम है ही कि संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्त्तनशील है। फिर इतने ज्ञानी होते हुए भी आपने यह मान कैसे लिया कि निर्मला में परिवर्त्तन नहीं होगा?"

कुपित होकर हेमंत ने निर्मला की ओर देखा। बोला--'परिवर्त्तनशीलता का यह अर्थ नहीं है कि पंखड़ियों के स्पर्श से काँटों की चुभन की अनुभूति हो और काँटों के स्पर्श से पंखड़ियों की कोमलता का।'

बोतल के साथी ने सोचा था, ये दोनों विचित्र वेशवाले युवक शीघ्र ही वापस लौट जाने का निर्णय कर लेंगे, लेकिन जब विलम्ब असह्य होने लगा, तो उससे न रहा गया। बोला--'निर्मला, इन कम्बख्तों को दरवाजा क्यों नहीं दिखलाती हो? माँगने वालों को इतनी देर तक यदि पास में खड़ा रहने दोगी तो इस शहर में रह चुकीं तुम!'

'आप सभ्य भाषा का प्रयोग करें तो अधिक अच्छा हो!' हेमंत ने क्रोधित स्वर में कहा। उसे अपने अपमान का दुःख न था किंतु उसकी उपस्थिति

में कोई नवनीत के लिये अपशब्दों का प्रयोग करे यह उसकी सहन-शक्ति के परे था।

'यदि आप दोनों दो मिनट में नौ दो ग्यारह नहीं हो जाते तो ....'

'तो आप क्या कर लेंगे?'

निर्मला बीच में पड़ी। बोली—'ये बहुत बड़े अफसर हैं। इनसे इस प्रकार बातें न कीजिये।'

'देश का दुर्भाग्य है कि इस प्रकार के भोगी-विलासी और पतित व्यक्ति ऊँचे पदों पर आसीन किये जाते हैं!' हेमंत ने घृणापूर्वक कहा।

बोतल का साथी अब न सह सका। एक तो उसके मनोरंजन में बाधा पहुँचायी गयी और फिर इस प्रकार के अपमानजनक उद्‌गार! और वह भी निर्मला के सामने! दूसरे स्थान पर तो वह शायद जूतों की मार खाकर भी चुप रहता, लेकिन निर्मला के सामने कोई उसका अपमान कर दे, यह उसकी सहन-शक्ति की सीमा के परे था!

उठा और टेलीफोनवाले कमरे में जाकर न जाने कोतवाली में क्या सूचना दे दी।

× ☒ ☒

समाचार-पत्रों में छपा था—भारत-विख्यात अभिनेत्री निर्मला के यहाँ चोरी करने की चेष्टा करते हुए 'प्रसिद्ध धम-प्रचारक हेमंत और नवनीत गिरफ्तार कर लिये गये।'

साथ में संपादकजी ने टिप्पणी भी लिख रखी थी, जिसमें बताया गया था कि धर्म और अध्यात्म के नाम पर होनेवाला पाखंड जितनी जल्दी दबाया जाय, उतना ही अच्छा ।

सेठ कौड़ीमल ठुनठुनिया को यह बात समाचार-पत्रों के संवाददाताओं से पहले ही मालूम हो चुकी थी और यह देखकर उसका दूषित हृदय बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था कि निर्मला सचमुच अब निर्मला नहीं रही; वह असली अर्थ में अभिनेत्री बन चुकी है,—जिस अर्थ में वह उसे बनाना चाहता था। उत्साह-वर्धनार्थ उसने फोन पर उसे बधाई भी दी और उसकी इस व्यावहारिक प्रगति पर प्रशंसा भी प्रकट की।

'साँप भी मरा और लाठी भी नहीं टूटी। क्यों पंडित लेखराज जी ! यदि भक्त-मंडली गालियाँ देगी तो निर्मला को देगी।'

लेखराज मौन थे। सोच रहे थे, यहाँ भी सेठ ही जीता ! अपराधिनी हुई निर्मला और पैसे बचे सेठ के ! अन्यथा नवनीत की धर्म-प्रचार-मंडली में कम-से-कम दो-तीन लाख तो फूकने ही पड़ते !

निर्मला को मात्र एक ही भय था। कहीं सेठ उन दोनों की सहायता के लिये न खड़ा हो जाय ! यदि वह जमानत पर उन्हें छुड़ाकर मुकदमा लड़ने को तैयार हो गया तो निर्मला कहीं की न रहेगी !

किंतु वह भय भी जाता रहा। रात्रि के सघन अंधकार में एक मुख्य अभिनेता के साथ बैठकर वह सोच रही थी—भगवान् देते हैं तो छप्पर फाड़ कर देते हैं और धन को इस प्रकार दान कर देने से भगवान् की छप्पर फाड़ने की सारी मिहनत बेकार चली जाती !

नवनीत और हेमंत अपनी प्रसिद्धि के कारण कहीं छूट न जायँ, इस आशंका से सेठ ने उनका पक्ष दुर्बल बनाने के लिये तरह-तरह के षड्यंत्रों का जाल-सा बिछा दिया।

लोग नवनीत और हेमंत को वास्तव में अपराधी समझने लगे।

कुछ दिनों बाद समाचार-पत्रों में फिर छपा––प्रसिद्ध धर्म-प्रचारक हेमंत और नवनीत को चोरी के अपराध में एक-एक साल की सजा हो गयी। चोरी के साथ ही इन पर निर्मला के साथ दुर्व्यवहार करने का भी आरोप था।

दृश्य देखने योग्य था। कल तक जो नवनीत की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे, अब वे ही चुन-चुन कर उन दोनों दुर्भाग्यग्रस्त ब्रह्मचारियों के लिये अपशब्दों का प्रयोग कर रहे थे। कल तक जो भक्त थे, आज वे ही शत्रु बनकर दोनों के विरुद्ध दुष्प्रचार करने में लगे थे। और जिन लोगों ने उधार काम किया था या सामग्रियाँ दी थीं, वे दोनों को अच्छी तरह अपमानित करने के लिये जेल के प्रवेश-द्वार के पास खड़े थे।

लोगों का परिवर्त्तित आचरण देखकर दोनों ही हिमाचलवासी विस्मित थे, दुःखी भी।

'अच्छा हुआ, जल्दी ही इनकी वास्तविकता प्रकाश में आ गयी। नहीं तो न जाने कितने घर बरबाद होते!' उन्हें सुनाकर एक पुराने भक्त ने कहा।

'धर्म-प्रचार की आड़ में अच्छा शिकार खेल रहे थे ये लोग!' कॉलेज के एक लड़के ने पत्थर का एक टुकड़ा फेंकते हुए कहा।

निर्मला के साथ दुर्व्यवहार का जो आरोप था, उसको लेकर लोगों ने अपने मस्तिष्क की कल्पनाशीलता का ऐसा अभद्र परिचय देना आरंभ किया कि सुन कर दोनों ब्रह्मचारियों ने माथा ठोंक लिया।

नवनीत के नेत्रों में अश्रु-बिंदु देख कर हेमंत ने कहा––'सखे, तुम्हीं तो कहा करते थे कि यह मार्ग छुरे की धार के समान है। कौन ऐसा प्रभु-सेवक हुआ है, जिसको जनता द्वारा अपमानित नहीं होना पड़ा हो?'

'मित्र, मैं कष्टों से और अपमान से नहीं घवड़ा रहा। मैं तो मात्र यही सोच रहा हूँ कि यदि शेफालिका के कानों तक यह सब पहुँच गया तो उस पर क्या बीतेगी!'

'और गुरुदेव क्या सोचेंगे? "''''हम स्वयं अपने कार्य के लिये ऐसी पद्धति अंगीकार करना चाहते थे जिसमें अर्थ की आवश्यकता ही नहीं होती, किंतु जिन लोगों के कहने पर हमने इस प्रकार की व्ययसाध्य पद्धति स्वीकार की, आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने ही हमें धोखा दिया!'''' मुझे कम-से-कम निर्मला से तो ऐसी आशा न थी!'

× × ×

चारों ओर प्रसृत हिम-संहति।

निर्निमेष शेफालिका उस ओर देख रही थी जिधर से सप्ताह में एकवार डाकिया आया करता था। पहले तो प्रतिसप्ताह नवनीत का पत्र मिल जाता था, किंतु इधर महीनों से कोई भी समाचार नहीं मिल रहा था।

बड़ी चिंतित थी वह, बड़ी व्यथित।

'क्या सोच रही हो शेफालिके!' गुरुदेव ने उसके विखरे केशों पर हाथ फेरते हुए कहा।

'इधर कई अशकुन हुए हैं। मुझे तरह-तरह के संदेह हो रहे हैं। मैं नहीं जानती, नवनीत इन दिनों पत्र क्यों नहीं भेज रहा।'

गुरुदेव कुछ देर सोचते रहे। फिर बोले--'लगता है, दोनों किसी विपदा में फँस गये हैं।'

शेफालिका के नेत्र आँसुओं से भर गये। बोली--'मेरे साथ किसी को कर दीजिये तो मैं उनका पता लगाने जाऊँ।'

गुरुदेव शेफालिका की अंतर्व्यथा से परिचित थे। जानते थे, वह इन दिनों रात-रात भर कुटीर के गवाक्ष से दूरस्थ दक्षिणी क्षितिज की ओर देखती रहती है। बोले--'मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलूँगा।'

× × ×

मार्ग में शेफालिका के आँसू पोंछते हुए गुरुदेव उसे तरह-तरह से आश्वस्त करते रहे।

कुछ दिनों बाद दोनों उस भव्य अट्टालिका के सामने जा पहुँचे, जहाँ का पता देकर नवनीत पत्र भेजा करता था। सेठजी और पंडित लेखराज के नाम से दोनों परिचित थे।

संयोगवश पंडित लेखराज उस समय सेठजी के साथ ही थे और दोनों व्यक्ति उस पुष्प-वाटिका में गद्देदार कुर्सियों पर बैठकर शरद्कालीन धूप का आनन्द लूट रहे थे।

सबसे पहले सेठजी की दृष्टि प्रवेश-द्वार की ओर गयी। शेफालिका पर दृष्टि पड़ते ही आँखें चौंधिया सी गयीं। सोचा, कहीं दिवा-स्वप्न तो नहीं है,

अतः आँखों को मला और फिर उस ओर दृष्टि डाली। ···· नहीं, सचमुच दिवा-स्वप्न नहीं था। वास्तव में एक अनिंद्यसुंदर अप्सरा वाटिका के द्वार पर खड़ी थी।

'लेखराज, जरा उधर तो देखिये।' भावावेश में आने पर सेठ अक्सर नाम के साथ जी लगाना भूल जाता था।

लेखराज ने सेठ के मुख की अद्‌भुत मुद्रा देखी। चकित होकर उसके कथनानुसार द्वार की ओर दृष्टि की।

'अरे, शकुंतला है यह तो, अपने गुरु कण्व के साथ!'

'या उर्वशी है पुरुरवा के साथ!'

मूर्ख सेठ ने मात्र यह दिखलाना चाहा था कि वह भी प्राचीन गाथाओं से अभिज्ञ है। अब यदि सुननेवाला इस उक्ति पर हँसता है तो हँसा करे!

सेठ अविलम्ब उठ खड़ा हुआ। स्वयं द्वार तक पहुँचा, स्वागतार्थ।

'प्रणाम गुरुदेव, प्रणाम।' और यह कहते हुए साष्टांग लेट गया। चरण-धूलि बारबार माथे पर लगायी और भक्ति-भाव का ऐसा सुंदर अभिनय किया कि स्वयं पंडित लेखराज संशयग्रस्त हो गये कि सेठ सचमुच इस वीत-रागी संन्यासी से कहीं प्रभावित तो नहीं हो गया है!

हिमाचल-निवासी वृद्ध तपस्वी ने उसे प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। ऐसी निष्कपट और प्रशांत मुख-मुद्रा सेठ ने कभी नहीं देखी थी और न ऐसा अमृतवर्षी आशीर्वाद ही उसे जीवन में कभी पहले प्राप्त हुआ था। एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि चरण जोरों से पकड़ ले और तब तक छोड़े ही नहीं जबतक कि जीवन के समस्त पाप-ताप, अबतक का समस्त पुंजीभूत कश्मल उनकी तपस्या के तेज से भस्मसात् न हो जाय, किंतु जीवनव्यापी पापों के संस्कार उस अभागे को अपनी शृंखलाओं से कैसे मुक्त होने देते!

फिर दृष्टि पड़ी शेफालिका पर! वैसी अनवद्य रूप-राशि कहाँ जीवन में पहले दृष्टि-पथ में आयी थी! लग रहा था, जैसे चंद्रिका-स्नात पूर्णिमा स्वयं सामने खड़ी हो!

"पधारिये महाराज!" कह कर सेठ उन दोनों को भीतर लाने लगा।

"नवनीत ने तुम्हारी बहुत प्रशंसा लिखी थी। कहाँ है वह और कैसा है?'

सेठ का ध्यान उस ओर अवतक नहीं गया था। नवनीत और हेमंत के कारावासी होने के उपरांत वह उन्हें एक प्रकार से भूल ही गया था। आख़िर कितनों की याद रखे! उसके चलते एक का घर बरबाद हुआ हो तब न!

पहले तो चौंका, फिर सम्हला। उसे आशा न थी कि नवनीत के वृद्ध गुरुदेव इस प्रकार आ पहुँचेंगे।

अपने को संयत करते हुए बोला—'अच्छा, तो आप नवनीत के गुरुदेव हैं। क्षमा कीजियेगा, मूझे आपके आगमन की सूचना मिली होती तो मैं आपको स्वयं स्टेशन से ले आता। नवनीतजी भी वड़े लापरवाह हैं! इतनी महत्वपूर्ण बात से मुझे परिचित नहीं किया!'

पंडित लेखराज सब सुन रहे थे। झुककर वृद्ध तपस्वी का चरण-स्पर्श किया और अपना नाम बताया।

'अपने पत्रों में नवनीत ने कई बार आपका भी उल्लेख किया है।'

रक्त-पीत-श्वेत पाटल पुष्पों के भार से लदी और मंद समीर के झोंको से झूमती शाखाओं के पास ही गद्देदार कुर्सियों पर चारों बैठ गये और सेठ ने नौकर को आदेश दिया कि उनका सामान भीतर ले जाकर रख दे।

'नवनीत कहाँ है? उसका काम किस प्रकार चल रहा है?' गुरुदेव ने प्रश्न तो कर दिया, किंतु उन्हें यह ज्ञात न था कि वे आहत मृग की अवस्था के विषय में हिंस्र व्याघ्र से प्रश्न कर रहे हैं।

'आप चिंता न करें। दोनों के दोनों मजे में हैं।" सेठ ने निर्लज्जतापूर्वक उत्तर दिया।

लेखराज को पहले तो इस भीषण असत्य पर आश्चर्य हुआ, दुःख भी, किंतु कुछ ही क्षणों के उपरांत वे सेठ का उद्देश्य समझ गये। वे जानते थे, सेठ का कोई भी काम निरुद्देश्य नहीं होता।

"वे कहाँ हैं आजकल?" संगीतवाली मधुरिमा थी शेफालिका के इस निर्दोष प्रश्न में।

"वे दोनों आजकल सरकार के अतिथि हैं।" मरुस्थली के निदाघकालीन मध्याह्नवाला उत्ताप था उत्तर देनेवाले के हृदय में।

शेफालिका यह जानकर बड़ी प्रसन्न हुई कि नवनीत का इतना सम्मान हो रहा है। देश की सरकार जब उसे अपना अतिथि बना रही है तब तो स्पष्ट है कि उसे सफलता पर सफलता, विजय पर विजय प्राप्त होती जा रही है। किंतु उसने इतने दिनों तक पत्र क्यों नहीं लिखा! कहीं अहंकार ने तो उसकी चित्तवृत्तियों को पराभूत नहीं कर डाला है!.... कहीं... नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता! नवनीत वैसा बिल्कुल नहीं है!

गुरुदेव गंभीर थे और सेठ के असुंदर मुख की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहे थे। सेठ को कँपकँपी-सी आ गयी। उसे लगा जैसे उस वृद्ध तपस्वी की दृष्टि उसके हृदय के भीतर प्रविष्ट हो रही है। घबड़ाहट भरे स्वर में बोल उठा--'आप तनिक भी चिंता न करें। महापुरुषों को वहाँ अक्सर जाना पड़ता है।'

सुनकर शेफालिका को पुनः गौरव की अनुभूति हुई। उसका नवनीत अब साधारण व्यक्तियों की श्रेणी में नहीं रहा, महापुरुष माना जाने लगा है! धन्य मानने लगी वह अपने को!

काश ! वह सरलहृदया उस प्रपंची व्यक्ति के द्वयर्थक उद्गारों का वास्तविक आशय समझ पाती !

किंतु ज्ञानवृद्ध वह संन्यासी संशयग्रस्त हो चला था।

हम नवनीत और हेमंत से शीघ्र मिलना चाहते हैं। कहाँ सरकार के अतिथि बने हुए हैं वे ?'

सेठ सकपकाया। पंडित लेखराज ने उसकी सकपकाहट दूर करते हुए कहा—'एक ऐसी नगरी में जहाँ रात और दिन बराबर होते हैं।'

'तात्पर्य ?' तपस्वी के स्वर में तीक्ष्णता थी।

शेफालिका आश्चर्यित थी कि गुरुदेव के स्वर में ऐसी कटुता क्यों आ रही है।

'तात्पर्य समझाना कठिन है। गुड़ खाये बिना गुड़ के स्वाद का पता नहीं चलता। फिर भी इतना समझ लीजिये कि वहाँ लोग दिन में सूर्य के प्रकाश में खटते हैं, मरते हैं, दौड़ते हैं, एक दूसरे की जेब कतरते हैं और रात को बिजली के प्रकाश में अपनी भरी हुई जेबें हलकी करते हैं। ऐसी सुंदर नगरी है वह !'

'और वे विश्राम कब करते हैं ?' शेफालिका ने पूछा।

सेठ ने उस अनिंद्यसुंदर नवयुवती के आनन पर इस प्रकार दृष्टि डाली, मानों नेत्रों की जन्म-जन्मांतर की तृषा आज ही मिटायेगा। बोला—"जब उन्हें नींद की गोलियाँ मिल जाती हैं या जब मौत आ जाती है।"

'विचित्र नगरी है वह तो ! उसे तो अवश्य देखना चाहिए।" निर्दोष तरुणी ने निर्दोर्षितापूर्वक एक निर्दोष बात कह दी।

किंतु दोषों के भंडार उस सेठ को उस उक्ति में और उस जिज्ञासा में

आशा की कुछ ऐसी झलक दिखायी दी कि वह लखराज के कंधे पर हाथ मारता हुआ बोल ही तो उठा--"इन्हें वह विचित्र नगरी अवश्य दिखलानी है।"

× × ×

ट्रेन चली जा रही थी।

शेफालिका प्रसन्न थी कि नवनीत और हेमंत से शीघ्र ही मिलन होगा। किंतु वृद्ध तपस्वी किसी अमंगल की आशंका से उद्विग्न रह-रहकर दूरस्थ क्षितिज की ओर देखने लगते थे।

सेठ और लेखराज अँगरेजी में बातें करने लगे।

'तुम्हारा क्या विचार है? यदि इस सितारे को भी सिनेमा के ही आसमान में चिपका दिया जाय तो कैसा रहे?'

लेखराज को आशा न थी कि सेठ इतनी दूर की सोचेगा। ध्यानपूर्वक उसकी दृष्टि से दृष्टि मिलाते हुए बोला--'इसमें कोई लाभ न होगा। फिर वह आसमान का सितारा ही बनी रहेगी। आपकी पहुँच से परे। वहाँ तक तो कोई राकेट भी नहीं पहुँच पायेगा!"

'आप बुद्धू हैं!'

इस तिरस्कार भरे उद्‌गार से अप्रभावित लेखराज बोलते ही गये--"उसे सिनेमा के आसमान का चाँद बनाइये, चाँद। वहाँतक आपका रॉकेट पहुँच जायगा। यदि कहीं सितारा बना दिया तो फिर हाथ मलियेगा।"

"अच्छी बात है। मान ली गयी आपकी बात। इसे चाँद ही बनाया जायगा। लेकिन जैसी इसमें चमक-दमक है, सितारा बनने में इसे देर न लगेगी। निर्मला तो इसके पैर की धूल के बराबर भी नहीं है।"

लेखराज ने एक बार फिर शेफालिका की ओर ताका और बोला "लेकिन यह निर्मला जैसी नहीं है। इसे शिकंजे में लाना बहुत कठिन है। लेने के देने पड़ जायँगे। और इस बुड्ढे को भी कम न समझना। यह नवनीत या हेमंत की तरह बुद्धू नहीं है।"

"बस मुझे डर लगता है तो केवल इसीसे। नहीं तो जादू की छड़ी फेरना तो मैं अभी से शुरू कर देता।"

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। लेखराज ने शांति भंग करते हुए कहा:— 'सनातन-धर्म-सभा के पदाधिकारी होकर इस प्रकार की योजनाएँ बनाना हमलोगों को शोभा नहीं देता । लोगों को यदि इसकी भनक मिल गयी तो सभा से हम दोनों उसी प्रकार निकाल बाहर किये जायेंगे जैसे दूध से मक्खी।'

'तो फिर सनातन-धर्म-सभा भी समाप्त ही समझिये। उसको इतने लंबे समय तक जीवित रखनेवाले भी हमीं दोनों हैं। नहीं तो आजकल जैसी हवा चल रही है, कौन ऐसी सभाओं में भाग लेता है!'

'पर कोई जाने चाहे न जाने, सनातन धर्म के इतने बड़े पृष्ठपोषक होते हुए हमें यह काम शोभा नहीं देता।'

सेठ ठहाका मार कर हँसा। लेखराज को धक्का देता हुआ बोला— 'आपको अभी कई वर्षों तक मुझे ही रास्ता दिखाना पड़ेगा। बड़े नासमझ हैं आप!'

'यह कैसे भाई!'

'इतना समय नहीं है कि मैं आपको सब बातें विस्तारपूर्वक समझा सकूँ। लेकिन काम चलाने के लिये इस समय इतना ही समझ लीजिये कि असली सनातन धर्म यही है। नारी की ओर नर का आकर्षित होना सृष्टि का सनातन नियम है और उसकी प्राप्ति की चेष्टा करना पुरुष का धर्म सनातन काल से चला आ रहा है। उसके रूप बदलते हैं, पद्धतियाँ बदलती रहती हैं, आधार वही रहता है। और फिर हम तो सौंदर्य की पूजा करने चले हैं। इसमें पाप कहाँ?'

'सेठ! यह सौंदर्य की पूजा नहीं, यह वासना की पूजा है। मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। मैं इस षड्यंत्र में साथ नहीं देने का!'

सेठ फिर हँसा। बड़ी ही अर्थमयी शैली में बोला—'तो फिर घाटे में तुम्हीं रहोगे।'

× × ×

'नवनीत और हेमंत कहाँ हैं? मैं सबसे पहले उनसे मिलना चाहता हूँ।' वृद्ध तपस्वी ने व्याकुल होकर कहा।

'आप घबड़ायें नहीं। आपको शीघ्र ही उसी स्थान पर पहुँचाने की पूरी व्यवस्था की जा रही है।' सेठ ने मुसकराते हुए कहा।

"और मैं?" शेफालिका के स्वर में व्यग्रता थी।

"आपके लिये दूसरी व्यवस्था की जा रही है।"

निर्मला के सुंदर , लुभावने निवास-स्थान को देखकर शेफालिका चकित थी। इस प्रकार के सजे हुए मनोहर कमरों की कल्पना भी वह नहीं कर पायी थी। रात को सोने के लिये इस प्रकार का मुलायम बिस्तर मिला था कि काठ की बनी चौकी पर रात्रियापन करनेवाली वह आश्रमवासिनी उषा के आगमन तक सोचती ही रह गयी, सो नहीं पायी।

वह प्रसन्न थी कि नवनीत को इस प्रकार के सम्पन्न और सहृदय सहयोगी प्राप्त हुए हैं। किंतु वृद्ध तपस्वी की चिंता बढ़ती चली जा रही थी।

'मेरे पास समय कम है। मैं हिमाचल के शांत वन-प्रदेश को छोड़कर यहाँ राजसी ठाट से काल-यापन करने नहीं आया हूँ। मुझे अविलम्ब नवनीत और हेमंत के पास ले चलो।'

सेठ ने वृद्ध को निर्मला और लेखराज के जिम्मे लगाया और स्वयं आवश्यक कार्य से बाहर निकल गया।

सेठ कोई षड्यंत्र करने जा रहा है, इसका आभास निर्मला को भी मिल गया था, किंतु सेठका उसपर ऋणथा, उसीकी कृपा से वह इस क्षेत्र में आ पायी थी। और भी अन्य कारणों से वह कृतज्ञता के भार से इस प्रकार दबी हुई थी कि विरोध की बात सोचना भी उसे अपराध मालूम होता था !

लेकिन लेखराज की अंतरात्मा में क्रांति मची हुई थी! .... धिक्कार है इस जीवन को! धिक्कार है इस प्रकार के धनार्जन को! जीवन में तरह-तरह के अन्याय किये, तरह-तरह के पाप किये, लेकिन इस प्रकार का दुराचरण! लेखराज सेठ को जानता था, उसकी नस-नस से परिचित था, लेकिन वह इतना नीचे गिरकर स्वार्थ-साधन की योजना बनायेगा और फिर उसको कार्यान्वित करने के लिये इतनी तत्परता से काम लेगा, इसका उसे विश्वास नहीं था। .... सोचा, शायद निर्मला से ही कुछ सहायता मिले। वैसे आशा कम थी।

'निर्मला, शेफालिका के विषय में तुम्हारी क्या धारणा है?'

निर्मला न प्रश्न समझ पायी, न प्रश्नकर्त्ता का आशय। बोली--'मेरी उसके सम्बन्ध में क्या धारणा हो सकती है!'

स्वर में झुंझलाहट थी, अतः लेखराज का उत्साह कुछ बढ़ा। कुछ क्षण रुक कर बोले--'यदि वह भी फिल्मों में काम करे तो कैसा रहे?'

'जंगल की रहनेवाली यह छौंकड़ी फिल्म में खाक काम कर सकेगी?'

'यदि कोई जंगली फिल्म बनाया जाय तब?'

ईर्ष्या की अग्नि निर्मला के हृदय में प्रज्वलित हो उठी थी। बोली--'तब देखने के लिये भी जंगलियों को ही लाना पड़ेगा।'

कहने को तो वह यह कह गयी, लेकिन परिस्थिति की विषमता अब समझ में आने लगी थी!.... शेफालिका अभिनय-कला में कैसी रहेगी, यह कहना तो कठिन था, किंतु जहाँ तक नारी-सौंदर्य का प्रश्न था, निर्मला और अन्य प्रसिद्ध अभिनेत्रियाँ उसके पैरों की धूल के बराबर भी न थीं! आशंका से निर्मला सचमुच काँप उठी!.... कहीं सेठ अपने प्रयास में सफल हो गया और वह पर्दे पर आ गयी तो निर्मला के स्वार्थ को अवश्य धक्का लगेगा!....

लेखराज निर्मला के चेहरे पर मँड़रानेवाली छाया का अध्ययन करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि उससे अवश्य सहायता प्राप्त होगी। विलम्ब घातक था।.... कहीं इसी बीच सेठ ने अपना चक्र चला दिया तो!

'निर्मले! नवनीत और हेमंत जेल में हैं, इसका तुम्हें दुःख है?"

"बहुत दुःख है। लेकिन करूँ क्या! लाचार थी।'

'यदि यह बूढ़ा संन्यासी भी जेल चला गया तो तुम्हे दुःख नहीं होगा?' निर्मला जैसे आकाशसे गिर पड़ी हो! स्वर में अपार विस्मय भरकर पूछा--'यह आप क्या कह रहे हैं? इस बूढ़े बाबा को जेल भेजने की बात कौन सोच रहा है? और इससे किसीका लाभ?'

'निर्मले, समय कम है। सेठ ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये एक जाल रचा है। यदि उसमें वह सफल हो गया तो हम और तुम दोनों महान् पाप के भागी होंगे। इन दोनों को आज ही, हो सके तो अभी ही, अपनी कार पर बिठाकर ऋषिकेश की ओर रवाना कर दो। वहाँ से ये अपने आश्रम को चले जायँगे। इनका यहाँ रहना......'

बात काटकर निर्मला बोली--'मैं समझ गयी। सब समझ गयी। लेकिन नवनीत और हेमंत से मिले बिना ये लोग वापस कभी नहीं जाने के! और इन्हें यह बताना बड़ी लज्जा की बात होगी कि नवनीत और हेमंत जेल में हैं और जेल की हवा खिलानेवाली मैं हूँ।'

'उससे बड़ी लज्जा की बात यह होगी कि यह वृद्ध तपस्वी विपत्ति में फँस जाय!'

निर्मला कुछ क्षण सोचती रही। सेठ को अप्रसन्न करने का साहस उसमें न था। किंतु शेफालिका का फिल्मी जगत् में प्रवेश हो, इससे भी उसे घृणा थी। बोली--'लेकिन आज और कल तो जेल में किसी कैदी से मुलाकात हो नहीं सकती। शुक्रवार तक इन्हें प्रतीक्षा करनी ही होगी।"

"तुम्हारे लिये कुछ भी असंभव नहीं है निर्मल! तुम यदि जेल के अधिकारियों को फोन कर दो तो काम बन जायगा।"

कुछ देर बाद एक कार उस दिशा की ओर जाती दिखायी दी, जिधर जेलघर था।

'आप दोनों यदि मुझे क्षमा करें तो मैं अनुरोध करूँगा कि नवनीत और हेमंत से मिलकर आप सीधे इसी गाड़ी से उत्तर की ओर प्रस्थान कर जायँ।'

'ऐसा क्यों?' शेफालिका के स्वर में व्यग्रता थी।

वृद्ध तपस्वी की ओर देखते हुए पंडित लेखराज ने कहा--"आपके विरुद्ध

एक षड्यंत्र रचा जा रहा है और उसका उद्देश्य है आप पर कई प्रकार के झूठे आरोप लगाकर आपको गिरफ्तार करा लेना।'

वृद्ध को विस्मय नहीं हुआ। शांतचित्त वे सुनते रहे।

'लड़की भगाकर उसे बेचने की कोशिश करने का लज्जाजनक अपराध आप पर आरोपित होगा।'

शेफालिका को लगा, जैसे आसमान फट पड़ेगा। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"और वह लड़की कौन है?" निर्दोष वन-कन्या ने प्रश्न किया।

'तुम।'

वृद्ध तपस्वी फिर भी शांत ही रहे।

'इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप दोनों हेमंत और नवनीत से मिलकर आज ही यहां से रवाना हो जायँ।'

"हेमंत और नवनीत भी हमारे साथ चलेंगे।" शेफालिका के स्वर में विकलता थी।

"वे साथ नहीं जा सकते।"

"क्यों? ऐसी कौन-सी व्यस्तता है यहाँ? जो लोग गुरुदेव को विपत्ति में डालने की योजना बना सकते हैं, वे क्या नवनीत को फँसाने की योजना नहीं बना सकते?" शेफालिका ने पंडित लेखराज की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि डाली।

'नवनीत और हेमंत पहले ही फँस चुके हैं। वे कई महीनों से जेल में हैं। उनपर चोरी का झूठा आरोप लगाया गया था। यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की गयी थी कि वे दुराचारी हैं, व्यभिचारी हैं।' बोलते-बोलते लेखराज का गला भारी हो गया।

वृद्ध संन्यासी इतने पर भी प्रशांतचित्त थे । जैसे, उन्हें सब कुछ पहले से ही मालूम हो गया हो !

किंतु शेफालिका पर यह अनभ्र वज्रपात था।

'लेकिन वे निर्दोष हैं गुरुदेव ! वे पूर्णतः निर्दोष हैं ! आपने जिस ध्येय की पूर्त्ति के लिये उन्हें भेजा था, उसके लिये वे खून-पसीना एक कर रहे थे। बहुत थोड़े समय में ही उन्होंने कमाल कर दिखाया था ! लोग मुग्ध थे और ऐसा मालूम होने लगा था, जैसे धर्म और अध्यात्म की विजय-पताका फहराने ही वाली है ! दोनों अखंड निष्ठा के साथ काम कर रहे थे। उनकी वक्तृताओं ने जादू का असर दिखाना शुरू कर दिया था !"

गुरुदेव अब भी मौन थे।

"किन्तु उन्हें बड़ा धोखा दिया गया गुरुदेव ! उन्हें बड़ा धोखा दिया गया ! .... वे पूर्णतः निर्दोष हैं ! यदि उन्हें धोखा नहीं दिया गया होता तो भारत-भूमि में आपके स्वागत में लाखों आदमी एकत्र हुए होते। पुष्पों की वर्षा से मार्ग ढंक जाता !"

गुरुदेव ने कुछ भी नहीं कहा। मात्र एक लम्बी साँस छोड़ी ।

गाड़ी जेल के प्रवेश-द्वार के सामने रुकी। निर्मला का आदेश था, इसलिये पहल से ही स्वागत के लिये जेलर महोदय तैयार खड़े थे।

चरण-रज माथे में लगाकर जेलर ने प्रणाम किया और तीनों उसके साथ हो लिये। शेफालिका के कपोल अश्रु-सजल थे, हृदय में व्यथा का दावानल सुलग रहा था।

नवनीत और हेमंत को सूचना मिल चुकी थी। लज्जा और ग्लानि से दोनों गड़े जा रहे थे। स्वप्न में भी आशा न थी कि जीवन में ऐसा भी समय आयगा जब शेफालिका के सम्मुख इस रूप में उपस्थित होना पड़ेगा !

दोनों रोते हुए गुरुदेव के चरणों पर गिर पड़े।

'गुरुदेव ! हम दोनों पूर्णतः निर्दोष हैं।'

दोनों के सिर पर हाथ फेरते हुए वृद्ध तपस्वी ने कहा--'मेरे पुत्रों, मैं जानता हूँ, तुम निर्दोष हो। दोषी मैं हूँ। वस्तुस्थिति से अच्छी तरह परिचित हुए विना ही मैंने तुम्हें धर्म और अध्यात्म के प्रचारार्थ इस देश में भेज दिया। देश की भूमि अनुर्वरा हो गयी है। और वह उर्वरा हो सकती है महाक्रांति का हल चलाने से। जब तक उस पर अच्छी तरह महाक्रांति का हल नहीं चल जाता, तबतक उसमें धर्म और अध्यात्म के बीज विकीरित करने का कार्य निरर्थक है। वे पनप नहीं सकते। एक वार कार्य आरंभ करने के बाद पीछे लौटने की कायरता को मैं निंदनीय समझता हूँ। तुम दोनों के मुक्त होने तक कुछ दिन और प्रतीक्षा करूँगा। उसके बाद अपनी नई योजना बनेगी और वह योजना धर्म-प्रचार की नहीं होगी। वह होगी क्रांति की--महाक्रांति की ! इस मूर्खतापूर्ण अबौद्धिक, अधार्मिक सामाजिक व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट करना है जिसमें कंचन मनुष्य की समस्त कर्म-प्रचेष्टाओं का उन्माद-पूर्ण केन्द्र वन जाता है !

और फिर पंडित लेखराज की ओर मुह करते हुए उस वृद्ध तपस्वी ने प्रशांत स्वर में कहा--पंडितजी, आप तनिक भी चिंता न करें। हम सेठ के भय से हिमगिरि वापस नहीं लौटने के ! शेफालिका भी मेरे साथ यहीं रहेंगी। सेठ से कह दीजियेगा कि वह जितने भी दाँव जानता हो, चले। एक न छोड़े। सब नवनीत और हेमंत नहीं होते। इसी विजन-कन्या शेफालिका द्वारा देश में महाक्रांति का सूत्रपात कराना है।'

लेखराज को लगा, वह हिमाचल के आश्रम में निवास करनेवाले एक तपस्वी के साथ नहीं, वहाँ की किसी कंदरा से निकलकर आये हुए वृद्ध केसरी के पार्श्व में खड़ा है।

--::००::--

पात्र की खोज

शिशिर का साथ सबों ने छोड़ दिया था; मात्र उसका दुर्भाग्य उसके प्रति ज्यों का त्यों सदय था। सब मित्र मुख मोड़ चुके थे। कइयों ने तो उसके अभिवादन का उत्तर तक देना बंद कर दिया था। किंतु उसकी बेकारी की समस्या मुख नहीं मोड़ रही थी; पूरे प्रेम और संपूर्ण आस्था के साथ उसके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण भाग के साथ चिपटी हुई थी।

विगत चार वर्षों के भीतर शिशिर को अनंत अनुभव हुए। उन अनुभवों से पीड़ा अधिक हुई, ज्ञान-वृद्धि कम। इतना ही पता चला कि दुःख और दरिद्रता के दिनों में परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई साथ नहीं देता। और यह कोई नई बात नहीं थी। पुस्तकों में बहुत पहले ही वह इस सत्य से परिचित हो चुका था।

कई बार इच्छा हुई कि रिक्सा चलाना शुरू कर दे। परिवार की प्रतिष्ठा धूल में अवश्य मिल जायगी, लेकिन पेट तो भरेगा; जाड़ा बिताने के लिये कंवल का प्रबंध तो हो सकेगा। वैसे प्रतिष्ठा तो बड़े सम्पन्न व्यक्तियों की भी जब तब धूल में मिल जाया करती है। परनिंदा का पात्र कौन नहीं होता!

भय था तो केवल अपनी विधवा वहन का, जो उसे वर्षों से माता का स्नेह प्रदान करती आ रही थी। वह बहुत व्यथित होगी। व्यथित ही होकर रह जाए, तब भी एक बात है; यदि उसे पता चल गया कि वह रिक्सा खींचता है तो कहीं अपमान और क्षोभ के अतिरेक के कारण उसकी हृद्गति न बंद हो जाय !

लेकिन जब दरिद्रता पराकाष्ठा को पहुँच गयी, तब एक दिन शहर के दूसरे कोने में जाकर उसने रिक्सा लिया और सड़क के किनारे खड़ा हो गया। कपड़े पहले से ही फट-चुट गये थे और ब्लेड के लिये पैसा न होने के कारण दाढ़ी भी कुछ-कुछ बढ़ गयी थी, इस कारण आने-जानेवालों के इशारों का भय तो नहीं रहा, लेकिन उसे रह-रहकर अपनी शारीरिक शक्ति पर अविश्वास हो उठता था।

बी० ए० में उसने मनोविज्ञान ले रखा था और इस कारण उसे अच्छी तरह ज्ञात था कि विश्वास में बड़ी शक्ति होती है; संशय शारीरिक और मानसिक शक्तियों का बहुत बड़ा शत्रु होता है। यह याद कर-करके वह बार-बार यह विश्वास करने की चेष्टा करता था कि उसके शरीर में बड़ी शक्ति है; वह चाहे तो मुक्के की मार से पत्थर को भी चकनाचूर कर सकता है; जोरों का धक्का दे तो दीवाल भी गिर पड़े। फिर एक रिक्से में दो या तीन व्यक्तियों को लाद कर मील दो मील ले जाने में क्या कठिनाई हो सकती है !

लेकिन प्रयास करके भी वह अभागा इस प्रकार की आत्म-प्रवंचना में सफल नहीं हो पाता था। बार-बार उसका ध्यान अपनी दुबली-पतली काया की ओर जाता और उसे लगता कि रिक्सा खींचने का यह काम स्वीकार करके उसने अपने परिवार के साथ ही नहीं, अपनी काया के साथ भी बहुत बड़ा अन्याय किया है।

लेकिन दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं। उसने संन्यास नहीं ग्रहण किया था और युवावस्था की अपनी इच्छाएँ होती ही हैं। कब तक वह अभागा अनिच्छित अभ्यागत के समान आ धमकनेवाली उन अभिलाषाओं का निरादर करता रहता!.... और उन समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति का एक ही मार्ग था; और वह था पैसे कमाना।

× × ×

अपने को योग्य बनाने के निमित्त उसने क्या नहीं किया! भगवान ने उसे विद्वान बनने के लिये नहीं उत्पन्न किया था, यह बात उसे बहुत पहले ही मालूम हो चुकी थी। जब पिताजी जीवित थे और परिवार का खर्च मजे में चल जाया करता था, उन दिनों उसने परीक्षाओं में असफल होते समय कभी भी उतने दुःख का अनुभव नहीं किया था, जितने दुःख का अनुभव उसे इंटरमीडियट में तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर हुआ था। तब तक पिताजी संसार से विदा ग्रहण कर चुके थे और उसे पता चल गया था कि अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हुए बिना नौकरी मिलना तिनके से नाव खेने के ही समान है।

और इस कारण उसके बाद उसने पढ़ाई में इतनी जी-तोड़ मिहनत की थी कि अध्यापकगण भी हैरान थे! बुद्धि तो भगवान ने जितनी दी थी, उतनी ही थी, लेकिन उसका शत-प्रतिशत उपयोग करने में उस साधन-संबल-हीन विद्यार्थी ने कोई कसर नहीं उठा रखी। रात को बारह बजे तक दीपक

के प्रकाश में पाठ्य पुस्तकें पढ़ते रहना और फिर उषा के आगमन के पूर्व ही फिर उसी काम में जुट जाना। धनियों के दुष्ट लड़के इस कारण उससे बहुत चिढ़ने लगे थे और दो-तीन बार तो वह उनसे मार खाते-खाते भी बचा। यदि उसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कला मालूम होती और वह यह जान गया होता कि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के लिये परिश्रम और ज्ञान-वृद्धि की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी उस कला की है तो संभवतः वह प्रथम श्रेणी में बी० ए० कर लेता।

परीक्षा फल के प्रकाशित होने के उपरांत चार वर्षों तक वह आशा और निराशा के उस विचित्र झूले में झूलता रहा, जिसमें उस देश के नवयुवकों को बहुत बड़ी संख्या में झूलना पड़ता है जहाँ सरकार पूंजीपतियों के प्रेम में फँस जाया करती है। बेचारा शिशिर स्वयं तो समाचार-पत्र खरीदने योग्य नहीं था, इसलिये पड़ोसी सेठ ढक्कनमल गुड़वालिया के यहाँ से थोड़ी देर के लिये मांग लाता था। समाचारों का पृष्ठ तो वह मात्र इसलिये पढ़ता था कि बाद में सेठ को उसका सार समझाना पड़ता था। और एक प्रकार से इस प्रकार सेठ समाचार-पत्र का किराया उससे वसूल लिया करता था। उसका असली उद्देश्य था, 'आवश्यकता है' वाले पृष्ठ का परिशीलन। प्रथम पृष्ठ में मोटे-मोटे अक्षरों में जो सनसनीखेज राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समाचार प्रकाशित होते थे, उनमें उसकी रुचि पूर्णतः क्षीण हो चुकी थी और पत्र हाथ में आते ही वह उस पृष्ठ पर दृष्टि दौड़ाना आरंभ कर देता, जिसमें नाना प्रकार की आवश्यकताएँ विज्ञापन-दातागण विज्ञापित किया करते हैं।

सेठजी का लड़का विलायत से जब लौट आया और सेठ जी की गद्दी पर बैठने लगा तो यह सुविधा भी जाती रही। एक बार तो उसने बड़े ही अपमानजनक व्यंग्य का प्रयोग करते हुए समाचारपत्र उसके हाथों से छीन

लिया था। शिशिर का नम्रतापूर्ण उत्तर था—'भाई मेरे, यूरोप में लोगों के पास पैसा पर्याप्त होता है, इसलिये वहाँ कोई भी मुफ्त में समाचार-पत्र नहीं पढ़ता। हमारे देश में यह बात नहीं चल सकती।"

और सेठ के लड़के ने वर्नर्ड शा द्वारा एक युवती को दिये गये उत्तर का अनुकरण करते हुए कहा– 'जो समाचार-पत्र खरीदने योग्य पैसे भी नहीं कमा सकता, वह समाचारों को क्या खाक समझ सकता हैं !'

० ० ०

निराश, हताश, उदास शिशिर को उसके बाद नित्य चार मील की दूरी तय करनी पड़ती। उसके घर से कोई चार मील की दूरी पर एक राजकीय पुस्तकालय और वाचनालय खुला था जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को बैठ कर पढ़नें की पूरी सुविधा थी।

वहाँ विचित्र-विचित्र लोगों से शिशिर का परिचय हुआ। एक सज्जन तो उसके पीछे बुरी तरह पड़ जाते थे और देश-विदेश की राजनीति को लेकर घंटों उसका दिमाग चाटते रहते। देशदेशांतर के प्रधान-मंत्रियों को गालियाँ देते, उनकी गलतियाँ निकालते और साथ में सही कदम क्या हो सकता था, यह बताने से भी बाज नहीं आते। शिशिर की राजनीति में कोई रुचि नहीं थी, किंतु फिर भी उनकी प्रत्येक बात ध्यानपूर्वक सुनता था और सोचता था, भाग्य तो रूठ ही गया है, कहीं ये जो मित्र मिल गये हैं, ये भी न रूठ जायँ! दूसरे सज्जन अपने को देशभक्त बताते थे और कहते थे कि

वे अवसर की प्रतीक्षा में हैं; जिस दिन उन्हें मन के अनुकूल अवसर मिल जाएगा, वे ऐसा राजनीतिक आंदोलन आरंभ करेंगे कि दुनिया में तहलका मच जाएगा। ऐसा तहलका मचेगा कि लोग उसके बाद राजनीति में प्रवेश करना ही बंद कर देंगे। और भी कई ऐसे लोगों से परिचय हुआ जो मुफ्त-खोरी की कला में दक्षता प्राप्त कर चुके थे और उस भयंकर दरिद्रता की अवस्था में भी बेचारे शिशिर से कुछ-न-कुछ ऐंठ ही लेते थे! पैसे-दो पैसे का पान ही सही।

बेचारा शिशिर वहाँ बैठकर 'आवश्यकता है' वाले स्तम्भ में विज्ञापन देनेवालों के पते अपनी नोटबुक में दर्ज करता; फिर विज्ञापन-दाताओं की विभिन्न आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न प्रकार से आवेदन-पत्र तैयार करता। भाषा शुद्ध हो, सुन्दर हो, प्रभावोत्पादक हो, इसकी पूरी चेष्टा होती।

किंतु इस प्रकार के पचासों आवेदन-पत्र भेज़ने के बाद भी जब सफलता का मुंह देखने को नहीं मिला तो अपनी दयनीय अवस्था पर अश्रुपात करते हुए उसने भिखारी की तरह आवेदन-पत्रों में गिड़गिड़ाना भी शुरू कर दिया। अपने युवकोचित अभिमान को ताक में रखकर यहाँ तक लिखने लगा कि यदि उसे नौकरी नहीं मिली तो वह भूखों मर जायगा, उसकी विधवा बहन के पास तन ढँकने को कपड़ा तक नहीं है, आदि आदि।

फिर भी जब कहीं से कोई भी आशाजनक उत्तर नहीं प्राप्त हुआ तो दुःखी होकर एक दिन राजकीय पुस्तकालय के बाहर अपने उस महान् प्रतिभा-सम्पन्न भावी क्रांति के उद्भावक भावी नेता मित्र को अपनी कारुणिक अवस्था से परिचित करने लगा। और लोगों से आशा नहीं थी, जानता था कि यदि उन्हें उसकी घोर दरिद्रता का आभास मिल गया तो वे उससे बात तक करना बंद कर देंगे। और निराशा और उदासी के दिनों में बातचीत का ही तो एक सहारा होता है। शिशिर इतनी आसानी के साथ

उस नकली सहारे से हाथ नहीं धोना चाहता था। भावी नेता से कम-से-कम ऐसी आशा नहीं थी, और उसने सोचा, संभव है, उसके दुर्भाग्यग्रस्त जीवन द्वारा ही उसे क्रांति की वह प्रेरणा मिल जाय, जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहा है।

अपना पूरा दुखड़ा रोने के बाद बोला--'मेरी इस दुर्दशा से क्या आपको क्रांति की प्रेरणा नहीं मिल रही ?"

भावी नेता हँसा। बोला--'मित्र, ऐसे-ऐसे दुःखों से मुझे प्रेरणा मिलने लगती तो अबतक न जाने कितनी क्रांतियाँ कर चुका होता! मैं तो किसी ऐसे महान् अन्याय और अत्याचार की राह देख रहा हूँ जो मेरे प्राणों में आग लगा दे, मेरी नसों में बिजली दौड़ा दे।'

'लेकिन मेरी अवस्था कम कारुणिक नहीं है! और यदि इससे आपके हृदय में ज्वालामुखी नहीं फूटा तो फिर कभी नहीं फूटने का।'

भावी नेता फिर हँसा। उसकी उस हँसी से शिशिर के हृदय में अपने प्रति जो क्षुद्रता की भावना उत्पन्न हो गयी थी, वह और बढ़ी। व्याकुल होकर बोला--'आप आंदोलन करें या न करें, यह आपकी इच्छा की बात है, लेकिन आप मेरी हालत पर तरस न खाकर हँस रहे हैं, यह अच्छी बात नहीं है।'

भावी नेता फिर हँसा। पहले की अपेक्षा अधिक मस्ती के साथ। बोला--'देखिये मित्रवर, आपने बी० ए० अवश्य कर लिया है, लेकिन व्यावहारिक बुद्धि आपको छू तक नहीं गयी है।'

'मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी प्रकार की भी बुद्धि मुझे छू नहीं गयी है। आप ही बताइये, मैं अब क्या करूँ!' विवश, विक्षुब्ध शिशिर बोला।

भावी नेता महोदय इस बार गंभीर हो गये और शिशिर के मुख की

ओर ध्यानपूर्वक देखने लगे। कुछ देर सोचकर बोले—'तुमने मुझे यह सब पहले क्यों नहीं बताया ?'

शिशिर को आश्चर्य हुआ, आप से इतनी जल्दी वह तुम कैसे बन गया। फिर यह सोचकर अपने चित्त को आश्वस्त कर लिया कि वह अब शिष्य-भाव में आ गया है और नेता महोदय गुरुभाव में।

'तुम्हें आवेदन-पत्र लिखना नहीं आता। जैसा मैं कहता हूँ, लिखो। तुरंत नौकरी मिल जायगी।'

शिशिर को यह सुनकर अपार प्रसन्नता हुई। बोला—'भाई साहब, मैं अच्छी-से-अच्छी शैली में बड़ी शुद्धता और सुन्दरता के साथ आवेदन-पत्र लिख-लिखकर भेजता रहा हूँ। इस काम के लिये मैंने पेट काट-काटकर आवेदन-पत्र-लेखन-कला से सम्बन्धित पुस्तकें भी खरीदी हैं; उनका अनुशीलन भी किया है।'

'यह सब ठीक है। लेकिन महाशय, आपने कभी यह सोचने का भी कष्ट किया है कि जिनके पास आपके आवेदन-पत्र जाते हैं, वे कैसे लोग हैं ? तुमने कभी यह भी सोचने की चेष्टा की है कि जिन विज्ञापनदाताओं को तुम्हारे आवेदन-पत्र मिलते हैं, वे शुद्धाशुद्ध का ज्ञान रखते भी हैं या नहीं ?' शिशिर की ओर उपेक्षापूर्ण दृष्टि डालते हुए भावी नेता बोला।

'यह सब तो मैंने नहीं सोचा, लेकिन इस योग्य तो ये लोग होंगे ही कि शुद्धतापूर्वक और अशुद्धतापूर्वक लिखे आवेदन-पत्रों में भेद कर सकें। मैंने पचासों स्कूलों के सेक्रेटेरियों को भी तो आवेदन-पत्र भेजे हैं।'

'फिर क्या कारण रहा कि तुम्हें इंटरव्यू तक के लिये नहीं बुलाया गया ? तुम्हारे पत्रों की प्राप्ति-सूचना तक नहीं दी गयी !' झुंझलाते हुए भावी नेता ने कहा।

"मेरा भाग्य ! और मैं क्या कहूँ !"

"वड़े सीधे हो तुम शिशिर भाई! यदि तुम्हें भूखों मरना पड़ रहा है तो इसमें मुझे कोई भी आश्चर्य नहीं।"

कुछ देर दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे। इसी बीच दरवान ने आकर टोका। बोला—'आप दोनों इतनी ऊँची आवाज में यहाँ बातें न करें।'

'इधर आओ', कहते हुए भावी नेता शिशिर को बगल के एक पार्क में ले गया। वहाँ खुली घासपर दोनों जने बैठ गये।

'अपनी नोटबुक निकालो और बताओ, किन-किन के पास आवेदन-पत्र भेजना है।'

नोटवुक खोलकर शिशिर ने लम्बी साँस लेते हुए कहा—'क्या बताऊँ, आज तो केवल दो ही विज्ञापन मेरे काम के हैं?'

'यहाँ भी तुम भूल कर रहे हो। तुम्हें अभीतक यह भी नहीं पता चला है कि कौन-सा विज्ञापन काम का होता है, और कौन-सा व्यर्थ! तुम यहाँ ठहरो। मैं स्वयं जाकर विज्ञापन पढ़ता हूँ और पते लिखकर लाता हूँ। तुम्हें मैं नौकरी दिलाकर रहूँगा। देखें, कैसे नहीं मिलती है!'

कोई दस मिनट के बाद वह पते लिखकर वापस लौट आया। उन पतों को देखकर शिशिर को आश्चर्य हुआ। फिर संदेह होने लगा, कहीं उसके साथ मजाक तो नहीं किया जा रहा है!

'तुम घबड़ाओ मत। मैं जैसा कहता हूँ, वैसा करते जाओ।"

"लेकिन इस विज्ञापन में तो एक स्त्री की माँग की गयी है, एक पत्नी की, जो सुन्दर हो, पतली हो, थोड़ी बहुत पढ़ी-लिखी भी हो, घर का काम काज जाने चाहे न जाने, पति के साथ बैठकर उपन्यास पढ़ना जरूर जानती हो और सिनेमा देखने से विशेष प्रेम रखती हो...."

"पूरा विज्ञापन मुझे पढ़कर सुनाने की आवश्यकता नहीं है। मैं समझ गया। यह विज्ञापन तुम्हारे काम का है।"

शिशिर वड़ा आश्चर्यित हुआ। वोला--'मेरे काम का? यह विज्ञापन मेरे काम का कैसे हुआ?'

'मूर्खराज! तुम इन बातों को नहीं समझ सकते। यदि नौकरी चाहते हो तो जैसा मैं वताता हूँ, आँखें मूंद कर करते जाओ।'

शिशिर विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उस अद्भुत व्यक्ति के अद्भुत परामर्श की प्रतीक्षा करने लगा।

'तुम वहुत ही सुन्दर कागज पर एक वहुत ही सुंदर पत्र लिखो। उसमें यह वताओ कि तुम्हारे सौंदर्य ने तुम्हारी जान आफत में डाल रखी है; तुम्हारा घर से निकलना कठिन कर दिया है। तुम पतली हो, केवल तुम्हारे नितम्ब पतले नहीं हैं; कमर का पतलापन देखकर तो उर्दू कवियों की याद हो आती है। सिनेमा देखने से वचपन से ही बहुत प्रेम है और यदि बड़े ही सम्मानित परिवार में जन्म नहीं हुआ होता तो कव की अभिनेत्री हो चुकी होती! घर का काम-काज सीखा अवश्य है, पर जब-जव अभ्यास किया, कोमल हथेलियों में छाले पड़ गये, इसलिये उपन्यास पढ़ने के अतिरिक्त और कुछ नहीं वन पड़ा। इतनी अधिक संख्या में उपन्यास पढ़ डाले हैं कि सारा संसार औपन्यासिक दिखायी देने लगा है।

शिशिर के लिये धैर्य धारण असंभव हो गया। वड़ी कड़वी झुँझलाहट के साथ बोला--"संकट के दिनों में मैं इस प्रकार के मनोविनोद में भाग लेने की योग्यता खो वैठा हूँ। यदि कोई काम की वात हो तो करो, अन्यथा मैं चला।"

भावी नेता ने नेत्रों में अपरिसीम करुणा का भाव भर कर उस वेकार युवक की ओर देखा और कहा--'तुम इतनी जल्दी घवड़ा क्यों गये? मैं जो कह रहा हूँ, वह करो और फिर देखो कि क्या होता है! यदि नौकरी नहीं दिला दी तो मेरा नाम बदल देना।'

'यह पत्र तो मैं भेज दूँ और ऐसा लिखकर भेजूँ कि विज्ञापन-दाता महोदय पढ़ कर मद-विह्वल हो उठें, किंतु मैं पुरुष से स्त्री कैसे बन जाऊँ! और यदि बन भी गया तो मुझे विवाह तो करना नहीं है; मैं नौकरी चाहता हूँ।"

"घबड़ाओ नहीं। तुम पहले पत्र तो तैयार करो और उसका उत्तर तो आने दो। आगे क्या करना है, यह बाद में बताऊँगा" यह कहकर भावी नेता ने फिर विज्ञापनदाताओं के पतों पर दृष्टि डाली।

'वाह, यह भी बहुत सुंदर विज्ञापन है। इसके यहाँ भी आवेदन-पत्र भेज दो।'

"लेकिन इसे तो एक अनुभवी परामर्शदाता की आवश्यकता है,—ऐसे व्यक्ति की जो उसे व्यापारिक कार्यों में परामर्श दे सके, सरकारी अफसरों से जो सम्बन्ध रख सके। मैं...."

"तुम फिर मूर्खता की बातें करने लगे! तुम्हें नौकरी कब की मिल गयी होती, लेकिन कहाँ आवेदन-पत्र भेजना चाहिये और कहाँ नहीं, तुम्हें तो यह भी नहीं मालूम!'

शिशिर इस दीर्घकालीन असफलता और दरिद्रता के कारण अपना आत्म-विश्वास खो बैठा था। सोचा, हो सकता है, यह जो कह रहा है, वह सत्य हो। बोला—'अच्छी बात है। मैं अब अपनी बुद्धि से काम लेना बंद करता हूँ और आँख मूँदकर वही करूँगा जो तुम्हारा आदेश होगा। कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः। यच्छ्रेय स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।"

'इन विज्ञापनों में सबसे निकम्मा विज्ञापन यह स्कूलवाला है, फिर भी तुम चाहो तो एक आवेदन-पत्र यहाँ भी भेज सकते हो, लेकिन लिखना होगा वही जो मैं कहूँगा।

'लेकिन मैं झूठी बातें लिखने को तैयार नहीं।'

भावी कहानीकार झुँझलाया। बोला--'तुम्हें याद नहीं, तुमने अभी क्या कहा था! जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करने को यदि तैयार हो तब तो ठीक है, नहीं तो मैं चला। मुझे संसार के विभिन्न देशों की राजनीतिक वस्तुस्थिति का अध्ययन करना है। मैं उसीके लिये आता हूँ, बेकारों की सहायता के लिये नहीं।'

शिशिर फिर झेंपा। सिर झुकाकर अपना अपराध स्वीकार करते हुए बोला--'गुरुदेव जैसी आज्ञा देंगे, सेवक वैसा ही करेगा।'

० ० ०

और उसके बाद तीनों स्थानों पर आवेदन-पत्र भेज दिये गये।

जिस व्यक्ति को व्यावसायिक परामर्शदाता की आवश्यकता थी, उसे बहुत-सी बातों के साथ यह भी लिखा गया था कि वह एक अनुभवहीन अनुभवी है। उसके अनुभव से केवल औरों का ही लाभ होता रहा है, उसका अपना नहीं। वह लाख चेष्टा करके भी घूस लेना नहीं सीख सका, यद्यपि घूस देने और दिलाने का काम वह पूरी तत्परता के साथ करेगा। दो व्यक्तियों को लड़वाकर तीसरे का सिर फुड़वा देना उसके लिये बायें हाथ का खेल होगा। प्रतिद्वंदी व्यापारी के घर में लड़ाई करवा देना, उसकी पत्नी तक लड़ाई-झगड़े के उपन्यास भिजवा देना उसके लिये साधारण सी बात होगी। रात के सपने में उसने जूट की मिलें चला-चलाकर करोड़ों रुपये

कमाये हैं, लेकिन दिन के सपने में वह अनाथालय में भर्ती होता रहा है। अर्थ के अभाव के कारण वह अपने को अनाथ अनुभव कर रहा है और किसी बहुत अच्छे व्यावसायिक केन्द्र में अपने स्वामी को अपने नाना प्रकार के अनुभवों से लाभान्वित करने की इच्छा प्रबल हो उठी है!

आवेदन-पत्र वैसा ही लिखा गया था, जैसा वह आनेवाले युग का महान् नेता लिखा रहा था, किंतु रह-रहकर उसे आशंका होने लगती थी कि इस प्रकार के विचित्र आवेदन-पत्र को पढ़ कर कोई भी उसे नहीं बुलाएगा। यह व्यर्थ का ही परिश्रम है।.... किंतु डूबते हुए आदमी को तिनके का ही सहारा मिल जाय तो कम नहीं होता। अपनी बुद्धि से काम लेकर देख लिया, अब जरा औरों की बुद्धि से भी तो काम लिया जाय !

तीसरा आवेदन-पत्र भेजा गया था एक विद्यालय के सेक्रेटरी को। उसमें उसकी विद्या-बुद्धि के वर्णन के बाद बताया गया था कि उसे पढ़ाने का नशा-सा है। घर में बैठकर भी वह जब कुछ पढ़ता है तो जोरों की आवाज में, जैसे कक्षा में छात्रों को पढ़ा रहा हो। वह जन्मजात अध्यापक है और सोते-उठते नहाते-धोते, हर समय अध्यापक ही बना रहता है। कोई भी क्षण ऐसा नहीं होता जब वह यह अनुभव करता हो कि वह और कुछ है या हो सकता है। पत्र की समाप्ति के उपरांत पाद-टिप्पणी में लिखा गया था— 'यदि आपका विद्यालय आर्थिक संकट से ग्रस्त हो, तो मैं रातदिन व्यस्त रहकर उस संकट को ध्वस्त कर डालूंगा; ध्वस्त नहीं कर पाया, तो उसे कम-से-कम अस्त-व्यस्त तो अवश्य कर दूंगा। उस पर भी आप त्रस्त ही रहे तो मैं वेतन तक लेना बंद कर दूंगा। आपसे केवल इतनी ही प्रार्थना है कि एकबार अपने विद्यालय में मुझे नियुक्त करके मुझे अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर प्रदान कीजिये। मैं अविवाहित हूँ, लेकिन जिस दिन मेरा विवाह निश्चित हो जायगा, मैं सबसे पहला निमंत्रण-पत्र आपको ही भेजूंगा और.....

इसी प्रकार की कुछ और बेसिरपैर की बातें थीं, जिनका उद्देश्य उस बेचारे की समझ में नहीं आ रहा था, लेकिन फिर भी अपने जन्मांतर के पुण्य-समूह की याद करके इस विचित्र आवेदन-पत्र को भी पत्र-पेटी में डाल दिया।

शिशिर को कोई आशा नहीं थी कि इन विचित्र आवेदन-पत्रों का उत्तर आएगा। वह पहले की तरह नित्य उसी प्रकार उदास, हताश, खिन्न उस दिशा की ओर दिन में कई बार ताका करता, जिधर से डाकिये का आगमन हुआ करता था। शायद ही कोई प्रेमी इतनी आतुरता और संलग्नता के साथ अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा करता होगा और शायद ही किसी फरहाद को किसी शीरी के नकारात्मक उत्तर से इतनी पीड़ा पहुँचती होगी, जितनी डाकिये के नकरात्मक उत्तर से बेचारे शिशिर को! डाकिया भी कभी-कभी तो उस बेचारे की अवस्था को देखकर दया से भर उठता था और उसका दिल एकबारगी ही न टूट जाय, यह सोचकर चिट्ठियों को देखने का बहाना करता हुआ तब कहीं धीरे से उत्तर देता था--'आज तो नहीं है।'

किंतु न तो बीता हुआ कल और न आगामी कल, कोई भी इतना सौभाग्यशाली न था कि शिशिर के हाथ में किसी का भी पत्र पड़ता।

लेकिन उस दिन शिशिर की प्रसन्नता सीमाओं का बंधन तोड़ चली जब डाकिये ने उसके हाथ में प्रेमपूर्वक एक पत्र थमाया और कहा--बाबू, शायद आपका काम बन गया। नौकरी लग जाय तो भूलियेगा मत।

शिशिर को लगा, पूर्वजन्म का कोई पुण्य जागृत हो उठा है। अवश्य किसी आवेदन पत्र का उत्तर होगा। ..... नकारात्मक उत्तर तो हो नहीं सकता, क्योंकि नकारात्मक उत्तर भेजने का कष्ट कौन करता है! लगता है, भगवान ने इस बार सुन लीं। .... उनके घर में देर है, अंधेर नहीं।

कल्पना द्वारा जो सुख उसे प्राप्त हो रहा था, उससे वह अपने को इतनी जल्दी वंचित नहीं करना चाहता था और उस कारण वह लिफाफा जल्दी खुल नहीं रहा था। किंतु आत्म-नियंत्रण की भी एक सीमा होती है और धैर्य ऐसी अवस्था में अधिक देर साथ नहीं देता। उसने लिफाफा खोला और पत्र पढ़ना शुरू किया।

वड़ी निराशा हुई। लेकिन यह सोचकर संतोष कर लिया कि चलो, किसी ने उसे पत्र तो लिखा।

भावी नेता इन दिनों उसके घर पहुँच जाया करते थे और पत्रों के सम्बन्ध में इस प्रकार जिज्ञासा करते थे जैसे उन्हीं के लिये कोई पत्र आनेवाला हो। बेचारा शिशिर उनकी आत्मीयता पर मुग्ध था और सोचता था, दुनिया में भले आदमियों की अभी भी कमी नहीं है।

'क्यों भाई, कोई पत्र मिला?' पीछे से कंधे पर हाथ मारते हुए भावी नेता ने कहा।

कृतज्ञता का भाव चेहरे पर लाकर निराशाभरे स्वर में शिशिर बोला—'एक आया तो है, लेकिन कोई मतलब नहीं रखता।'

'यह तुम कैसे कहते हो? कहाँ है वह पत्र?'

शिशिर ने लाकर उसके हाथ में थमा दिया। पढ़ते समय भावी कहानीकार बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। बोला—"इसे तुम व्यर्थ का पत्र समझते हो! तुम भी बुद्धू के बुद्धू ही रहे!'

'कैसे मित्र!'

'यदि इस आदमी के मन का ठीक तरह से अध्ययन करके तुमने काम किया, तो समझ जाओ, पौ बारह है।'

'सो तो ठीक है। पर मैं युवक से तरुणी कैसे बन जाऊँ।'

क्रोधभरी दृष्टि से भावी नेता ने शिशिर की ओर देखा और उसकी जी भरकर भर्त्सना की। उसे बताया कि यदि वह इस दुनियां में जीवित

रहना चाहता है तो उसे कोई न कोई हथकंडा अपनाना ही पड़ेगा। सच्चाई का मार्ग भूखों मरने का मार्ग है। मिथ्या का आश्रय ग्रहण किये बिना निस्तार नहीं। उसे समझाया कि वह इस आदमी के घर जाय, अपने को उस लड़की का भाई बताये और इस प्रकार कुछ दिनों के लिये तो नाश्ता-पानी का प्रबंध हो ही जायगा।

'झूठ का सहारा लेकर यदि केवल इतनी-सी ही सुविधा प्राप्त होती हो तो मुझे अपनी आत्मा का हनन नहीं करना है।' बड़ी ही उदासी के साथ शिशिर बोला।

"एक लंबी साँस छोड़ते हुए भावी नेता ने कहा—'तुमने यह कैसे समझ लिया कि इतनी-सी ही सुविधा प्राप्त होगी। यह तो आरंभ है। हो सकता है, इस आदमी से कोई बड़ा काम निकल जाय। यह भी संभव है कि यह तुम्हें कहीं अच्छी-सी नौकरी लगा दे।'

'लेकिन लड़की तो हमें दिखानी ही होगी और यदि आधुनिक संस्कृति का व्यक्ति हुआ तो कहीं कोर्टशिप का प्रस्ताव न रख दे।'

'इन सारी कठिनाइयों का समाधान मेरे पास है। तुम तनिक भी न घबड़ाओ।' और यह कहते हुए उसने अपनी जेब से एक बड़ी ही सुन्दर नवयुवती का छायाचित्र निकाला और शिशिर के हाथ में थमाते हुए कहा— 'यह चित्र उस वुद्धू को दिखा देना।'

'लेकिन यह है कौन ?'

'यह मेरी गर्ल-फ्रेंड है। बड़ी बुद्धिमती और व्यावहारिक।'

शिशिर कुछ देर सोचता रहा। फिर बोला—'भाई, यह मेरे बूते की बात नहीं है। मुझ से यह सब नहीं होगा।'

संयोग की वात। जिस व्यक्ति को कभी कोई विज्ञापनदाता उत्तर नहीं भेजता था, उसे कुछ ही दिनों वाद एक साथ दो लिफाफे मिले। आशा के वुझते प्रदीप में फिर किसी ने स्नेह उड़ेल दिया। घर के भीतर घुस कर टूटी हुई चारपाई पर बैठकर पहले भगवान का स्मरण किया और फिर धीरे-धीरे लिफाफा खोलने लगा।

पहले पत्र में लिखा था--'आपका आवेदन-पत्र यह सिद्ध करता है कि आप वहुत ही अच्छे शिक्षक हो सकते हैं, किन्तु कई वातों से यह भी सिद्ध होता है कि आपकी बुद्धि संतुलित नहीं है। किसी पागलखाने के अच्छे डाक्टर का प्रमाण-पत्र यदि आप अपने साथ लेते आयें तो हम अपकी नियुक्ति के प्रश्न पर विचार कर सकते हैं।'

पढ़ कर शिशिर ने माथा ठोंक लिया।

दूसरा लिफाफा खोला। लिखा था--'आपका आवेदन-पत्र पढ़कर हम लोगों को वड़ी प्रसन्नता हुई। शायद ही किसी आवेदक का आवेदन-पत्र इतना मनोरंजक रहा हो। एक वार तो इच्छा हुई कि आपको पुलिस के हवाले कर दिया जाय, लेकिन फिर सोचा गया, आप में प्रतिभा है और आपसे वहुत कुछ काम निकाला जा सकता है। आप सुविधा के अनुसार मिलने चले आइये।'

पुलिस का नाम पढ़ कर शिशिर डरा और सहमा, लेकिन अंतिम वाक्य पढ़ कर उत्साह भी वढ़ा। दोनों ही उत्तर आशा और निराशा की मध्यवर्त्ती रेखाओं के समान थे। दोनों में ही अपमान और मान की भावनाएँ सजग करने की समान क्षमता थी।

भावी नेता से मुलाकात होने पर शिशिर दुखड़ा रोने लगा। उन दिनों इस संसार में उससे वढ़कर कोई दूसरा हितैषी उसे नहीं दिखायी दे रहा था।

नौकरी मिलना न मिलना भाग्य की बात है, लेकिन यह उसी की सूझबूझ का फल था जो उत्तर आने लगे थे।

शिशिर का रहा-सहा आत्मविश्वास भी नष्ट हो चला था। उसने इतने इतने सुन्दर और संतुलित आवेदन-पत्र भेजे थे, किसी का कहीं से कोई भी उत्तर नहीं मिला था। लेकिन विचित्र शैली में लिखे आवेदन-पत्रों के उत्तर आ रहे थे।

'उत्तर तो आ गये। लेकिन काम का कोई भी नहीं है। पागलखाने से डाक्टर का प्रमाण-पत्र मैं कहाँ से लाऊँ! पास में कोई पागलखाना है नहीं और मेरे पास इतने पैसे कहाँ हैं कि मैं गाड़ी का टिकट कटा सकूँ। उसके बाद इंटरव्यू के लिये अलग से टिकट कटाना पड़ेगा।'

थोड़ी देर भावी नेता शिशिर को समझाता रहा। उसे व्यावहारिकता का उपदेश देता रहा। जब देखा कि वह उसके बताये मार्ग पर चलने को बिल्कुल तैयार नहीं तो उसे क्रोध हो आया।

'फिर तुमने ये आवेदन-पत्र भेजे क्यों?'

'भेज तो दिये, लेकिन मुझे सच्चाई और मिहनत की रोटी चाहिए। मैं प्राण दे दूंगा, लेकिन अनैतिकता का सहारा लेने को तैयार नहीं।"

× × ×

शिशिर ने सब ओर से निराश होकर तब यह रिक्सा खींचने का काम आरंभ कर दिया। पहले तो बड़ी कठिनाई हुई। रह-रहकर दुर्घटना का भय भी सताने लगता था। लेकिन कुछ दिनों के बाद अभ्यास हो गया और

फिर तो वह अन्य रिक्सा खींचनेवालों के साथ दौड़ में कभी कभी प्रति-द्वंदिता भी करने लगता।

दाढ़ी काफी बढ़ गयी थी। सिरपर एक गंदा-सा हैट भी पहनना शुरू कर दिया था। सब मिलाकर अब एक दूसरे ही व्यक्तित्व का निर्माण हो चला था। लोगों द्वारा पहचाने जाने का भी भय जाता रहा था।

राजकीय पुस्तकालय तक जाने में, आवेदन-पत्र तैयार करके फिर उन्हें पत्र-पेटी में डालने में और फिर डाकिया की प्रतीक्षा करने के काम में केवल कष्ट ही कष्ट था, एक ऐंसे मरुपथ की यात्रा थी वह, जहाँ मृगमरीचिका के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। लेकिन इस नये काम में जो कष्ट था, वह निरर्थक नहीं जाता था। उसके बदले में उसे भरपेट भोजन मिलता था, जब-तब सिनेमा भी देख लेता था और अपनी बहन के लिये साड़ियाँ भी खरीद सकता था।

बहन को कुछ भी मालूम नहीं हो पाया था। वह यही समझती थी कि उसका भाई कहीं काम पा गया है। उसे शिशिर के गंदे, फटे-चुटे कपड़े और उसकी दाढ़ी देखकर बड़ा कष्ट होता था। कई बार उसने उससे इस सम्बन्ध में कहा भी, लेकिन शिशिर टालता रहता।

उस दिन आँखों में आँसू भरकर उसने शिशिर के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा--'भैया, मेरे लिये तो तुम साड़ियाँ लाते हो और स्वयं इस प्रकार रहते हो जैसे कोयले की खान के मजदूर भी नहीं रहते। यदि तुमने कपड़े नहीं बदले तो मैं आज से भोजन नहीं करूँगी।'

शिशिर घबड़ाया। देखा, एक नयी और कठिन समस्या सामने आ रही है। सोच-विचार कर उत्तर दिया--दीदी, मेरे मालिक को देखो तो और भी हैरान हो ज़ाओगी। वह इससे भी अधिक गंदे कपड़े पहनता है। उसका कहना है, जबतक देश में सब आदमियों को भरपेट

भोजन नहीं मिलने लगता, किसी को भी अच्छी तरह से रहने का अधिकार नहीं है।'

सीधी सादी बहन को इस उत्तर से सांत्वना मिल गयी।

शारीरिक कष्ट बहुत था; गर्मी के दिनों में पसीने से शरीर भींगा रहता, बरसात के दिन शुरू हुए तो पानी से। चढ़नेवालों की बातें सुन-सुनकर वह जब-तब अपना मनोरंजन करने की चेष्टा करता।

तरह-तरह के लोग चढ़ते। धनी भी, निर्धन भी, पढ़े-लिखे भी, गँवार भी। कभी-कभी ऐसा भी होता कि मील-डेढ़ मील का चक्कर लगवाने के बाद उसे घंटे-घंटे भर तक खड़ा रखकर उसके हाथों में केवल पाँच-छह आने पैसे थमाये जाते। अधिक की मांग करने पर डाँट और फटकार मिलती।

× × ×

उस दिन आकाश में तारों की जगमगाहट बड़ी प्यारी लग रही थी। रह-रह कर शिशिर की इच्छा हो उठती थी, उड़कर क्यों नहीं किसी दूरवर्त्ती तारे तक पहुँचा जाय। अचानक उसका एक पुराना साथी दीख पड़ा। कॉलेज में उसके साथ पढ़ता था। बड़ा मूर्ख और आलसी छात्र था, लेकिन था पैसे वाले का लड़का। शिशिर नहीं चाहता था कि वह उसका रिक्सा पकड़े। लेकिन वह तो उसी ओर बढ़ता चला आ रहा था।

और उसके साथ में यह कौन? शिशिर के हृदय-देश में भूचाल-सा आ गया। एक समय था जब वह अपनी सहपाठिनी विमला की स्मृति में

रातदिन विभोर रहा करता था। कल्पना की डोर में इच्छाओं की पतंग को अच्छी तरह से बाँध कर एकांत में उड़ाता रहता। वर्षों तक यह क्रम चला था। उसके बाद दरिद्रता की चक्की में सारी अभिलाषाएँ और सारे सपने इस प्रकार पिसने लगे थे कि उसने अतीत से अपना नाता ही तोड़ लिया।

अर्द्धरात्रि की नीरवता में दीपक के प्रकाश में शाहजहाँ का जीवन-वृत्त याद करता हुआ सोचा करता था, कहीं पूर्वजन्म में उसीने तो शाहजहाँ के रूप में विमला की स्मृति में ताजमहल का निर्माण नहीं कराया था!.... और भी बहुत-सी बातें सोचता था और सोचता-सोचता झपकियाँ लेने लगता।

और आज वही विमला—सौंदर्य की वही प्रस्फुटित कलिका जब उसकी ओर बढ़ी चली आ रही थी, तो वह बड़ी ही घबड़ाहट का अनुभव कर रहा था। जिसको देखने के लिये उसकी आँखें बरसों से तरस रही थीं, हृदय का चकोर जिसके विछोह में अंगारे चुगने लगता था, आज वही सुधा-वर्षी मयंक दैव की प्रेरणा से खिंचा चला आ रहा था और शिशिर की इच्छा हो रही थी कि जमीन फट जाए और वह उसमें समा जाए।

घबड़ाहट के मारे उसने गले में गमछा बाँध लिया, ताकि वह बिल्कुल न पहचाना जा सके। किंतु कलेजा धक-धक कर रहा था और रिक्सा छोड़ कर भाग जाने की इच्छा हो रही थी।

'चलो, पटेल-पथ चलना है। चलोगे?' पुराने साथी ने प्रश्न किया।

उसके साथ यह जो विमला खड़ी थी, वह मौन थी, किंतु उसकी उप-स्थिति स्वयं अपने आप में एक प्रश्न थी।

रिक्सावाले ने कोई उत्तर नहीं दिया। भय था, कहीं वे दोनों उसकी आवाज न पहचान लें।

'अबे, बोलता क्यों नहीं?' कहते हुए पुराना साथी उसके रिक्से पर सवार हो गया। बगल में विमला भी बैठ गयी।

रिक्सा चल पड़ा।

शिशिर को अपने आप पर संदेह होने लगा था। वह सचमुच शिशिर था, या कोई और। उसकी जन्म-जन्मांतर की प्रेयसी एक आवारे के साथ सिनेमा देख कर आ रही है और उसे उन दोनों को उनके गन्तव्य स्थल तक पहुँचाना पड़ रहा है।

'खेल अच्छा था। क्यों विमला!'

'अच्छा तो था, पर मुझे हँसी-मजाक के फिल्म अधिक अच्छे लगते हैं। इसमें तो दुःख ही दुःख भरा पड़ा था।'

'तो दुःख को तुम क्या समझती हो? वह भी तो हँसी मजाक का ही एक रूप है। सब कुछ अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह सारी दुनिया भगवान के ही हँसी मजाक का परिणाम है।'

'बड़ा पत्थर का हृदय पाया है तुमने।'

शिशिर सोच रहा था, इस कम्बख्त को रिक्से से उतार कर मैं इसके स्थान पर बैठ जाऊँ और इसे रिक्सा चलाना पड़े तब इसे पता चलेगा कि इसका जीवनदर्शन सही है या गलत।

'पत्थर का हृदय तो तुम्हारा है विमला, जो वर्षों से खुशामद करा रही हो!'

यह सुनकर शिशिर को थोड़ी प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के उपरांत पुराने साथी ने कहा—'सुना है, आजकल शिशिर की हालत बहुत ही खराब है।'

'सुना तो मैंने भी है।' और यह कहते हुए विमला ने लंबी साँस खींची। 'वह बहुत ही होनहार युवक था। बड़ा सच्चा, बड़ा प्रेमी और ईमानदार।

मुझे तो बहुत ही प्यार करता था। उसने मुझे जो पत्र लिखे थे, उन्हें अभी भी पढ़ती हूँ तो जो रस प्राप्त होता है, वह और कहीं नहीं मिलता।'

शिशिर सुन रहा था। प्रसन्नता और विषाद दोनों का दो दिशाओं से एक साथ ही आक्रमण हो रहा था।

'सच बताना, क्या तुम भी उसे प्यार करती थीं?' ईर्ष्या-प्रेरित पुराने साथी ने प्रश्न किया।

'उत्तर सुनकर तुम्हें दुःख होगा, इसलिये मेरा मौन रहना ही अच्छा होगा।' विमला का संक्षिप्त उत्तर था।

सुनकर शिशिर के हृदय की गति अधिक तीव्र हो गयी। इच्छा नहीं हो रही थी कि गंतव्य स्थल तक रिक्सा पहुँच जाय। गति और भी मंद हो गयी।

'अबे, ठीक से क्यों नहीं चलाता? इससे तो अच्छा था, हम पैदल ही चले जाते।' पुराने साथी की डाँट पड़ी।

शिशिर की इच्छा तो हो रही थी कि रिक्सा रोके और पूरी शक्ति के साथ उसके एक तमाचा जड़ दे। लेकिन.....

यह लेकिन जीवन में बड़ा ही विचित्र होता है, कभी-कभी तो बड़ा ही हृदय-विदारक भी। यह लेकिन एक ऐसी लौह-श्रृंखला बन कर जीवन-यात्री की इच्छाओं को जकड़ लेता है कि वह न आगे बढ़ पाता है, न पीछे हट पाता है और न खड़ा ही रह पाता है!

'देखो, मुझे साफ-साफ बताओ, क्या तुम सचमुच उस गधे को प्यार करती हो, जो एक पैसा कमाने लायक न हो सका!'

'किसी के प्रति इस प्रकार के अपशब्द का प्रयोग करना एक पढ़े-लिखे आदमी को शोभा नहीं देता।'

आवेश में आकर पुराना साथी फिर बोला--'उसे गधा नहीं कहूँ तो और क्या कहूँ ! सुना है, साला कहीं कोयले की खान में क्लर्की करता है ! यदि उसमें बुद्धि होती तो अभी तक कुछ बन गया होता !'

'बिल्कुल झूठी बात है। शिशिर के जैसा अध्यवसायी, बुद्धिमान और ईमानदार युवक अवश्य किसी अच्छे पद पर होगा।' विमला ने भर्त्सनाभरे स्वर में कहा।

× × ×

शिशिर उन दोनों को पहुँचाकर फिर और कोई सवारी नहीं ले सका। हृदय-मरुस्थल में आँधियाँ चल रही थीं। मानस-व्योम में एक भी मेघ नहीं था, किंतु प्रलय का सा महाभयंकर अंधकार छाया हुआ था।

पुराने साथी का अंतिम वाक्य उसके कानों में अभी भी गूँज रहा था ! "यदि उसमें बुद्धि होती तो अभी तक कुछ बन गया होता ! ... सचमुच उसमें बुद्धि का ही अभाव है ! नहीं तो बी॰ ए॰ पास करने के बाद भी उसकी यह अवस्था क्यों होती ! लोग मैट्रिक पास किये बिना ही कोठियाँ खड़ी कर रहे हैं और वह बी॰ ए॰ पास करके भी रिक्सा खींचता है! ....

किसी का कोई दोष नहीं। न समाज का, न सामाजिक व्यवस्था का, न राज्य का, न राज्य द्वारा प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था का । दोष है तो मात्र शिशिर की बुद्धि का।

इस बुद्धि के दोष के कारण सब कुछ तो खो बैठा वह! क्या शेष है अब उसके पास! सारा पाथेय तो लुट चुका! विमला सरीखी ज्योत्स्ना-दानिनी सहचरी का सपना देखना भी अब तो अपराध-सा ही लगता है! वह अभी भी उसके प्रति सद्भावना रखती है, यही क्या कम है! यदि उसे मालूम हो गया कि वह रिक्सा खींचता है....

क्या तब भी वह उसके प्रति वही मधुर—वही स्नेहमयी भावना रख सकेगी? उसका सारा अनुराग तिरोहित हो जायगा!.....

शिशिर सोचता चला जा रहा था और ज्यों-ज्यों अधिक सोचता था, त्यों-त्यों हृदय का ज्वालागिरि अधिकाधिक उग्र रूप धारण करता चला जा रहा था।

उसके गाँव के पास ही रास्ते में एक तालाब पड़ता था। उसके किनारे एक बहुत बड़ा पेड़ था और उस पेड़ के बारे में उसने भूत-प्रेत की तरह-तरह की कहानियाँ सुन रखी थीं। और दिन वह इतनी रात गये कभी भी उस पेड़ के नीचे नहीं रुकता, किंतु आज प्राण-भय नामकी कोई चीज उसके लिए नहीं रह गयी थी।

वहीं कटे वृक्ष की तरह धम-से गिर पड़ा और बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा।

मनुष्यों की दुनिया से निराश और प्रवंचित वह सोच रहा था, शायद किसी प्रेत को ही उसकी अवस्था पर दया आ जाय।

× × ×

कुछ देर रो चुकने के बाद उसकी चिंतन-धारा की गति परिवर्तित हुई और वह सोचने लगा, मनुष्यों की इस दुनिया में रहने से लाभ क्या ? यहाँ उसे शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं के सिवा और मिला क्या ?.... जीवन-पथ में जो थोड़ा बहुत रस बचा था, वह भी सूख रहा था।

क्यों नहीं इस तालाब में कूद कर सदा के लिये मनुष्यों की इस दुनिया से विदा ग्रहण कर ली जाय ! यहाँ रहकर वह और अब करेगा भी क्या !

लेकिन कुछ ही देरी के बाद चिंतन की गति पुनः परिर्वत्तित हुई। आत्महत्या करना तो कायरता है, महापाप है। उसे श्रुति की वह पंक्ति भी स्मरण हो आयी--अंधं तमः प्रविशंति ते ये के चात्महनो जनाः।....

तब किया क्या जाय !.... इस दुनिया में जीवन धारण करना तो अब जीवन का अपमान ही है ! जब प्राणों में नैराश्य की सर्पिणी आस्फालन कर रही हो--कल्पना का नंदन-निकुंज दरिद्रता की भयंकर दावाग्नि से झुलस चुका हो और कामनाओं की समस्त विहग-कुमारिकाएँ दुर्भाग्य के बाण-प्रहार से आहत हो-होकर रक्त उद्गीरित कर रही हो, वैसी अवस्था में जीवन से चिपटे रहना कहाँ की बुद्धिमानी है !....

किंतु इस लोक से, जहाँ उसे निराशा और प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ इस प्रकार असुंदरतापूर्वक विदा ग्रहण करना शोभा नहीं देता। सारा का सारा जीवन असुंदरता से पूर्ण रहा। सौंदर्य की राज-क या विमला से जो प्रेम हुआ उसकी सुषमा का भी दरिद्रता के दानव ने इतनी निपुणता के साथ हरण कर लिया कि क्या कहा जाए !.... अब कम-से-कम इस मर्त्यलोक से विदा तो ऐसे रूप में होनी चाहिए, जिसमें शौर्य हो, वीर्य हो, सौंदर्य हो और जब विमला के कानों तक उसकी निधन-गाथा पहुँचे तो उसके आँसुओं में गौरव की अनुभूति भी सन्निहित हो सके-- उसे अभिमान हो इस बात का कि उसका सखा वीर था, पराक्रमी था !

एक दरिद्र और जीवन-संग्राम में असफल रिक्सा खींचनेवाले के रूप में विमला के सम्मुख यदि उसकी गाथा पहुँची तो इससे बढ़कर हृदयविदारक बात और क्या हो सकती है !

उसका क्षत्रिय-रक्त जो वर्षों की घोर दरिद्रता के कारण अपनी उष्णता खो बैठा था, पुनः अपने में नई ज्वाला का संचार पाने लगा।

क्यों नहीं किसी ऐसे व्यक्ति का वध किया जाय जिसके कारण लोग क्षुब्ध हों—जिसका अस्तित्व पृथ्वी पर भार-स्वरूप हो रहा हो। और फिर फाँसी के तख्ते पर झूल कर शहीद बना जाए !

लेकिन ऐसे व्यक्ति का पता कैसे चले !

उन्मादियों की तरह शिशिर जनपथ पर इधर से उधर भटक रहा था कि अकस्मात् भावी नेता पर उसकी दृष्टि पड़ी। एक सुंदर कार से एक सुंदरी के साथ वह उतर रहा था।

शिशिर को देख कर वह भी रुका और शिशिर की ओर लपका। उसे पहिचानने में उसे कोई कष्ट नहीं हुआ, क्योंकि दूसरी दुनिया की सुन्दरता पूर्वक-यात्रा करने के लिये शिशिर ने दाढ़ी बनवा ली थी, कपड़े बदल लिये थे और उस मैले-कुचैले हैट को उतार फेंका था।

'कहो मित्र, क्या हाल है ? बड़े खिले हुए नजर आ रहे हो ! मालूम होता है, ससुराल जा रहे हो !'

शिशिर हँसा। बड़ी विचित्र हँसी थी वह। भावी नेता एक बार तो सहम-सा गया।

'हाँ, भाई, ससुराल ही जा रहा हूँ। लेकिन वहाँ जाने के लिए मैंने एक वीरतापूर्ण उपाय सोचा है। तुम सहायता करो तो शीघ्र ही ससुराल पहुँच जाऊँ !'

'बोलो। मैं तो सदा औरों की सेवा के लिए तैयार रहता हूँ। मैंने नाहीं कब की है? लेकिन खड़े कब तक रहोगे? आओ, मेरी कार में बैठ जाओ।'

और यह कहकर शिशिर को खींच कर वह कार के भीतर ले गया। सुंदरी से बोला—कल रेस्टोरेंट में ठीक समय पर आ जाना।'

'बहुत दिनों के बाद मुलाकात हुई है। चलो, पहले तुम्हें कुछ पिलाऊँ!'

आश्चर्यपूर्वक शिशिर ने भावी नेता की ओर देखा। बोला– 'यह पीना-पिलाना कब से शुरू कर दिया?'

'मित्र, क्या बताऊँ तुम्हें? बहुत-सी बातें शुरू कर दी हैं, जिनको सुनकर तुम्हें विश्वास न होगा।'

'लेकिन तुम तो नेता बननेवाले थे न?'

'उसीकी तो ये सब तैयारियाँ हैं। इस बीच कई अच्छे-अच्छे नेताओं के सम्पर्क में आया और देखा कि पीना-पिलाना बहुत ही आवश्यक है; उसके बिना बुद्धि खुलती नहीं; उसके भीतर की शक्ति भीतर ही अकुलाती रहती है।'

'और यह मोटर कहाँ से हथिया ली? नेताओं को तो त्याग और तपस्या का जीवन शोभा देता है।'

'वह समय चला गया। बापू उसे अपने साथ लेते गये। अब तो जबतक पास में मोटर न हो, बगल में बोतल न हो और बोतल का कॉर्क हटाने वाली न हो, तबतक इस दुनिया में कोई भी बड़ा काम करना असंभव है। राजनीतिक क्षेत्र के भीतर तो प्रवेश ही नहीं हो सकता!'

झुँझलाते हुए शिशिर ने कहा मैं, तुम्हारी बातें नहीं मानता। त्याग और तपका महत्व न क्षीण हुआ है, न होगा। इनकी सहायाता से सब कुछ संभव है।

भावी नेता मुसकराया। बोला—'लेकिन तुम आजकल कर क्या रहे हो?'

'अब तक भाड़ झोंकता रहा हूँ, लेकिन अब एक ऐसा काम करने जा रहा हूँ, जिसको लोग याद रखेंगे। समाचार-पत्रों में जिसकी चर्चा होगी, और कॉलेज के प्रत्येक छात्र और प्रत्येंक छात्रा की जिह्वा पर मेरा ही नाम होगा।'

भावी नेता विस्मयान्वित होकर उसकी ओर देखने लगा।

शिशिर बोलता ही गया—'तुम समझते थे, मैं निकम्मा आदमी हूँ। इस दुनिया में केवल इसीलिए आया हूँ कि नौकरी देनेवाले की खोज करता फिरूँ। मित्र, अब वह समय ला रहा हूँ, जब मेरी खोज होगी। लोग खोजेंगे, सरकार खोजेगी और फिर एक अमर शहीद की तरह मैं दूसरी दुनिया में प्रवेश करूँगा।'

भावी नेता कुछ समझ नहीं पा रहा था।

"तुम उन लोगों में हो, जिनके लिये यह दुनिया बनी है; तुम इसकी रीति-नीति से अच्छी तरह परिचित हो और अपने को उस साँचे में ढाल भी चुके हो। तभी सुंदर कार तुम्हें मिल गयी है और उससे भी सुंदर तरुणी को साथ लेकर घूमते हो! बड़े व्यावहारिक निकले तुम। तुम्हें समाज की नब्ज का अच्छा ज्ञान हो गया है। मैंने सदा भाड़ ही झोंका है और अब उससे ऊब गया हूँ। सोचता हूँ, अबतक तो किसी का कोई उपकार नहीं कर पाया; कम-से-कम दुनिया से विदा ग्रहण करते समय तो एक ऐसा काम कर जाऊँ, जो वर्षों तक लोगों की चर्चा का विषय बना रहे!"

"तो क्या तुम दुनिया छोड़ रहे हो?" आशंकित स्वर में भावी नेता ने पूछा।

"हाँ", गर्वपूर्वक शिशिर ने उत्तर देते हुए कहा, 'छोड़ रहा हूँ और सदा के लिये छोड़ रहा हूँ। देखता हूँ, कौन मुझे फिर से इस सड़ी-गली दुनिया में आने को विवश करता है!"

"लेकिन वह महान्-कार्य कौन-सा है जो तुम करने जा रहे हो ?"

"मैं क्षत्रिय हूँ। मेरी धमनियों में प्राचीन वीर-पुरुषों का रक्त प्रवाहित हो रहा है। मैं क्षत्रिय-गति प्राप्त करना चाहता हूँ और इसलिए किसी ऐसे व्यक्ति का वध करना चाहता हूँ, जिससे प्रत्येक व्यक्ति असंतुष्ट हो--कोई भी व्यक्ति जिससे प्रसन्न न हो !"

"उससे तुम्हें क्या प्राप्त होगा ?"

"प्रत्येक व्यक्ति का आशीर्वाद, जिससे मुझे उस दुनिया में मदद मिलेगी और इस समाज में, जहाँ मैंने कुत्तों का सा जीवन व्यतीत किया है, चारों ओर मेरा गुणगान होगा।"

कार चलती रही और सन्नाटा छाया रहा।

"लेकिन तुम वध किसका करना चाहते हो ? किसीके बारे में सोचा है ?' भावी नेता ने प्रश्न किया।

"सोचा है। मैं सेठ रामस्वरूप का वध करूँगा, जिसकी गल्ले-किराने की दूकान तो छोटी-सी है, लेकिन जिसने शहर की सबसे बड़ी कोठी खड़ी की है। उसने क्या जाने कितने ग्राहकों का पेट खराब किया है। आटे में, चीनी में, चावल में, घी में, दाल में प्रत्येक खाद्य-सामग्री में वह सदा कुछ न कुछ मिलाता रहा है। अब मैं उसे धूल में मिला देना चाहता हूँ।"

"लेकिन तुमने यह कैसे मान लिया कि उसके मरने से तुम्हें सब आशीर्वाद देंगे।"

"उसने चार आने की चीज का एक-एक रुपया तक लिया है। उसके कारण सैकड़ों आदमियों का नुकसान हुआ है। वह समाज का शत्रु है।"

भावी नेता ने इस प्रकार शिशिर की ओर देखा, मानों कह रहा हो, तुम रहे गधे के गधे !

"देखो, इस आदमी ने उपकार भी कम नहीं किया है। म्युनिसिपैलिटी के चुनाव में उसके वार्ड से जो उम्मीदवार जीता था, उसे यदि इस सेठ की मदद न मिली होती तो वह जहन्नुम में चला गया होता। कज्जन बाई का नाम तुमने सुना होगा। उसे इस शहर में लाकर बसाने का सारा श्रेय सेठ जी को है। यदि उनका वध हो गया तो कज्जन बाई ही अनाथ नहीं होगी, साथ के सब लोग—तबला सारंगीवाले—अनाथ हो जाएँगे और गिन-गिनकर तुम्हें गालियां देंगे। और....."

"अच्छा, चुप रहो। अच्छी सूझ दी तुमने। कज्जन बाई को ही मैं क्यों नहीं यमपुरी की सैर करा दूं! शहर के न जाने कितने परिवार उसके कारण कष्ट में हैं! न जाने कितने युवकों को उसने शराब पीना सिखला दिया है। हजारों माताएँ और बहनें मुझे आशीर्वाद देंगी। वह कलंक है इस शहर की।"

"मूर्ख कहीं के, कज्जन बाई को कलंक कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती! और यदि वह मर भी गयी तो क्या कोई दूसरी कज्जन बाई यहाँ नहीं आ धमकेगी?....युवकों में ही तुम अपना नाम चाहते हो और सैकड़ों युवकों को जिसके नाच-गाने से सुख मिलता है, उसीका वध करना चाहते हो!

थोड़ी देर तक शिशिर सोचता रहा। फिर बोला—

"अच्छी बात है। छोड़ो इसे भी। मैं हुक्कामल सिंधी को ही छुरा भोंकूंगा। बड़ा षडयंत्री आदमी है वह। आते ही अपनी दूकान जमा ली ऑर शराबियों को पैसे देकर ऐसा हो-हुल्लड़ मचवाया कि खादी की दोनों दूकानें बंद होकर रहीं। सूद का काम अलग से करता है और दीन-दुखियों के रक्त का इतनी निर्दयता के साथ शोषण करता है कि कुछ न पूछो!....."

"ठीक है, कर सकते हो। लेकिन उसकी हत्या करने के पहले उसीके मुहल्ले के आसपास के लोगों से उसके बारे में पता लगा लेना अच्छा होगा। कहीं ऐसा न हो कि वध भी हो जाय और अपना काम भी न बने।"

कार हुक्कामल कपड़ेवाले के मुहल्ले में पहुँची। दोनों जने कार से उतरे और एक पानकी दूकान पर पहुँचे। पान वेचनेवाला मथुरा का ब्राह्मण था; लंवा तिलक; लंबी चोटी; लंबी मूछें; लंवा पेट; केवल कद लंवा नहीं था।

"दण्डवत महराज!"

"जय हो जजमान! वहुत दिनों से आप दिखायी नहीं पड़े!"

"जी हाँ, इधर आना नहीं हुआ। आज सोचा, हुक्कामल के यहाँ से एक साड़ी खरीदी जाय। आदमी वैसे वड़ा धोखेबाज है·····"भावी नेता बोला।

"राम-राम! यह आप क्या कह रहे हैं जजमान! हुक्कामल के समान आदमी सारे शहर में चिराग लेकर ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा। ब्लैक करता है तो क्या है, धरम के काम में हजारों रुपये पानी की तरह वहाता है। कोई महीना ऐसा नहीं जाता, जब उसके यहाँ ब्राह्मण-भोज नहीं होता हो। और भोज भी ऐसा वैसा? एक बार जीम लो, तो कई दिनों तक मुंह से घी की गंध निकलती रहे!"

भावी नेता ने शिशिर की ओर देखा और कहा--'देखा? और तुम कहते हो कि उससे कोई भी संतुष्ट नहीं!'

'आप संतुष्ट होने की बात कहते हैं! लोग तो उनकी प्रशंसा के पुल वाँधा करते हैं। यह ठीक है कि अपने व्यापार में वह वड़ा पक्का है और इसमें उसका दोष भी क्या है! यदि सच्चाई के साथ कपड़ा बेचे तो उसकी दूकान नहीं विक जाएगी?····वैसे आदमी ब्राह्मणों का वड़ा भक्त है।"

पान के वीड़े मुंह में रखते हुए दोनों कार में जा बैठे। शिशिर वड़ा उदास था।

उसने चार-पाँच और ऐसे आदमियों के नाम लिये, जो देशद्रोही थे, समाज की जिनसे महान् हानि हो रही थी, जो जनता के स्वास्थ्य और संस्कृति दोनों के शत्रु थे। छान-बीन करने के बाद पता चला कि उनमें से एक भी ऐसा नहीं, जिसका वध करने से उसे सैकड़ों आदमियों की गालियाँ सुनने को नहीं मिलेंगी।

शिशिर को अत्यधिक हताश पाकर भावी नेता ने उसकी ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा--'एक आदमी मेरी दृष्टि में है। यदि अपने उद्देश्य की पूर्त्ति चाहते हो तो उसका वध कर डालो।'

'कौन है वह?' उतावली के साथ शिशिर ने पूछा। उसे धैर्य न था। वह शीघातिशीघ्र काम कर डालना चाहता था।

"पंडित मोहनलाल।"

"पंडित मोहनलाल?" विस्मय-विस्फारित दृगों से शिशिर भावी नेता की ओर देखता हुआ बोला,"तुम्हारी बुद्धि तो नहीं भ्रष्ट हो गयी है! पंडितजी का वध करके मैं समाज की घृणा का पात्र बनूं! उनके समान सत्पुरुष चिराग लेकर ढूंढ़ने से भी नहीं मिलेगा! और तुम चाहते हो, मैं उनका खून कर दूं।

भावी नेता हँसा। बोला--"दुनिया में दो ही सत्पुरुष हैं। एक तो तुम, जिसने निर्धनता के कारण जीवनभर चने फाँके हैं और दूसरे हैं पंडित मोहन-लाल, जिन्होंने सज्जनता के कारण जीवन भर चने फाँके हैं। लेकिन तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यह दुनियाँ चने फाँकनेवालों के साथ नहीं है, चाहे वे कितने ही सज्जन क्यों न हों; दुनिया उनके साथ है जिनके पास लड्डू होते हैं। भले ही वे लड्डू जहर के ही क्यों न हों!'

'लेकिन पंडित मोहनलाल ने तो सारा जीवन दीन-दुखियों की सेवा में बिताया है। अपनी सारी जमींदारी बेचकर अनाथों, विधवाओं और रोगियों

की सहायता की है। स्वयं रहने के लिये एक मकान तक नहीं बनाया, लेकिन कई विद्यालय, अस्पताल और अनाथालय उन्होंने बनवा दिये हैं। स्वयं बरबाद हो गये, लेकिन औरों का भला करते रहे। ऐसे आदमी का वध ? यह दूषित विचार तुम्हारे मन में आया कैसे ?"

भावी नेता फिर हँसा। बोला—"पागल हो तुम ! तुम्हारे जैसे आदमी का मर ही जाना अच्छा है ! इतने वर्ष हो गये, लेकिन अभी तक तुम इस दुनिया को और इस दुनिया में रहने वालों को नहीं समझ सके। यहाँ न तो उपकार का कोई महत्व है, न उपकारक का । महत्व है धन-सम्पत्ति का। जब तक संपत्ति पास है, सब ठीक है; जहाँ वह दूर हुई, तुम्हारे सारे सुकृत्य या तो विस्मृत हो जाते हैं या कुकृत्य बन जाते हैं !"

"तुम बड़े दुष्ट हो। तुम मानवी प्रकृति का मेरे सामने इस प्रकार अपमान न करो। मनुष्य महान् है और महान् कार्यों का उसने सदैव आदर किया है।"

"मनुष्य महान् नहीं है; मनुष्य को बनानेवाला महान् है। वह तो दो पैरों का एक ऐसा जानवर है, जिसमें न सौंदर्य है, न शक्ति; जो सींग के स्थान पर मस्तिष्क को पाकर पृथ्वी पर शासन कर रहा है !"

"तुम यह कैसे कहते हो कि उसमें सौंदर्य नहीं है ? ग्रेटागार्बो, सुचित्रा सेन, माला सिन्हा.....!"

"बस, बस बहुत हुआ। अधिक नाम न गिनाओ। तुम्हें सुनहले बक्से में मल-मूत्र थूक-खखार भर कर यदि कोई भेंट दे तो क्या तुम उस भेंट को प्रेमपूर्वक अपने पास रखोगे !.....कदापि नहीं। ये तथाकथित सुंदर रमणियाँ और हैं क्या ? तुम्हारी ये दो चमड़े की आँखें तुम्हें धोखे में रखती हैं। जरा इन मनमोहन पुतलियों की कायापर से उनकी त्वचा का आवेष्टन हटाकर तो देखो; सिहर उठोगे ! मांस-मज्जा-रुधिर-मल-मूत्र-वसा आदि से

निर्मित इन पुतलियों के ऊपर यदि ये रंगविरंगी साड़ियाँ नहीं आतीं और अपने त्वचारूपी आवरण को ये क्रीम, पाउडर, स्नो आदि से नहीं सँवारतीं तो मैं कहता हूँ, जंगल की झाड़ियाँ इनसे कहीं अधिक सुंदर दिखायी देतीं। वस्त्रों का उपयोग शीतोष्ण जलवायु के कारण नहीं है; उनसे मनुष्य अपनी कुरूपता छिपाया करता है। यदि वात ऐसी न होती तो फिर गर्मी के दिनों में भी क्यों ये लोग अपनी काया को विविध प्रकार के वस्त्रों से ढँककर घर से वाहर निकलते!"

शिशिर चुपचाप सुन रहा था।

'शिशिर! तुम वड़े मूर्ख हो। यदि तुमने इन द्विपादों को इतना महत्व नहीं दिया होता--इनकी सहृदयता, सज्जनता और वुद्धिमत्ता पर इतना विश्वास न किया होता तो आज तुम्हारी यह अवस्था न हुई होती! तुम कुछ और ही हुए होते!'

'देखो, मैं अव मरण की देहली पर खड़ा हूँ और मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं तुम्हारे दर्शन को हृदयंगम करूँ। मुझे अतिशीघ्र किसी ऐसे व्यक्ति का नाम वताओ जिसका बध करके मैं अपने उद्देश्य की पूर्त्ति कर सकूँ।'

भावी नेता को क्रोध हो आया। बोला--"मैंने तुम्हें नाम वता तो दिया। लेकिन तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा। चलो, स्वयं पता लगा लो।'

शिशिर भावी नेता के साथ कई स्थानों पर गया, और सर्वत्र उसे महान् विस्मय के साथ पंडितजी की निंदा सुनने को मिली। अस्पताल के डाक्टरों से मिला; विद्यालय के अध्यापकों से मिला; अनाथालय के अधिकारियों से मिला। फिर सोचा, शायद रोगियों में, विद्यार्थियों में, विद्यार्थियों के अभिभावकों में, अनाथों में कहीं तो कोई ऐसा होगा, जो उनकी प्रशंसा करता होगा। किंतु सर्वत्र निराशा हुई।

डाक्टरों ने कहा--"विचित्र आदमी है। मर जाए तो अच्छा! हमलोग इसके चलते चार पैसा तक नहीं कमा सकते। देहातियों का झुंड का झुंड आकर खड़ा हो जाता है और यदि उनमें से एक को भी निराश लौटाओ तो पंडितजी नाराज!......"

रोगियों ने कहा--'अस्पताल अपने नाम के लिये खुलवाया है; हमलोगों की भलाई के लिए इस प्रकार वह रातदिन खटे, ऐसा बुद्धू नहीं है!'

एक रोगी ने तो यहाँ तक कह दिया--'पंडित बड़ा रसिया है। रोगियों के वार्ड के निरीक्षण के बहाने नर्सों के साथ घंटों आँखें लड़ाता रहता है!'

विद्यालय के एक अध्यापक ने बताया--'पंडितजी यदि परलोक सिधार जाते तो बहुत अच्छा होता। उन्हीं के कारण विद्यालय धर्मालय बना हुआ है। आते समय प्रार्थना, जाते समय प्रार्थना। विद्यार्थी यदि विषय में कमजोर हो तो छुट्टी के बाद भी उसे मत छोड़ो। उसके साथ घंटों माथा-पच्ची करते रहो!...... वाह रे पंडित!'

एक छात्र ने कहा--'यदि यह पंडित नहीं मरा तो हम सब मिलकर किसी न किसी दिन हड़ताल करने को बाध्य हो जाएँगे। हमलोगों के मनोरंजन के सब रास्ते बंद कर दिये गये हैं। न सिगरेट पी सकते हैं, न सिनेमा देख सकते हैं,, न पान खा सकते हैं! और यह सब भी सहा जा सकता है लेकिन इतना सबेरे उठ कर स्कूल जाना और वह भी जाड़े के दिनों में! सब स्कूल दस बजे से शुरू होते हैं; इनके यहाँ सबेरे सात बजे ही हाजिर होना पड़ता है!'

छात्रों के एक अभिभावक ने कहा--'जबतक पंडित नहीं मरता, स्कूल की उन्नति नहीं हो सकती। युग विज्ञान का है; अँगरेजी का है और यह पोंगापंथी पंडित संस्कृत पढ़ने के लिये प्रत्येक लड़के को बाध्य करता है। जितना ध्यान संस्कृत-विभाग में दिया जा रहा है, उसका चौथाई भी भौतिक

विज्ञान और अँगरेजी के विभागों में दिया जाता तो यह स्कूल इलाके में सबसे अच्छा हो गया होता!'

शिशिर इन सब उत्तरों को सुन-सुनकर आश्चर्यित हो रहा था। भावी नेता हँसकर बाद में बोलता--'सुना तुमने?'

कट्टर सनातनधर्मी ने कहा--'पंडित धर्म और जाति का शत्रु है। हमलोगों के मंदिर के लिए जितना चंदा एकत्र किया, उतना ही मसजिद के लिए भी। मुसलमानों की सहायता के लिए सदा आगे रहता है! इसी के कारण यहाँ के मुसलमानों का साहस बढ़ गया है कि वे हमलोगों को तो कुछ समझते ही नहीं! जाति का ब्राह्मण है, लेकिन इसकी मौलवियों से जितनी पटती है, उतनी हमलोगों से नहीं। ऐसे-ऐसे लोगों के कारण ही देश का विभाजन हुआ है।'

'लेकिन एक ज्योतिषी ने उस दिन कहा है कि पंडितजी की आयु-रेखा बहुत लम्बी है। सौ वर्ष की पूरी आयु भोग कर वे मरेंगे।' बीच में ही शिशिर बोल उठा, यह जानने को कि उसकी मृत्यु का इस तिलकधारी पर क्या प्रभाव पड़ता है।

'तब तो हिंदू जाति का सर्वनाश ही समझो। ऐसे-ऐसे नास्तिक यदि इतने वर्षों तक जीवित रह गए तो हिंदू धर्म रसातल को चला जाएगा।'

मौलवी बोला--'पंडित बड़ा चालबाज है। जानता है, हिंदू तो उसके घर के हैं। उनका समर्थन तो कहीं जाएगा नहीं। इसलिए मुसलमानों को खुश रखना चाहता है। बड़ा राजनीतिज्ञ है। लेकिन हमलोग भी कच्ची गोली नहीं खेले हुए हैं। इसकी चाल को अच्छी तरह समझते हैं!.... मीठी छुरी है यह, मीठी छुरी।'

ईसाई ने कहा--'पंडित रोज घंटों पूजा-पाठ करता है, गीता का पाठ करता है, रामायण पढ़ता है। वह हमलोगों का आदमी कैसे हो जाएगा?

हमलोगों के जलसों में तो वह राजनीतिक कारणों से सम्मिलित होता है। यह भी अफवाह है कि वह हमलोगों के मिशन की कमजोरियों को पकड़ने के लिए हमलोगों से मिलता-जुलता है।'

मोटर के मालिक ने कहा--'पंडित जहन्नुम में चला जाए, तो अच्छा है। पहले बरसात के दिनों में हमलोग निर्भय होकर गाड़ी चलाते थे और जिनके कपड़े हमारी गाड़ी के कारण कीचड़ से भर जाते थे, उनकी हालत देख कर हम जी भरकर हँस भी सकते थे। लेकिन इस पंडित ने तो हम लोगों को इस प्रकार परेशान कर रखा है कि कुछ न पूछो! एक मामूली-सा रिक्सा खींचनेवाला भी हमसे अधिक सुखी है!'

अपने पेशे का नाम सुनकर एक बार तो शिशिर झेंपा, लजाया, लेकिन दो ही क्षणों में फिर ज्यों का त्यों। उसने अपने मन को समझाया--'मूर्ख, मैं अब रिक्सा खींचने वाला नहीं, परलोक का महान् यात्री हूँ।'

रास्ते में एक आदमी मिला जो पहले भीख माँगा करता था। सोचा, यह तो पंडितजी का जीभर कर गुणगान करेगा। पूछने पर उत्तर मिला--'पंडित मर जाए तो बड़ा अच्छा हो। हमलोग भीख माँगते थे; सुखी थे। भीख देने वाले भीख देते थे और उनका पाप कटता था, उन्हें पुण्य होता था। अब हमलोगों को सरकारी कारखानों का मजदूर वनाकर हमारा तो कचूमर निकाला ही, समाज का भी नुकसान किया।'

लोगों के उत्तर सुन-सुनकर शिशिर की घबड़ाहट बढ़ती चली जा रही थी। सोच रहा था-'हे भगवान्! क्या यही है दुनिया! जिस आदमी ने अपना सारा जीवन लोगों की भलाई के लिये लगा दिया; न दिन को दिन समझा, न रात को रात,--अपनी सारी सम्पत्ति गरीबों की भलाई के लिए फूंक डाली, उसके सम्बन्ध में लोगों की यह धारणा!--उनकी ऐसी अशुभ कामनाएँ!

एक लड़केवाले ने कहा--'यदि यह मर गया होता तो मुझे अपने दो लड़कों के विवाह में कम से कम बीस हजार का दहेज मिला होता। अब एक लड़के का विवाह और करना है। यदि यह जीवित रहा तो कभी दहेज न लेने देगा।'

एक लड़कीवाले ने कहा--'इस आदमी के मारे तो नाकों दम है। लखपती का लड़का मिल रहा था। पता नहीं, इसने मेरी लड़की को क्या पट्टी पढ़ा दी कि वह जिदपर आ गयी है कि ब्याह करेगी तो उस निकम्मे अध्यापक से ही ! उस अध्यापक के पास रखा क्या है!...... आग लगे इस पंडित को!'

'बोलो, और जानना चाहते हो?' भावी नेता ने विजय का उल्लास अपने स्वर में भरकर शिशिर से पूछा।

शिशिर पहले तो घबड़ा रहा था, फिर क्रोध से दाँत पीसने लगा। बोला--'तुम मुझे गधा कहते हो। लेकिन गधे तुम हो। पंडितजी के प्रति मेरी पहले जितनी श्रद्धा थी, उससे अब लाख गुना अधिक है। सारी दुनिया उनकी निंदा करती है, किया करे। लेकिन मैं उनका प्रशंसक हूँ। मैं उनका प्रशंसक इसलिए भी हूँ कि मुझे अब मृत्यु के उस पार जाना है। मैं स्वार्थ का चश्मा बहुत दूर फेंक आया हूँ और इस कारण मुझे वस्तुएँ वैसी ही दिखायी दे रही हैं जैसी वे हैं। पंडित जी के समान महान् व्यक्ति का बध करके मैं अपना परलोक नहीं बिगाड़ना चाहता।'

भावी नेता ने उदासी के साथ कहा--'भाई, तुम्हें तो किसी न किसी का बध करना ही है। पंडित जी का बध कर दो तो मेरा बहुत बड़ा उपकार हो जाएगा।'

आश्चर्यित होकर शिशिर ने उसकी ओर देखा। आँखों में अभी भी क्रोध की लाली थी।

'जिस आदमी की कृपा से यह मोटर मिली है, जिसके कारण आज मैं सुंदरियों को रेस्टोरेंट में बुलाया करता हूँ, वह विधान-सभा का सदस्य बनना चाहता है और मैंने उसे विश्वास दिला दिया है कि मैं ऐसा कर दूंगा। विश्वास ही नहीं, मैंने उसके सामने प्रण कर लिया है कि उसे सीट दिलाकर रहूँगा।'

'तो दिलाओ। कौन मना करता है तुम्हें?"

"जबतक पंडितजी जीवित रहेंगे, यह संभव नहीं। वे इस आदमी के चुनाव का भरपूर विरोध करेंगे। उनका एक अपना आदमी है, जो त्याग और तपस्या की मूर्त्ति है, लेकिन त्याग और तप की अब इस देश को आवकश्यता नहीं है। त्याग और तप करते हुए युग बीत गए हैं; अब देश को भोग-विलास की आवश्यकता है और यह तभी संभव है जब विधान-परिषद् में ऐसी प्रतिभाएँ जाएँ जो राष्ट्र के आगे भोग-विलास का अनुकरणीय आदर्श रख सकें!"

शिशिर के हृदय में क्रोध के मारे उफान आ रहा था। किसी तरह अपने ऊपर नियंत्रण रखता हुआ बोला--'यह आदमी आखिर है कौन?'

'तुम्हें सब बतलाता हूँ। तुम मेरे मित्र हो। तुम से क्या छिपाना! लेकिन मित्र-भाव का निर्वाह करते हुए तुम भी मेरे लिए कुछ करो। तुम्हें तो किसी न किसी को यमपुरी भेजना ही है। पंडित जी को ही क्यों नहीं भेज देते! मेरा भी काम बन जाएगा!'

"मैं पूछता हूँ, यह आदमी है कौन?' कठोर स्वर में शिशिर ने पूछा। जीवन का मोह जब छूट जाता है तो आदमी में निर्भीकता आ ही जाती है। यह जीवन का मिथ्या मोह ही है जो विद्वान को मूर्ख के आगे, पुण्यात्मा को पापी के आगे, सुंदर को असुंदर के आगे झुकने को बाध्य करता है! जो

शिशिर वर्षों से यह भूल बैठा था कि अपने अतिरिक्त और किसी पर भी क्रोध प्रकट किया जा सकता है, वह आज भावी नेता जैसे व्यक्ति को डाँट बता रहा था।

भावी नेता पहले तो डरा, फिर बोला––'क्रोधित क्यों हो रहे हो मित्र ! यह वही है, जिसने मेरे द्वारा लिखाये तुम्हारे आवेदन-पत्र पर प्रसन्न होकर तुम्हें इंटरव्यू के लिए बुलाया था। तुम तो गये नहीं, क्योंकि तुम्हें सच्चाई, ईमानदारी और भुखमरी इन तीनों से बड़ा प्रेम है। लेकिन मैं महत्वाकांक्षी हूँ, बहुत कुछ करना चाहता हूँ। मुझे भावी पीढ़ी का नेतृत्व करना है और इसलिए मैं इन तीनों से दूर रहने की पूरी चेष्टा करता हूँ ! ····तुमसे कहे बिना ही मैं उसके पास चला गया। वास्तव में आवेदन-पत्र मैंने इसी उद्देश्य से लिखाया भी था। मैं जानता था, तुम नहीं जाओगे। इस आवेदन-पत्र में जिन गुणों का वर्णन है, वे सब मुझ में हैं। सेठ मुझ से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। मैं अब उसका अपना आदमी बन गया हूँ। मुझे लिए बिना वह न तो क्लबों में जाता है, न किसी पार्टी में। मैं उसका दाहिना हाथ हूँ और जिस प्रकार मेरी उम्मीदें उस पर टिकी हुई हैं, वैसे ही उसकी उम्मीदें मुझ पर। मेरी प्रतिभा से परिचित होने में उसे अधिक दिन न लगे। वास्तव में उसे मेरे ही जैसे आदमी की आवश्यकता थी।'

'उसे तो एक व्यापारिक परामर्शदाता चाहिए था !' कड़ककर शिशिर ने कहा।

परामर्शदाता शब्द के कई अर्थ होते हैं। तुमने साहित्य का अध्ययन किया है; भाषा-विज्ञान भी पढ़ा है, लेकिन शब्दों के प्रचलित अर्थ तुम्हारे लिए अविदित हैं। विज्ञापन पढ़ते ही मैं भाँप गया था कि इस आदमी को किस प्रकार के परामर्शदाता की आवश्यकता है ! ····अब मेरे जिन कामों पर वह मुग्ध है, उनका वर्णन करके मैं तुम्हारा महत्वपूर्ण समय नष्ट नहीं

करना चाहता। तुम्हें बहुत दूर जाना है--बहुत लंबी यात्रा करनी है। शीघ्र ही पंडितजी का बध करो और लोगों का आशीर्वाद लो। अध्यापक और छात्र, डाक्टर और नर्सें, दूकानदार और ग्राहक, सनातनी और आर्यसमाजी, हिंदू और मुसलमान सबके सब तुम्हारा गुणगान करेंगे !"

"मैं जानना चाहता हूँ वह पाजी तुम से कौन-कौन से काम लिया करता है।

शिशिर का कठोर स्वर बड़ा डरावना था। सिहर कर भावी नेता बोला–'एक काम हो तब तो गिनाऊँ। सरकारी कर्मचारियों को खिला-पिलाकर प्रसन्न रखना और उनका आय-कर बचाना मेरे मुख्य कार्यों में एक है। किस चीज में क्या मिलावट करने से जनता की आँखों में धूल अच्छी तरह से झोंकी जा सकेगी, इसका पता लगाना। और भी बहुत से काम हैं। जैसे ईमानदार अफसरों को बेईमानी का पाठ पढ़ाना और यदि उसमें वे असफल रहे, तो उनकी बदली करवा देना।"

'और इसी बूते पर तुम देश के नेता बनने चलो हो! शर्म नहीं आती तुम्हें !'

'पहले बड़ी शर्म आती थी, लेकिन अब नहीं आती क्योंकि अब ज्ञान की आँखें खुल गयी हैं।'

"और वह लड़को कौन थो जिसे लेकर तुम घूम रहे थे ?"

"वह उस सेठ की लड़की है। उसने जीवन में एक ही काम किया है और वह है फिल्में देखने का। उसे कोई दूसरा शौक ही नहीं है। देखो, इसे एकाग्रता कहते हैं। उसके मन की दुनिया में केवल फिल्मी दृश्य चक्कर काटा करते हैं। उसे भी एक परामर्शदाता की आवश्यकता थी। सौभाग्यवश मैं मिल गया। तुम्हें उस विज्ञापनदाता की याद तो है न, जिसने समाचार-पत्र में पत्नी की माँग की थी। तुम तो सच्चरित्रता और साधुता के चक्कर में रह गए और उससे मिले नहीं। मैं उससे मिला था। बड़े ही काम का

आदमी सिद्ध हुआ। सेठ की लड़की के प्रेम-पाश मे इस प्रकार फँस गया है कि निकलने का नाम नहीं लेता। यह कार उसीकी है!··· तुम सीधे आदमी हो। तुम्हें दुनिया की रीति-नीति का कोई पता नहीं! मैं उसकी नब्ज पहचान गया हूँ। मैं जानता हूँ उसे कैसे चराया जा सकता है!····· "

'सड़क तेरे बाप की नहीं है! जरा देखकर गाड़ी चला।' बगल से गुजरते हुए एक ड्राइवर ने शिशिर की ओर इशारा करते हुए कहा।

'देखा तुमने। हर आदमी को देखकर गाड़ी चलानी चाहिए, केवल उसे इसकी आवश्यकता नहीं, जिसके बाप की सड़क होती है।'

'अर्थात् ?'

'अर्थात् सरकार जिसका बाप बन जाती है और सरकार को बाप बनाने के लिए पास में पैसे का होना बहुत ही जरूरी है। जिनके पास पैसे नहीं हैं, न उनकी जनता है, न उनके लिए सरकार है। इसलिए मैं पहले इस चक्कर में हूँ कि कुछ पैसे हो जाएँ। उसके बाद मैं अपना आंदोलन शुरू करूँगा। तब तक तुम तो जीवित रहोगे नहीं। हाँ, तुम भूत बनकर कभी-कभी उस महान् दृश्य को देखने के लिए अवश्य आया करना।'

भावी नेता को आशा थी कि शायद शिशिर इस बार कुछ बोलेगा। लेकिन वह मौन न जाने क्या सोच रहा था।

'शिशिर, मैं इतने-इतने प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिलकर, समाज का और समाज के कर्णधारों का सम्यक् प्रकार से अध्ययन करके एक निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ और वह निष्कर्ष अकाट्य है।'

'क्या है वह ?'

'यही कि अपनी जनता को अब त्यागी और तपस्वी अच्छे नहीं लगते। जो भोग-विलास की कला में स्वयं भी दक्ष होगा और अपनी शिष्य-मंडली को भी दक्ष कर सकेगा, देश की बागडोर उसीके हाथों में होगी।'

तब तक गाड़ी शहर के बाहर एकांत स्थान में पहुँच चुकी थी। चारों ओर हरियाली थी और वृक्षों पर उड़-उड़ कर पक्षी एकत्र हो रहे थे।

पश्चिमी क्षितिज का अरुणिमा से श्रृंगार करता हुआ कोई कलाकार मुसकरा रहा था।

'गाड़ी रोको।' पागल की भाँति चिल्लाकर शिशिर ने कहा।

'पंडितजी को इस दुनिया में अभी वर्षों जीवित रहना चाहिए। वे सच्चे अर्थों में महान् है। जो लोगों की निंदा स्तुति की चिंता किये बिना निरंतर कर्त्तव्य कर्म में लगा रहता है, वही धन्य है, वही वरेण्य है।.... कृतघ्न मानव-समाज को ऐसे ही लोगों की आवश्यकता है। धरती इन्हीं लोगों के तप के बल पर टिकी हुई है!..... वध तो होना चाहिए तुम्हारे जैसे आदमियों का। तुम आगे चल कर नेता बनोगे! मानव-जाति को मार्ग-भ्रष्ट करोगे और तुम्हारा उद्देश्य होगा तुम्हारा निम्नतम वैयक्तिक स्वार्थ। तुम्हारे मरने से मानव-समाज का कोई भी अहित नहीं होगा: तुमसे उसका लाभ क्या होगा? यदि तुम शक्तिशाली हो गये तो जातियों को, वर्णों को, प्रांतों को आपस में लड़ाओगे। अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए तुम जनता में भ्रांति का प्रसार करोगे; घृणा के बीज बोकर तुम इतिहास के पृष्ठों की रचना करोगे!..... तुम अंधे हो और अंधा होकर यदि कोई अंधों का नेतृत्व करने चले तो अच्छा है कि उसको दुनिया से विदा कर दिया जाय!"

और यह कहते हुए क्रोधपूर्वक शिशिर ने अपनी जेब से चाकू निकाल कर उस भावी नेता के पेट में भोंक दिया!

× × ×

'अरे, बाप रे!' डाकिया जोरों से चीख उठा।

चीख सुनकर शिशिर की नींद टूट गयी।

'एक तो इतना दिन चढ़ गया है और आप यहाँ तालाब के किनारे सोये पड़े हैं और कोई जगाता है तो मुक्का चलाते हैं! विचित्र आदमी हैं आप भी! लीजिए, यह आपके नाम की चिट्ठी है।' डाकिये ने उसके आगे चिट्ठी बढ़ाते हुए कहा।

शिशिर ने आँखें मलीं, उठ कर खड़ा हुआ और चिट्ठी खोल कर पढ़ने लगा। पढ़ते ही खुशी के मारे उछल पड़ा; डाकिये को गले से लगा लिया और बोल उठा--'यहाँ के प्रेतों ने मेरी प्रार्थना सुन ली। मुझे नौकरी मिल गयी है। यह मेरा नियुक्ति-पत्र है। अब मुझे किसी का वध नहीं करना है।'

और यह कहता हुआ वह अपनी बहन को खुशखबरी सुनाने के लिए दौड़ पड़ा।

--::oo::--